जैन धर्म दर्शन

(भाग - 3)

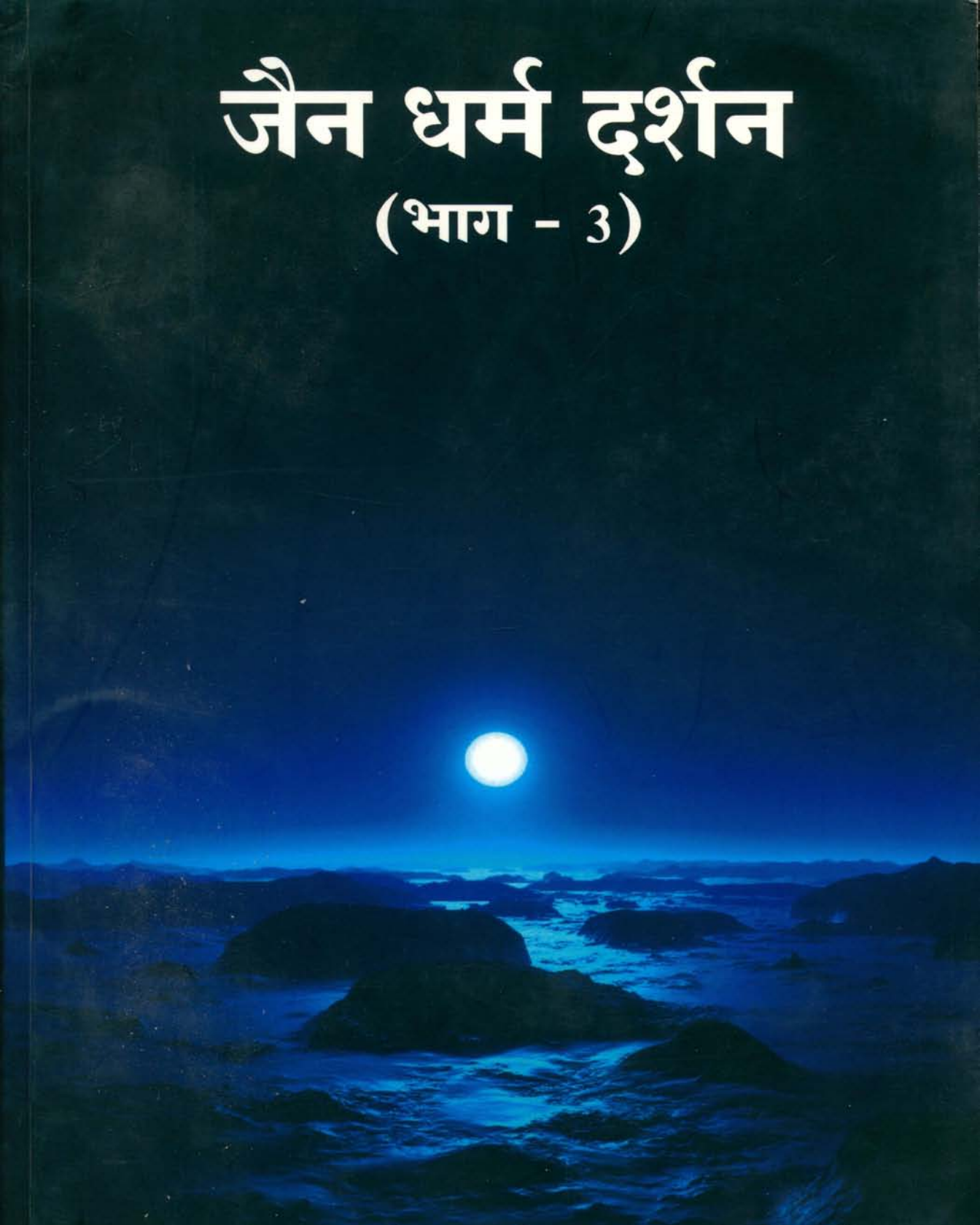

प्रकाशक: आदिनाथ जैन ट्रस्ट, चूलै, चेन्नई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म दर्शन

(भाग - 3)

मार्गदर्शक : डॉ. सागरमलजी जैन

प्राणी मित्र श्री कुमारपालभाई वी. शाह

संकलनकर्ता : डॉ. निर्मला जैन

* प्रकाशक *

आदिनाथ जैन ट्रस्ट

चूलै, चेन्नई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म दर्शन भाग -3

प्रथम संस्करण : अगस्त 2011

प्रतियाँ : 3000

प्रकाशक एवं परीक्षा फॉर्म प्राप्ति स्थल

आदिनाथ जैन ट्रस्ट

21, वी.वी. कोईल स्ट्रीट,
चूलै, चेन्नई- 600 112.
फोन : 044-2669 1616, 2532 2223

मुद्रक

नवकार प्रिंटर्स

9, ट्रिवेलियन बेसिन स्ट्रीट
साहुकारपेट, चेन्नई - 600079.
फोन : 25292233

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

	हमारी बात	1
	आदिनाथ सेवा संस्थान का संक्षिप्त विवरण	2
	अनुमोदन के हस्ताक्षर	4
	प्राक्कथन	5
	प्रकाशकीय	6
1	**जैन इतिहास** - श्री आदिनाथ भगवान का जीवन चरित्र	8
	दस कल्प	
	दस अच्छेरे	
2	**जैन तत्त्व मीमांसा** - संवर तत्त्व	23
3	**जैन आचार मीमांसा** - आहार शुद्धि	45
	श्रावक के चौदह नियम	64
4	**जैन कर्म मीमांसा** - मोहनीय कर्म	68
	आयुष्य कर्म	
5	**सूत्रार्थ**	84

* मंदिरमार्गी परंपरा के अनुसार- जयउ सामिअ (खरतरगच्छ)

- जग चिंतामणि (तपागच्छ)
- जं किंचि सूत्र
- नमुत्थुणं (शक्रस्तव) सूत्र
- जावंति चेइआइं
- जावंत केवि साहू
- परमेष्ठि नमस्कार
- उवसग्गहरं सूत्र
- जयवीयराय सूत्र
- अरिहंत चेइयाणं सूत्र

* **स्थानकवासी परंपरा के अनुसार**- नमुत्थुणं, इच्छामि णं भंते, इच्छामि ठामी, आगमे तिविहे, दर्शन सम्यक्त्व, चत्तारि मंगलम

6	**महापुरुष की जीवन कथाएं**	107

- कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य
- साध्वी श्री लक्ष्मणा
- श्री भरत और बाहुबली
- सती श्री सुभद्रा

7	**एपेन्डीक्स**- जैन रेसिपी	119
	संदर्भ सूची, परिक्षा नियम	138

www.jainelibrary.org

हमारी बात

दि. 5.7.1979 के मंगल दिवस पर चूलै जिनालय में भगवान आदिनाथ के प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रसंग पर स्व. **श्री अमरचंदजी कोचर** द्वारा स्थापित **श्री आदिनाथ जैन मंडल** अपनी सामाजिक गतिविधियों को आदिनाथ जैन ट्रस्ट के नाम से पिछले 31 वर्षों से प्रभु महावीर के बताये मार्ग पर निरंतर प्रभु भक्ति, जीवदया, अनुकंपा, मानवसेवा, साधर्मिक भक्ति आदि जिनशासन के सेवा कार्यों को करता आ रहा है। ट्रस्ट के कार्यों को सुचारु एवं स्थायी रुप देने के लिए सन् 2001 में चूलै मेन बाजार में (पोस्ट ऑफिस के पास) में 2800 वर्ग फुट की भूमि पर बने त्रिमंजिला भवन **'आदिनाथ जैन सेवा केन्द्र'** की स्थापना की गई। भवन के परिसर में प्रेम व करुणा के प्रतीक भगवान महावीर स्वामी की दर्शनीय मूर्ति की स्थापना करने के साथ करीब 7 लाख लोगों की विभिन्न सेवाएँ की जिसमें करीब 1 लाख लोगों को शाकाहारी बनाने का अपूर्व लाभ प्राप्त हुआ है।

आदिनाथ जैन सेवा केन्द्र में स्थाई रुप से हो रहे नि:शुल्क सेवा कार्यों की एक झलक :

* 10 विकलांग शिविरों का आयोजन करने के पश्चात अब स्थायी रुप से विकलांग कृत्रिम लिंब सहायता केन्द्र की स्थापना जिसमें प्रतिदिन आने वाले विकलांगों को नि:शुल्क कृत्रिम पैर, कृत्रिम हाथ, कैलिपरस्, क्लचेज, व्हील चैर, ट्राई - साईकिल आदि देने की व्यवस्था।
* आंखों से लाचार लोगों की अंधेरी दुनिया को फिर से जगमगाने के लिए एक स्थायी फ्री आई क्लिनिक की व्यवस्था जिसमें नि:शुल्क आंखों का चेकउप, आंखों का ऑपरेशन, नैत्रदान, चश्मों का वितरण आदि।
* करीबन 100 साधर्मिक परिवारों को प्रतिमाह नि:शुल्क अनाज वितरण एवं जरुरतमंद भाईयों के उचित व्यवसाय की व्यवस्था।
* बहनों के लिए स्थायी रुप से नि:शुल्क सिलाई एवं कसीदा ट्रेनिंग क्लासस एवं बाद में उनके उचित व्यवसाय की व्यवस्था।
* आम जनता की स्वास्थ्य सुरक्षा हेतु एक फ्री जनरल क्लिनिक जिसमें हर रोज 50 से ज्यादा मरीजों का निशुल्क चेकअप, दवाई वितरण।
* प्रतिदिन करीब 200 असहाय गरीब लोगों को निशुल्क या मात्र 3 रुपयों में शुद्ध सात्विक भोजन की व्यवस्था।
* दिमागी रुप से अस्थिर दु:खियों के लिए प्रतिदिन नि:शुल्क भोजन।
* नि:शुल्क एक्यूपंक्चर,एक्यूप्रेशर, फिसियोथेरपी एवं नेच्युरोथेरेपी क्लिनिक
* जरुरतमंद विद्यार्थियों को नि:शुल्क स्कूल फीस, पुस्तकें एवं पोशाक वितरण।
* रोज योगा एवं ध्यान शिक्षा।
* जैनोलॉजी में बी.ए. एवं एम.ए. कोर्स ।
* आपातकानीन अवसर में 6 घंटों के अंदर राहत सामग्री पहुंचाने की अद्‌भुत व्यवस्था।
* स्पोकन ईंगलिश क्लास ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदिनाथ जिनशासन सेवा संस्थान में होने वाली सम्भवित योजनाओं का संक्षिप्त विवरण

हाल ही में हमारे ट्रस्ट ने चूलै के मालू भवन के पास 8000 **वर्ग फुट** का विशाल भुखंड खरीदकर **आदिनाथ जिनशासन सेवा संस्थान'** के नाम से निम्न शासन सेवा के कार्य करने का दृढ संकल्प करता है।

* विशाल ज्ञानशाला

* जैन धर्म के उच्च हितकारी सिद्धांतों के प्रचार - प्रसार के लिए आवासीय पाठशाला...
* जिसमें श्रद्धावान मुमुक्षु, अध्यापक, विधिकारक, मंदिर सेवक (पुजारी), संगीतकार, पर्युषण आराधक इत्यादि तैयार किए जाएंगे।
* निरंतर 24 घंटे पिपासु साधर्मिकों की ज्ञान सुधा शांत करने उपलब्ध होंगे समर्पित पंडिवर्य व अनेक गहन व गंभीर पुस्तकों से भरा पुस्तकालय।
* बालक - बालिकाओं व युवानों को प्रेरित व पुरस्कारित कर धर्म मार्ग में जोडने का हार्दिक प्रयास।
* जैनोलॉजी में बी.ए., एम.ए. व पी.एच.डी. का प्रावधान।

* साधु-साध्वीजी भगवंत वैयावच्च

* जिनशासन को समर्पित साधु-साध्वी भगवंत एवं श्रावकों के वृद्ध अवस्था या बिमारी में जीवन पर्यंत उनके सेवा भक्ति का लाभ लिया जाएगा।
* साधु-साध्वी भगवंत के उपयोग निर्दोष उपकरण भंडार की व्यवस्था।
* ज्ञान-ध्यान में सहयोग।
* ऑपरेशन आदि बडी बिमारी में वैयावच्च।

* वर्षीतप पारणा व आयंबिल खाता

* विश्व को आश्चर्य चकित करदे ऐसे महान तप के तपस्वीयसों के तप में सहयोगी बनने सैंकडों तपस्वियों के शाता हेतु सामूहिक वर्षीतप (बियासणा), 500 आयंबिल तप व्यवस्था व आयंबिल खाता प्रारंभ हो चुका है।

* धर्मशाला

* चिकित्सा, शिक्षा, सार्वजनिक कार्य एवं व्यापार आदि हेतु दूर - सुदूर देशों से पधारने वाले भाईयों के लिए उत्तम अस्थाई प्रवास व भोजन व्यवस्था।

* जैनोलॉजी कोर्स Certificate & Diploma Degree in Jainology

* जैन सिद्धांतों एवं तत्वज्ञान को जन - जन तक पहुँचाने का प्रयास, दूर - सुदूर छोटे गाँवों में जहाँ गुरु भगवंत न पहुँच पाये ऐसे जैनों को पुनः धर्म से जोडने हेतु 6 - 6 महीने के Correspondence Course तैयार किया गये हैं। हर 6 महीने में परीक्षा के पूर्व त्रिदिवसीय शिविर द्वारा सम्यक् ज्ञान की ज्योति जगाने का कार्य शुभारंभ हो चुका है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* शुद्ध सात्विक जैन भोजनशाला

* किसी भी धर्म प्रेमी को प्रतिकूलता, बिमारी या अन्तराय के समय शुद्ध भोजन की चिंता न रहे इस उद्देश्य से बाहर गाँव व चेन्नई के स्वधर्मी भाईयों के लिए उत्तम, सात्विक व स्वास्थ वर्धक जिनआज्ञामय शुद्ध भोजन की व्यवस्था।

* साधर्मिक स्वावलम्बी

* हमारे दैनिक जीवन में काम आने वाली शुद्ध सात्विक एवं जैन विधिवत् रुप से तैयार की गई वस्तुओं की एक जगह उपलब्धि कराना, साधर्मिक परिवारों द्वारा तैयार की गई वस्तुएँ खरीदकर उन्हें स्वावलंबी बनाना एवं स्वधर्मीयों को गृहउद्योग के लिए प्रेरित कर सहयोग करना इत्यादि।

* जीवदया प्राणी प्रेम प्रकल्प योजना

* मानव सेवा के साथ - साथ मूक जानवरों के प्रति प्रेम व अनुकम्पा का भाव मात्र जिनशासन सिखलाता है। जिनशासन के मूलाधार अहिंसा एवं प्रेम को कार्यान्वित करने निर्माण होंगे 500 कबुतर घर व उनके दाना-पानी सुरक्षा आदि की संपूर्ण व्यवस्था।

मोहन जैन
सचिव आदिनाथ जैन ट्रस्ट

* प्रस्तुत प्रकाशन के अर्थ सहयोगी *

स्व. श्रीमती धूलीबाई भंवरलालजी नाहर
(गौतन, राज. निवासी) कि स्मृति में

&

स्व. श्रीमती भीखिबाई गुलाबचंदजी कोचर
(फलोदी, राज., मैलापुर, चेन्नई) कि स्मृति में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुमोदन के हस्ताक्षर

कुमारपाल वी.शाह
कलिकुंड, ढोलका

जैन दर्शन धर्म समस्त विश्व का, विश्व के लिए और विश्व के स्वरुप को बताने वाला दर्शन है। जैन दर्शन एवं कला बहुत बहुत प्राचीन है। जैन धर्म श्रमण संस्कृति की अद्‌भूत फुलवारी है इसमें ज्ञान योग, कर्म योग, अध्यात्म और भक्ति योग के फूल महक रहे हैं।

परमात्म प्रधान, परलोक प्रधान और परोपकार प्रधान जैन धर्म में नये युग के अनुरुप, चेतना प्राप्त कराने की संपूर्ण क्षमता भरी है। क्योंकि जैन दर्शन के प्रवर्तक सर्वदर्शी, सर्वज्ञ वितराग देवाधिदेव थे।

जैन दर्शन ने ''यथास्थिस्थितार्थ वादि च...'' संसार का वास्तिवक स्वरुप बताया है। सर्वज्ञ द्वारा प्रवर्तित होने से सिद्धांतों में संपूर्ण प्रमाणिकता, वस्तु स्वरुप का स्पष्ट निरुपण, अरिहंतो से गणधर और गणधरों से आचार्यों तक विचारो की एकरुपता पूर्वक की उपदेश परंपरा हमारी आन बान और शान है।

संपूर्ण विश्व के कल्याण हेतु बहुत व्यापक चिंतन प्रस्तुत कराने वाला जैन दर्शन सर्वकालिन तत्त्कालिन और वर्तमान कालिन हुई समस्याओं का समाधान करता है, इसीलिए जैन दर्शन कभी के लिए नहीं अभी सभी के लिए है।

यहाँ जैन धर्म दर्शन के व्यापक स्वरुप में से आंशीक और आवश्यक तत्वज्ञान एवं आचरण पक्ष को **डॉ. कुमारी निर्मलाबेन** ने स्पष्ट मगर सरलता से प्रस्तुत किया है। स्वाध्यायप्रिय सबके लिए अनमोल सोगात, आभूषण है। बहन **निर्मला** का यह प्रयास वंदनीय है।

ध्यान में रहे इसी पुस्तक का स्वाध्याय ज्ञान के मंदिर में प्रवेश करने का मुख्य द्वार है।

***

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राक्कथन

प्रस्तुत कृति की रचना जन सामान्य को जैन धर्म दर्शन का बोध कराने के उद्देश्य से की गई है। इस पुस्तक में जैन धर्म दर्शन को निम्न छः खण्डों में विभाजित किया गया है। 1. जैन इतिहास 2. तत्त्व मीमांसा 3. आचार मीमांसा 4. कर्म मीमांसा 5. धार्मिक क्रियाओं से संबंधित सूत्र एवं उनके अर्थ और 6. धार्मिक महापुरुषों की जीवन कथाएँ।

प्रत्येक अध्येता को जैन धर्म का समग्र रुप से अध्ययन हो इस हेतु यह परियोजना प्रारंभ की गई है। पूर्व में इस योजना के प्रथम वर्ष के निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर विषयों का संकलन कर पुस्तकों का प्रकाशन किया गया था। इसके इतिहास जहां पूर्व खंड में भगवान पार्श्वनाथ, भगवान अरिष्टनेमि, भगवान शांतिनाथ का जीवन वृत दिया गया था, वहां इस खंड में भगवान ऋषभदेव का जीवन परिचय की अतिविस्तार से प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय तत्व मीमांसा खण्ड, द्वितीय खंड में जहां अजीव, पुण्य, पाप और आश्रव तत्व का वर्णन किया गया था। इस खंड में संवर तत्व का विस्तार से विवेचन किया गया है। इसी प्रकार तीसरे आचार शास्त्र संबंधी खंड में जहा पूर्व में मार्गानुसारी जीवन का विवेचन किया गया था, वहां इस खंड में अभक्ष्य पदार्थ व उनसे विमुक्ति के उपाय यानी आहार शुद्धि एवं श्रावक के चौदह नियम की चर्चा की गई है। इसी क्रम में कर्म मीमांसा में जहां पूर्व में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय एवं वेदनीय कर्म का विस्तार से विवेचन किया गया था, एवं वेदनीय कर्म का विस्तार से विवेचन किया गया था, वहां इस खंड में मोहनीय एवं आयुष्य कर्म का विवेचन किया गया है। सूत्र विभाग में जहां पूर्व खंड में सामायिक की साधना के सूत्र दिये थे वहां इस विभाग में प्रतिक्रमण के पाप की आलोचना के कुछ सूत्र अर्थ के साथ स्पष्टता के साथ समझाया गया है। जहां तक धार्मिक महापुरुषों की कथाओं का प्रश्न है इस तृतीय विभाग में निम्न महापुरुषों की कथाएं दी गई है। जैसे आचार्य हेमचन्द्र, साध्वी लक्ष्मणा, भरत और बाहुबली एवं सती सुभद्रा।

इस प्रकार प्रस्तुत कृति में पूर्व प्रथम भाग में जैन धर्म दर्शन संबंधी जो जानकारियाँ थी, उनका अग्रिम विकास करते हुए नवीन विषयों को समझाया गया है। फिर भी सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें जो विकासोन्मुख क्रम अपनाया गया है वह निश्चित ही जन सामान्य को जैन धर्म के क्षेत्र में अग्रिम जानकारी देने में रुचिकर भी बना रहेगा। प्रथम खण्ड का प्रकाशन सचित्र रुप से जिस प्रकार प्रस्तुत किया गया है उसी प्रकार यह खण्ड की जन साधारण के लिए एक आकर्षक बनेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। कृति प्रणयन में डॉ. निर्मला बरडिया ने जो श्रम और आदिनाथ जैन ट्रस्ट के आयोजकों का जो सहयोग रहा है वह निश्चित ही सराहनीय है। आदिनाथ ट्रस्ट जैन विद्या के विकास के लिए जो कार्य कर रहा है, और उसमें जन सामान्य जो रुचि ले रहे हैं, वह निश्चित ही अनुमोदनीय है। मैं इस पाठ्यक्रम की भूरि भूरि अनुमोदना करता हूँ

डॉ. सागरमल जैन

प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

वर्तमान समय में जीव के कल्याण हेतु **"जिन आगम"** प्रमुख साधन है। जीवन की सफलता का आधार सम्यक जीवन में वृद्धि तथा आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। जहाँ सम्यक् ज्ञान है वहाँ शांति है, आनंद है और जहाँ अज्ञान है वहाँ आर्तध्यान है । परम पुण्योदय से मनुष्य जन्म एवं जिनशासन प्राप्त होने पर भी अध्ययन करने वाले अधिकतर विद्यार्थियों को धार्मिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा न मिलने के कारण आज के युग में प्रचलित भौतिकवादी ज्ञान-विज्ञान और शिक्षा मानव बुद्धि को तृष्णा, ईर्ष्या, असंतोष, विषय - विलास आदि तामसिक भावों को बढावा दिया हैं। ऐसे जड विज्ञान भौतिक वातावरण तथा विलासी जीवन की विषमता का निवारण करने के लिए सन्मार्ग सेवन तथा तत्वज्ञान की परम आवश्यकता है। इसी उद्देश्य से यह त्रिवर्षीय पत्राचार द्वारा पाठ्यक्रम (**Certificate & Diploma Course**)हमारे ट्रस्ट द्वारा शुरु किया गया हैं। ताकि प्रभु महावीर की वाणी घर बैठे जन - जन तक पहुँच सकें, नई पीढी धर्म के सन्मुख होवे तथा साथ में वे लोग भी लाभान्वित हो जहाँ दूर - सुदूर, छोटे - छोटे गाँवों में साधु-साध्वी भगवंत न पहुंच पाये, गुरुदेवों के विचरन के अभाव में ज्ञान प्राप्ति से दूर हो रहे हो।

"जैन धर्म दर्शन" के नाम से नवीन पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है, जिसमें भाग 1 से 6 तक प्रति 6-6 महीने में प्रस्तुत किये जाएंगे।

इस पुस्तक के पठन - पाठन से पाठकगण जैन इतिहास, तत्त्वमीमांसा, आचार मीमांसा, कर्म मीमांसा सूत्रार्थ - महापुरुषों के जीवन कथाओं के विषय पर विशेष ज्ञान प्राप्त कर मन की मलिनताओं को दूर कर सकेंगे, ऐसा विश्वास है। इस पुस्तक की समाप्ति पर इसके वर्णित पदार्थों की शास्त्रानुसारिता को प्रमाणिक करने के लिए **पंन्यास प्रवर श्री अजयसागरजी म.सा., साध्वीजी श्री जिनशिशुप्रज्ञाश्रीजी म.सा., डॉ. सागरमलजी जैन एवं प्राणी मित्र श्री कुमारपाल भाई वी. शाह** आदि ने निरीक्षण किया है। उस कारण बहुत सी भाषाएं भूलों में सुधार एवं पदार्थ की सचोष्टता आ सकी है। अन्य कई महात्माओं का भी मार्गदर्शन मिला है। उन सबके प्रति कृतज्ञयभाव व्यक्त करते हैं। पुस्तक की प्रुफरीडिंग के कार्य में **श्री मोहन जैन, श्रीमती रिंकल वजावत व श्रीमती विजयलक्ष्मी लुंकड आदि** का भी योगदान रहा है।

आशा है आप हमारे इस प्रयास को आंतरिक उल्लास, उर्जा एवं उमंग से बधाएंगे और प्रेम, प्रेरणा, प्रोत्साहन से अपने भीतर के आत्म विश्वास को बढाएंगे।

अंत में इस नम्र प्रयास के दौरान कोई भी जिनाज्ञा विरुद्ध कथन हुआ हो तो मिच्छामि दुक्कडं।

डॉ. निर्मला जैन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* जैन इतिहास *

श्री आदिनाथ भगवान का जीवन चरित्र

दस कल्प

दस अच्छेरे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* श्री ऋषभदेव चारित्र *

* **प्रथम भव** :- भगवान श्री ऋषभदेव का जीव एक बार अपर महाविदेह क्षेत्र के क्षितिप्रतिष्ठ नगर में धना सार्थवाह का हुआ वहाँ सम्यक्त्व उपार्जन किया - इसी जम्बुद्वीप के महाविदेह क्षेत्र अंदर सुप्रतिष्ठित नाम का शहर था, उसमें प्रियंकर नामक राजा राज्य करता था। धना ने वसंतपुर जाने के लिए साथियों को एकत्रित किया और नगर में यह घोषणा करादी कि जो कोई वसंतपुर जाना चाहता है, वह हमारे साथ आ सकता है, उसका हम निर्वाह करेंगे, ऐसा सुनकर बहुत से लोग साथ में मिल गये। इससे अच्छा खासा बडा संघ हो गया, उस समय वहां पर विराजमान पांच सौ मनुरिाज सहित आचार्य श्री धर्मघोषसूरिजी को श्री वसंतपुर की यात्रा करने की अभिलाषा हुई और वे भी अपने साधु मंडल सहित उसके साथ चले । कई दिन के बाद मार्ग में जाते हुए सार्थवाह का पडाव एक जंगल में पडा (वर्षाऋतु) के कारण इतनी बारिश हुई कि वहां से चलना भारी हो गया। कई दिन तक पडाव वहीं रहा। जंगल में पडे रहने के कारण लोगों के पास का खाना - पीना समाप्त हो गया। लोग बडा कष्ट भोगने लगे। सबसे ज्यादा कष्ट साधुओं को था, क्योंकि निरंतर जल - वर्षा के कारण उन्हें दो - दो, तीन - तीन दिन तक अन्न - जल नहीं मिलता था। एक दिन सार्थवाह को ख्याल आया कि मैंने साधुओं को साथ लाकर उनकी खबर भी न ली। वह तत्काल ही उनके पास गया और उनके चरणों में गिरकर क्षमा मांगने लगा। उसका अन्तःकरण उस समय पश्चाताप के कारण जल रहा था। मुनि ने उसको सान्त्वना देकर उठाया। धना ने मुनि महाराज से गोचरी लेने के लिए अपने डेरे चलने की प्रार्थना की। उत्कर्ष भाव से घी का दान दिया, निर्दोष देखकर मुनियों ने प्रसन्नता पूर्वक वह ले लिया। संसार - त्यागी, निष्परिग्रही साधुओं को इस प्रकार सुपात्रदान देने और उनकी तब तक सेवा न कर सका इसके लिए पश्चाताप करने से उसके अन्तःकरण की शुद्धि हुई और उसे मोक्ष के कारण में अतीव दुर्लभ - बोधी बीज (सम्यक्त्व) प्राप्त हुआ।

* **दूसरा भव** :- पहले भव में बहुत काल तक सम्यक्त्व पालकर अनत्य अवस्था में मनुष्य आयु पूर्ण कर उत्तर कुरुक्षेत्र में युगलिक हुआ।

* **तीसरा भव** :- तीसरे भव में ऋषभदेव का जीव सौधर्म देवलोक में देव हुआ।

* **चौथा भव** :- चौथे भव में देवलोक से च्यवकर श्री ऋषभदेव का जीव पश्चिम महाविदेह क्षेत्र के अंदर गन्धलावती विजय में शतबल नामक राजा की रानी चन्द्रकान्ता की कुक्षि से ''महाबल'' नामक पुत्र रुप उत्पन्न हुआ। युवावस्था प्राप्त होने पर वह महाविषयी और लम्पटी हो गया स्त्री - समूह के गीत गान - नृत्यादि श्रृंगार रस में लुब्ध बना रहता था, यहां तक कि सूर्य उदय अस्त का भी उसे ख्याल नहीं रहता था, धर्म में कभी प्रवृत्ति नहीं करता था । एक समय नाटक चल रहा था, मधुर स्वर से गीत गान हो रहा था, महाबल राजा एकाग्रता से आनंद ले रहा था, तब उसके मंत्री सुबुद्धि ने उसको बोध दिया '' तमाम ये गीत - गान विलाप के समान है, समग्र नाटक विडम्बना समान है, सर्व आभूषण भारभूत है और समस्त काम दुःख रुप है। यह सुनकर राजा ने मंत्री को कहा '' अहो मंत्रिश्वर ! प्रसंग बिना तुमने यह क्या कहा ?'' तब प्रधान ने निवेदन किया ''हे प्रभो ! केवली भगवंत ने मेरे आगे ऐसा फरमाया कि महाबल राजा की आयुष्य मात्र एक मास ही है इसलिए सावधान करने को मैंने यह कहा, यह सुनकर राजा भय से कंपित होकर मंत्री से पूछने लगा, आज तक मैं विषय वासना में आसक्त हूं, मुझे अब क्या करना चाहिए ? एक मास में बन भी क्या सकेगा? तब मंत्री ने कहा - एक महीने में तो व्यक्ति बहुत कुछ धर्म कर सकता है। एक दिन का सुपालित साधु-धर्म मोक्ष दायक हो सकता है, जो मोक्ष को प्राप्त न कर सके तो वैमानिक देव तो अवश्य प्राप्त होता है, मंत्री का यह उपकारपूर्ण वचन सुनकर राजा ने अपने पुत्र को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राज्याधिकार देकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

*** पांचवा भव** :- प्रभु ऋषभदेव का जीव महाबल का शरीर ईशान के देवलोक में स्वयंप्रभ विमान में ललितांग नामक देव हुआ। अनेक प्रकार के सुखोपभोगों में समय बिताया और आयु समाप्त होने पर देव देह का त्याग किया।

*** छट्ठा भव** :- छट्ठे भव में प्रभु ऋषभदेव का जीव वहां से च्यवकर पूर्व महाविदेह के अंदर लोहार्गल नगर में सुवर्णजंध राजा और लक्ष्मीवती रानी के पुत्रपने उत्पन्न हुआ । उसका नाम वज्रजंध रखा गया। उसका व्याह वज्रसेन राजा की पुत्री श्रीमती के साथ हुआ। वज्रजंध जब युवा हुआ तब उसके पिता उसको राज्य गद्दी सौंपकर साधु हो गये। वज्रजंध न्यायपूर्वक शासन और राज्य लक्ष्मी का उपभोग करने लगा। एक दिन शाम के समय संध्या का बदलता स्वरुप देखकर वैराग्यवान् हुआ और यह निश्चय किया कि प्रभात में पुत्र को राज्य शासन सौंपकर दीक्षा अंगीकार करुंगा। उधर वज्रजंध के पुत्र ने राज्य के लोभ से, धन का लालच देकर मंत्रीयों को फोड लिया और राजा को मारने का षडयंत्र रचा। आधी रात के समय राजकुमार ने वज्रजंध के शयनागार में विषधूप कर राजा और रानी को मार डाला।

*** सातवाँ और आठवाँ भव** :- राजा और रानी त्याग की शुभ कामनाओं में मरकर उत्तर कुरुक्षेत्र में युगलिक के रुप में पैदा हुए। वहां से आयु समाप्तकर दोनों सौधर्म देवलोक में अति स्नेह वाले देवता हुए। दीर्घकाल तक सुखोपभोग कर दोनों ने देवपर्याय का परित्याग किया।

*** नौवाँ भव** :- वहां से श्री ऋषभदेव का जीव जंबूद्वीप के विदेह क्षेत्र में क्षितिप्रतिष्ठितनगर में सुविधि वैद्य का पुत्र जीवानंद नाम का हुआ। उसी समय नगर में चार लडके और भी उत्पन्न हुए। उनके नाम क्रमशः महीधर, सुबुद्धि, पूर्णभद्र और गुणाकर थे। श्रीमती का जीव भी देवलोक से च्यवकर उसी नगर में ईश्वरदत्त सेठ का केशव नामक पुत्र रुप में उत्पन्न हुआ। ये छः अभिन्न हृदय मित्र थे। जीवानंद अपने पिता की भांति बहुत ही अच्छा वैद्य हुआ। एक समय सब मित्रजन वैद्य के घर पर बैठे हुए थे। वहां एक कोढ़ रोगी साधु आहार के लिए आये, उनको देखकर पांचों मित्रों ने वैद्य मित्र की निंदा की - वैद्य तो प्रायः निर्दय और लोभी होते हैं, जहां कहीं स्वार्थ देखे वहीं पर दवाई करते हैं, यदि वैद्य धर्मात्मा हो तो ऐसे पुण्य क्षेत्र मुनि महाराज की औषधि से सेवा क्यो नहीं करते ? यह सुनकर वैद्य ने कहा - मैं सेवा करने को तैयार हूँ। लक्षपाक तैल तो मेरे पास है मगर रत्नकम्बल और गोशीर्ष चंदन मेरे पास नहीं है, यदि ये दो वस्तुएं हो तो इन महात्मा की मैं अच्छी तरह वैय्यावच्च करुं। यह सुनकर ढाई लाख द्रव्य लेकर छःओ मित्र दुकान पर गये, वह द्रव्य वृद्ध सेठ के आगे रखकर रत्नकम्बल और गोशीष चंदन मांगा, तब सेठ ने पूछा ये दोनों वस्तुएं तुम किस कार्य के लिए लेने आये हो ? उन्होंने कहा मुनिराज की सेवा के लिए। यह सुनकर सेठ ने उनकी प्रशंसा की और वह धन धर्मार्थ कर रत्नकम्बल तथा गोशीर्ष चंदन देकर सेठ ने दीक्षा ले ली। अब वे छःओ मित्र औषध लेकर वन के अंदर गये, वहां पर काउस्सग्ग ध्यान में स्थित कुष्टि मुनि के चमडी के ऊपर वैद्य ने लक्षपाक तैल का मालिश कर ऊपर चंदन का विलेपन किया। बाद में रत्नकम्बल से शरीर ढक दिया। कंबल शीतल था इसलिए चमडी के सारे कीडे उसमें आ गये। जीवानंद ने धीरे से कंबल को उठाकर गाय के मुर्दे पर डाल दिया। इसी तरह दूसरे मालिश से मांस के और तीसरे मालिश से हड्डी में रहे हुए सर्व कीडे निकल गये, पश्चात् उन छिद्रों पर संरोहिणी औषधि का लेप कर दिया गया, इससे महात्मा का शरीर सुवर्ण जैसा हो गया। इस तरह उन मुनि को रोग रहित करके वे छः मित्र अपने स्थान पर वापिस चले गये। रत्नकम्बल के बिक्री के आया हुआ धन सात क्षेत्रों में व्यय कर दिये, बाद में उन छः ओ मित्रों ने चारित्र ग्रहण कर उसका निर्दोषः पालन किया। अन्त समय में उन्होंने संलेखना करके अनशन व्रत ग्रहण किया और आयु समाप्त होने पर उस देह का परित्याग किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

*** दसवाँ भव** :- दसवें भव में प्रभु ऋषभदेव का जीव जीवानंद नाम से ख्यात शरीर को छोडकर अपने छः मित्रों सहित, बारहवें देवलोक में इन्द्र का सामानिक देव हुआ। यहाँ बाईस सागरोपम का आयु पूर्ण किया।

*** ग्यारहवाँ भव** :- वहां से च्यवकर श्री ऋषभदेव का जीव जंबूद्वीप के पूर्वविदेह में पुंडरीकिणी नामक नगर के राजा वज्रसेन की धारिणी रानी की कुक्षी से जन्मा, नाम वज्रनाभ रखा गया, जब बालक गर्भ में आया था तब उसकी माता को चौदह स्वप्न आयें थे। जीवानंद के भव में जो मित्र थे वे भी चार, तो वज्रनाभ के सहोदर भाई हुए और केशव का जीव दूसरे राजा के यहां जन्मा। पिता वज्रसेन राजा ने अपने बडे पुत्र वज्र नाभ को राज्य शासन सौंप कर दीक्षा अंगीकार कर ली, क्रमशः घाती कर्म क्षय कर केवलज्ञान उपार्जन किया।

वज्रनाभ चक्रवर्ती थे। जब उनके पिता को केवलज्ञान हुआ तभी उनकी आयुधशाला में भी चक्ररत्न ने प्रवेश किया। और शेष तेरह रत्न भी उनको उसी समय प्राप्त हुए। जब उन्होंने पुष्कलावती विजय को अपने अधिकार में कर लिया तब समस्त राजाओं ने मिलकर उन पर चक्रवर्तित्व का अभिषेक किया। वज्रनाभ चक्रवर्ती की सारी संपदाओं का भोग करते थे तो भी इनकी बुद्धि हर समय धर्मसाधन की ओर ही रहती थी।

एक बार वज्रसेन तीर्थंकर विहार करते हुए पुंडरीकिणी नगरी में पधारे। वहां समवसरण की रचना हुई, पिता तीर्थंकर की देशना सुनकर वज्रनाभ को वैराग्य हो गया। उन्होंने अपने पुत्र को राज्य सौंपकर दीक्षा अंगीकार कर ली और चौदह पूर्व का अध्ययन किया, घोर तपस्या करने लगे। उन्होंने वीश स्थानक की आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया । उनके साथ पांचे मित्रों ने भी चारित्र अंगीकार कर, सभी सर्वार्थसिद्धि में देव रुप में उत्पन्न हुए।

*** बारहवाँ भव** :- पूर्वभव में निर्मल चारित्र पालकर सर्वाथसिद्ध विमान में तेतीस सागरोपम आयुष्यवाला देव हुए।

*** तेरहवाँ :- आदिनाथ भगवान का भव**

च्यवन कल्याणक :- तीसरे आरे में आषाढ कृष्णा चतुर्दशी के दिन उत्तराषाढा नक्षत्र में ऋषभदेव का जीव सर्वार्थसिद्ध देवलोक से च्यवकर नाभी कुलकर की जीवन संगिनी मरुदेवी की पवित्र कुक्षि में तीन ज्ञान सहित पधारें। उसी रात्रि में माता ने चौदह महास्वप्न देखे। वे इस प्रकार है - 1. वृषभ 2. हाथी 3. सिंह 4. लक्ष्मी 5. पुष्पमाला 6. चन्द्र 7. सूर्य 8. ध्वज 9. कुंभ 10. पद्मसरोवर 11. क्षीरसमुद्र 12. देवविमान 13. रत्न राशि 14. निर्धूम अग्नि। इन्द्रादि देवों ने च्यवन कल्याणक मनाया।

*** जन्म कल्याणक** :- गर्भकाल पूरा होने पर चैत्र कृष्णा अष्टमी की मध्य रात्रि में माता मरुदेवा ने एक पुत्र तथा एक पुत्री को युगल रुप में जन्म दिया। चौसठ इन्द्र व सहस्त्रों देवों ने पृथ्वी पर आकर भगवान् का जन्मोत्सव मनाया। इतनी बडी संख्या में देवों को देखकर यौगलिक भी इकट्ठे हो गये। उत्सव विधि से अपरिचित होने पर भी देखा - देखी सभी ने मिलकर जन्मोत्सव मनाया। इस प्रकार अवसर्पिणी काल में सबसे पहले भगवान् का ही जन्मोत्सव मनाया गया।

*** नामकरण** :- जन्मोत्सव के बाद नामकरण का अवसर आया। बालक का क्या नाम रखा जाये। इस संबंध में कुलकर नाभि ने कहा जब बालक गर्भ में आया था तब माता ने पहला स्वप्न वृषभ का देखा था और इसके उरुस्थल पर भी वृषभ का शुभ चिन्ह है, अतः मेरी दृष्टि से बालक का नाम वृषभकुमार रखा जाये। उपस्थित सभी युगलों को यह नाम उचित लगा। सभी ने बालक को इसी नाम से पुकारा। पुत्री का नाम सुनंदा रखा गया। बाद में संभवतः उच्चारण सरसता के कारण वृषभ से ऋषभ नाम प्रचलित हो गया। कल्पसूत्र की टीका में उनके अन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पांच गुण निष्पन्न नाम भी उपलब्ध होते हैं, यथा - वृषभ, प्रथम राजा, प्रथम भिक्षाचर, प्रथम जिन, प्रथम तीर्थंकर।

*** वंश** :- यौगलिक युग में मानव समाज किसी कुल, जाति या वंश के विभाग से विभक्त नहीं था। अतः ऋषभ का भी कोई वंश (जाति) नहीं था। जब ऋषभ एक वर्ष के हो गये तो एक दिन वे अपने पिता की गोद में बैठे हुए बाल - क्रीडा कर रहे थे तभी इन्द्र एक थाल में विविध खाद्य वस्तुएं सजाकर लाएं। यह देखकर ऋषभकुमार गुडालिया चलकर इन्द्र के पास पहुंचे और सर्वप्रथम इक्षु (गन्ने) का टुकडा उठाकर चूसने का यत्न किया। बालक ऋषभ के इस प्रयत्न को ध्यान में रखकर इन्द्र ने कहा - बालक को इक्षु प्रिय हैं अतः आगे इस वंश का नाम इक्ष्वाकु वंश होगा। इक्ष्वाकु वंश की स्थापना के साथ ही वंश परंपरा का प्रारंभ हुआ।

अन्य तीर्थंकर बाल्यावस्था में अंगूठे में संचारित अमृत पान करते हैं, बाद अग्नि पक्व आहार करते हैं, परंतु ऋषभ देव तो देवकुरु - उत्तरकुरुक्षेत्र से देवों द्वारा लाये हुए कल्पवृक्षों के फल का आहार करते थे।

*** भगवान का विवाह प्रसंग** :- यौगलिक युग में विवाह पद्धति का प्रचलन नहीं था। जो स्त्री - पुरुष के रुप में युगल पैदा होता, वे ही पति - पत्नि के रुप में संबंध स्थापित करते। बहु-पत्नी प्रथा का प्रचलन नहीं था। सर्वप्रथम ऋषभकुमार का विवाह दो कन्याओं के साथ किया गया। दो कन्याओं में एक उसके साथ जन्मी हुई सुनन्दा थी। दूसरी अनाथ कन्या सुमंगला थी। अब तक अकाल मृत्यु नहीं होती थी पर अब धीरे - धीरे काल का प्रभाव हुआ, एक दुर्घटना घटी। एक जोडा था, उसमें पुत्र मर गया, पुत्री बच गई। थोडे समय बाद उसके माता - पिता मर गये। नाभिकुलकर ने उस कन्या सुमंगला को ऋषभ की पत्नी के रुप में स्वीकार कर लिया। यही से विवाह पद्धति का प्रारंभ हुआ। इंद्र - इंद्राणी द्वारा रसम करवाई गई।

*** भगवान के संतान** :- यौगलिक युग में हर युगल के जीवन में एक बार ही संतानोत्पत्ति होती थी और वह भी युगल के रुप में । परंतु ऋषभदेव को सौ पुत्र और दो पुत्रियां हुई। सुनन्दा के तो एक ही युगल पैदा हुआ - बाहुबली और सुंदरी। सुमंगला के पचास युगल जन्मे। जिनमें प्रथम युगल में भरत और ब्राह्मी का जन्म हुआ, शेष उनपचास युगलों में पुत्रों के रुप पैदा हुए। इसके बाद अन्य युगल दम्पत्तियों के भी अनेक पुत्र और पुत्रियां होने लगे।

*** भगवान का राज्याभिषेक** :- जब काल हीनातिहीन आने लगा तब कल्पवृक्षों की महिमा कम हो गई। युगलिये परस्पर लडाई करने लगे। ''हकार - मकार - धिक्कार'' इन तीनों दंड नीति का उल्लंघन करने लगे। नाभिकुलकर तो वृद्ध हो गये, युगलिये ऋषभकुमार के पास अपनी शिकायत करने लगे कि ''हमारा न्याय करो'' प्रभु ने कहा :- लोगों में जो मर्यादा का उल्लंघन करते हैं, उन्हें दंड देनेवाला राजा होता है। मैं राजा नहीं हूँ। युगलियों ने कहा '' आप ही हमारे राजा हो'' तब प्रभु ने बताया कि तुम नाभि कुलकर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के पास जाकर उनसे राजा की याचना करो। उसके बाद युगलिक नाभि कुलकर के पास जाकर के राजा की याचना की, तब नाभिकुलकर ने कहा कि तुम्हारा राजा ऋषभ ही बने। । यह सुनते ही हर्षित हुए युगलिये प्रभु के पास जाकर यह हकीकत निवेदन करके प्रभु का राज्याभिषेक करने हेतु पानी लेने के लिए सरोवर की ओर गये। उस समय शक्रेन्स का सिंहासन कंपित हुआ। इन्द्र अवधिज्ञान से ऋषभदेव का राज्याभिषेक काल जाना और शीघ्र ही देवों सहित प्रभु के पास आया। इन्द्र ने आकर राज्य योग्य मुकुट, कुण्डल हारादि पहना कर सिंहासन स्थत्तपित कर प्रभु का राज्याभिषेक किया। इतने में वे युगलिक जन कमल के पात्रों में पानी भरकर वहां आ पहुंचे। भगवान का सारा शरीर अलंकारों से अलंकृत और वस्त्रों से भूषित देखकर दोनों चरण के अंगूठे पर जल चढाया। इन्द्र ने उनका विनय विवेक देखकर कहा :- यह लोग बहुत विनीत है। इससे इन्द्र ने इस नगरी का नाम '' विनीता नगरी'' नाम स्थापन किया।

*** शासन व्यवस्था का विकास एवं दंड नीति** :- राज्याभिषेक के पश्चात् ऋषभदेव ने राज्य की सुव्यवस्था और विकास के लिए चार प्रकार के कुल बनाये, उनके नाम इस प्रकार थे - 1. उग्र 2. भोग 3. राजन्य 4. क्षत्रीय

1. नगर की रक्षा का काम यानी सिपाहीगिरी करनेवालों को एवं चोर लुटेरों आदि प्रजापीडक लोगों को दंड देनेवालों का जो समूह था उस समूह के लोग उग्रकुलवाले कहलाते थे।
2. जो लोग मंत्री का कार्य करते थे वे भोगकुलवाले कहलाते थे।
3. जो लोग प्रभु के समयवयस्क थे और प्रभु की सेवा में हर समय रहते थे वे राजन्यकुलवाले कहलाते थे।
4. बाकी के जो लोग थे वे सभी क्षत्रिय कहलाते थे।

विरोधी तत्त्वों से राज्य की रक्षा करने तथा दुष्टों, अपराधियों को दण्डित करने के लिए उन्होंने चार प्रकार की सेना और सेनापतियों की व्यवस्था की। अपराधी की खोज एवं अपराध निरोध के लिए साम, दाम, दण्ड और भेद नीति तथा निम्नलिखित चार प्रकार की दण्ड व्यवस्था भी की।

1. **परिभाषक** :- थोडे समय के लिए नजरबन्द करना - अर्थात् अपराधी को कुछ समय के लिए आक्रोशपूर्ण शब्दों से दण्डित करना। क्रोधपूर्ण शब्दों में अपराधी को 'यहीं बैठ जाओ' का आदेश देना।
2. **मण्डलिबन्ध** :- नजरबन्ध करना - नियमित क्षेत्र से बाहर न जाने देने का आदेश देना।
3. **बन्ध** :- बंधन का प्रयोग। बन्दीगृह जैसे किसी एक स्थान में अपराधी को बन्द करके रखना।
4. **घात** :- डंडे का प्रयोग । अपराधी के हाथ - पैर आदि शरीर के किसी अंग - उपांग का छेदन करना।

*** धर्मानुकूल लोक व्यवस्था** :- राष्ट्र की सुरक्षा और उत्तम व्यवस्था कर लेने के पश्चात् ऋषभदेव ने लोक जीवन को स्वावलम्बी बनाना आवश्यक समझा। राष्ट्रवासी अपना जीवन स्वयं सरलता से बिता सकें ऐसी शिक्षा देने के विचार से उन्होंने असि, मसि और कृषि कर्म का प्रजा को उपदेश दिया।

*** असि कर्म शिक्षा** :- ऋषभदेव ने एक ऐसा वर्ग तैयार किया जो लोगों की सुरक्षा का दायित्व संभालने में सक्षम हो। उन्हें तलवार, भाला, बरछी आदि शस्त्र चलाने सिखाए। साथ में कब, किस पर इन शस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए, इसका भी निर्देश दिया। वे लोग देश की सुरक्षा के लिए सदा तत्पर रहते थे। इस वर्ग को क्षत्रिय नाम से पुकारा गया।

*** मसि कर्म शिक्षा** :- (मसि यानी स्याही) मसि कर्म का तात्पर्य लिखा पढी से है। ऋषभदेव ने एक ऐसा वर्ग तैयार किया जो उत्पादन की गई वस्तुओं का विनिमय कर सकें। एक - दूसरें तक पहुंचा सके। प्रारंभ में मुद्रा का प्रचलन सीमित था।

www.jainelibrary.org

वस्तु से वस्तु का विनिमय होता था। उनका हिसाब रखना जरुरी था। कौनसी वस्तु का विनिमय किस मात्रा में होता है, जानना भी जरुरी था। इसके लिए कुछ लोगों को प्रशिक्षित किया गया। इस विनिमय प्रक्रिया को व्यापार तथा इसे करने वाले वर्ग को व्यापारी (वैश्य) कहकर पुकारा गया।

*** कृषि कर्म शिक्षा** :- राजा बनते ही ऋषभदेव ने खाद्य समस्या का समाधान किया। उन्होंने लोगों को एकत्रित किया और कहा - अब कल्पवृक्षों की क्षमता कम होने लगी है। समय के साथ उन्होंने फल देने बंद कर दिये हैं। अतः ऐसी स्थिति में श्रम करना होगा। खेती में अनाज बोना होगा। ऋषभदेव के इस आह्वान पर हजारों नवयुवक खडे होकर श्रम करने के लिए संकल्पबद्ध हो गए। ऋषभदेव ने उन्हें कृषि खेती कैसे करनी चाहिए इसका प्रशिक्षण दिया। कृषि के साथ अन्य सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के उपाय भी सिखाये।

*** कला प्रशिक्षण** :- भगवान श्री ऋषभदेव सर्व कलाओं में कुशल थे। अतः लोगों को स्वावलंबी व कर्मशील बनाने के लिए विविध प्रकार की शिक्षा दी, कला का प्रशिक्षण दिया। उन्होंने सौ शिल्प और असि, मसि, कृषि रुप कर्मों का कार्य लोगों को सक्रिय ज्ञान कराया। इसके साथ ही ऋषभदेव ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को लेख, गणित, नाट्य, गीत, स्वरगत, शास्त्र विद्या आदि 72 कलाएं सिखाई। कनिष्ट पुत्र बाहुबलि को प्राणी की लक्षण विद्या का उपदेश दिया। इसके अतिरिक्त धनुर्वेद, अर्थशास्त्र, चिकित्सा, शास्त्र, क्रीडा - विधि आदि विद्याओं का प्रवर्तन कर लोगों को सुव्यवस्थित और सुसंस्कृत बनाया।

इसी प्रकार उन्होंने अपनी बडी पुत्री ब्राह्मी को अठारह लिपियों का ज्ञान करवाया और छोटी पुत्री सुन्दरी को अंकविद्या अर्थात् गणित का अध्ययन करवाया। इन विद्याओं का सर्वप्रथम शिक्षण ब्राह्मी और सुंदरी के रुप में नारी जाती को प्राप्त हुआ। ब्राह्मी ने जिस लिपि का अध्ययन किया वह ब्राह्मी लिपि के नाम से जानी जाने लगी। आज भी विश्व में ब्राह्मी लिपि प्राचीनतम मानी जाती है। भारतवर्ष एवं आसपास की देवनागरी आदि प्रायः सभी लिपियाँ इसी में से निकली हुई हैं। इस प्रकार सम्राट श्री ऋषभदेव ने प्रजा के हित और अभ्युदय के लिए पुरुषों को बहोत्तर कलाएं, स्त्रियों को चौसठ कलाएं और सौ प्रकार के शिल्पों का परिज्ञान कराया।

*** वर्ण व्यवस्था का प्रारंभ** :- भगवान ऋषभ देव से पूर्व भारतवर्ष में कोई वर्ण या जाति की व्यवस्था नहीं थी। भारतीय ग्रन्थों में उपलब्ध चार वर्णों में से तीन वर्णों की उत्पत्ति भगवान ऋषभदेव के समय हुई। जो लोग शारीरिक दृष्टि से शक्ति संपन्न थे उन्हें प्रजा की रक्षा के कार्य से नियुक्त किया गया और उन्हें पहचान के लिए क्षत्रिय की संज्ञा दी गई। जो लोग कृषि, पशुपालन एवं वस्तुओं का क्रय - विक्रय वितरण आदि का कार्य करते, उन लोगों के वर्ग को वैश्य की संज्ञा दी गई। कृषि और मसि कर्म के अतिरिक्त अन्य कार्य करने वाले लोगों को शूद्र संज्ञा दी गई। उनके जिम्मे सेवा तथा सफाई का कार्य था।

ब्राह्मण वर्ण की उत्पत्ति सम्राट भरत के शासन काल में हुई। सम्राट भरत ने धर्म के सतत जागरण के लिए कुछ बुद्धिजीवी व्यक्तियों को चुना जो वक्तृत्व कला में निपुण थे। ब्रह्मचारी रहकर समय - समय पर राज्य सभा में तथा अन्य स्थानों में जाकर प्रवचन देना, धार्मिक प्रेरणा देना उनका काम था। ब्रह्मचर्य का पालन करने से या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्म (आत्मा) की चर्चा में लीन रहने के कारण इन्हें ब्राह्मण कहा जाता था। इनकी संख्या सीमित थी और भरत द्वारा निर्धारित थी। इस प्रकार चारों वर्ण की उत्पत्ति ऋषभदेव और सम्राट भरत के समय में हो गई थी, किंतु हीनता और उच्चता की भावना उस समय बिल्कुल नहीं थी। सभी अपने - अपने कार्य से संतुष्ट थे। वर्ण के नाम पर हीन - उच्च या स्पृश्य अस्पृश्य आदि के भाव नहीं थे।

* **विवाह प्रथा** :- भगवान ऋषभदेव ने काम - भावना पर नियंत्रण रखने की दृष्टि से शादी की व्यवस्था प्रचलित की। शादी से पहले का जीवन संयमित बनाये रखना अनिवार्य घोषित किया। लोग पत्नी के अतिरिक्त अन्य सभी के साथ निर्विकार संबंध रखने के आदी हो गये । इसके अतिरिक्त बहन के साथ शादी भी वर्जित कर दी गयी। भाई - बहन का पवित्र संबंध जो हम आज देख रहे हैं, वह भगवान ऋषभदेव की ही देन है।

* **लोकांतिक देवों की धर्मतीर्थप्रवर्तन के लिए प्रार्थना** :- प्रभु का दीक्षा समय समीप जानकर लोकान्तिक देवों ने आकर अपने शाश्वत आचार के अनुसार प्रभु से संयम मार्ग प्रवर्तने हेतु प्रार्थना की । देवताओं के जाने के बाद अपनी स्थिति का स्मरण कर प्रभु ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को राज्यासन पर बैठाया। अन्य पुत्रों को अपने - अपने नाम के देशों में अधिपति किया और संसार से विरक्त हुए।

* **वार्षिक दान** :- संसार से वैराग्य भाव धारण कर प्रभु ने सांवत्सरिक दान देना प्रारंभ किया। दीक्षा के दिन से एक वर्ष पूर्व प्रभु ने नित्य प्रातःकाल वार्षिकदान प्रारंभ कर दिया। दान देने का समय सूर्योदय से लेकर मध्यान्ह समय तक था। यह दान बिना भेदभाव देते थे। शास्त्रकारों के अनुसार प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख और एक वर्ष में तीन सौ अट्ठासी करोड़ और अस्सी लाख सुवर्ण मुद्राओं का दान करते हैं।

* **दीक्षा कल्याणक** :- चैत्र वद अष्टमी के दिन भगवान ऋषभदेव विनीता नगरी के मध्य में होकर सिद्धार्थ वन के अंदर अशोक वृक्ष के नीचे स्वयं आभूषणादि सर्व निकालकर चार मुष्टि लोच करते हैं, उस समय पांचवी मुष्टि के केश उनके स्वर्णिम देह के पृष्ठ भाग पर यानि दोनों स्कन्धों पर बिखरे हुए देखकर इन्द्र महाराज ने प्रार्थना की कि '' हे भगवन ! यह बाल सुंदर लगते हैं, इसके लिए इनको इसी तरह रहने दीजिए'' इन्द्र का वचन मानकर प्रभु ने उन केशों का लोच नहीं किया, इससे अब तक भी कहीं कहीं आदिश्वर भगवान की प्रतिमा के कन्धे पर जटा होती है। दीक्षा के समय प्रभु ने चौविहार तप किया था। भगवान के साथ कच्छ महाकच्छ आदि चार हजार राजा शकटोद्यान में आकर प्रभु के साथ दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा समय इन्द्र ने प्रभु के कन्धे पर देवदुष्य वस्त्र डाला। इस तरह भगवान गृहस्थावास को त्याग कर अनगार हुए, इस वक्त ऋषभदेव भगवान को चौथा मनः पर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ।

भगवान ऋषभदेव उस युग के प्रथम मुनि या भिक्षु थे। लोग मुनि की आचार - मर्यादा से अनभिज्ञ थे। उन्हें कैसी भिक्षा दी जाए यह भी पता नहीं था। भगवान ऋषभदेव जब भिक्षा के लिए नगर में आते तो लोग उन्हें स्वामी, महाराज आदि आदर पूर्वक संबोधन देकर स्वर्ण, आभूषण, वस्त्र आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की भेंट सजाकर लाते, परंतु ऋषभदेव के लिए यह सब ऊग्राय था। वे मौन भाव से वापस वन लौट जाते। इस प्रकार शुद्ध भिक्षा के अभाव में एक वर्ष से अधिक समय तक निर्जल निराहार तप करते रहे। इस बीच जो चार हजार व्यक्ति उनके साथ मुनि बने थे, पूछते - '' स्वामी ! हमें भूख लगी है, प्यास सता रही है, हम क्या करें ? क्या खायें ? क्या पीयें ? '' परंतु भगवान ऋषभदेव कठोर मौन धारण किये रहते । भूख - प्यास से व्याकुल होकर उनमें से अनेक मुनियों ने झरनों, नदियों का पानी पीना चालू कर दिया। कंदमूल, फल खाकर समय बिताया। कुछ जंगलों में जाकर तापस / परिव्राजक बन गये।

अब श्री ऋषभदेव स्वामी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भिक्षा के लिए भ्रमण करते हैं, मगर पूर्वभव में बैलों के मुख पर छींकी बंधाने के कारण अन्तराय कर्म के उदय से शुद्ध भिक्षा कहीं नहीं मिली। भगवान ऋषभदेव विहार करते करते एक बार हस्तिनापुर नगर की ओर पधारे। हस्तिनापुर में उस समय बाहुबली के पुत्र सोमप्रभ राजा राज्य करते थे। उसका पुत्र था श्रेयांसकुमार। उस रात श्रेयांसकुमार ने एक विचित्र स्वप्न देखा - स्वर्ण के समान चमकनेवाला मेरु पर्वत काला पड गया है और मैं दूध के कलश से उसका अभिषेक कर उसे पुनः उज्जवल बना रहा हूँ।

प्रातः काल श्रेयांसकुमार ने अपने पिता महाराज सोमप्रभ से इस विचित्र स्वप्न की चर्चा की। राजा ने भी ऐसा ही कुछ स्वप्न देखा और उसकी चर्चा की। परंतु उस शुभ स्वप्न का सूचक रहस्य कोई नहीं समझ सका। तब श्रेयांसकुमार अपने महल के झरोखें में बैठकर स्वप्न के रहस्य पर विचार करने लगे। उसी समय भगवान ऋषभदेव हस्तिनापुर नगर में पधारे। भगवान का आगमन सुनकर सैंकडों - हजारों लोग उनके दर्शनार्थ उमड पडे। लोग भिन्न - भिन्न प्रकार के उपहार सजाकर लाने लगे। परंतु प्रभु ऋषभदेव ने कुछ भी ग्रहण नहीं किया। वे सीधे राजमहल की ओर बढते चले आ रहे थे। अचानक श्रेयांसकुमार ने भगवान ऋषभदेव को राजमहल की ओर पधारते देखा, वह अपलक दृष्टि से देखता ही रह गया। गहन और एकाग्र भावपूर्वक देखने से उसे जाति - स्मरण ज्ञान हुआ। पिछले जन्म चित्रपट की भांती स्मृतियों में झलकने लगे। उसने तत्काल समझ लिया '' भगवान ऋषभदेव एक वर्ष से ज्यादा भिक्षा के लिए निराहार विचर रहे हैं और मुनि मर्यादा के अनुकूल शुद्ध भिक्षा देने का किसी को ज्ञान नहीं है'' वह शीघ्र ही राजमहल से नीचे उतरा। भगवान को भक्तिपूर्वक वंदना की। प्रार्थना की '' प्रभो ! पधारिए आज ही मेरे आंगन में ताजे इक्षुरस के 108 कलश आये हैं, वे पूर्ण शुद्ध है, आपके अनुकूल है कृपा कर इक्षुरस ग्रहण कीजिए।

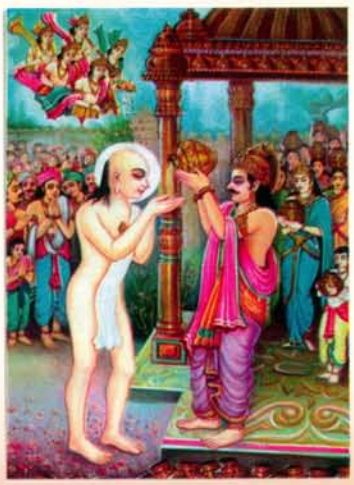

प्रभु ऋषभदेव ने अपने दोनों हाथों का अंजलिपुट बनाकर इक्षुरस ग्रहण किया। अत्यंत भक्तिभावपूर्वक श्रेयांसकुमार ने इक्षुरस दान कर भगवान को वर्षीतप (एक वर्ष 40 दिन लगभग) का पारणा कराकर महान धर्मलाभ प्राप्त किया। देवताओं ने आकाश में ''अहोदानं ! अहोदानं !'' की घोषणा कर हर्ष ध्वनियाँ की। रत्नों, पंचवर्णी पुष्पों तथा सुगंधित जल आदि की वृष्टि कर आनंद मनाया। संसार में धर्म - दान की प्रवृत्ति का शुभारंभ हुआ। इस पुनीत स्मृति में यह वैशाख शुक्ला तृतीया का दिन ''अक्षय तृतीया'' के नाम से पर्व के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रुप में मनाया जाने लगा (आज भी वर्षीतप के पारणे के रुप में लाखों जैन इस महापर्व को मनाते हैं।)

*** केवलज्ञान कल्याणक एवं तीर्थ स्थापना** :- भगवान ऋषभदेव एक हजार वर्ष तप छद्मस्थ अवस्था में साधना करते रहे। फागुण वदि एकादशी के दिन पुरिमताल के उद्यान में वटवृक्ष के नीचे चौविहार अट्ठम तप सहित उत्तराषाढ नक्षत्र में शुक्लध्यान ध्याते हुए भगवान को सवोत्कृष्ट केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। जिस समय भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ उस समय संसार में क्षण - भर के लिए दिव्य आलोक सा फैल गया। अगणित मानव समूह भगवान को वंदन करने आने लगे। चक्रवर्ती भरत को सूचना मिलते ही वे भी माता मरुदेवा के साथ भगवान ऋषभदेव का केवलज्ञान महोत्सव मनाने आये।

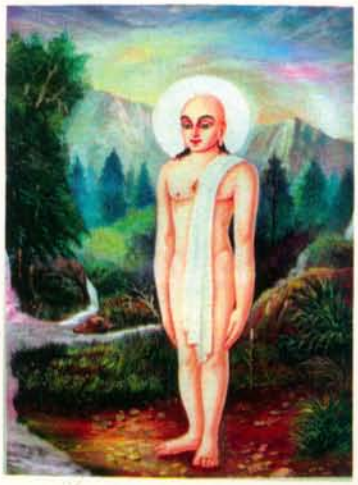

माता मरुदेवा हाथी पर बैठकर जब शकटउद्यान में पहुँची तो उन्होंने दूर से ही देवताओं द्वारा रचित दिव्य समवोसरण में भगवान को विराजमान देखा, हजारों सूर्य से भी अधिक प्रकाशमान अगणित देव - देवेन्द्रों से पूजित भगवान का दिव्य मनोहारी स्वरुप देखते - देखते माता मरुदेवा भाव विभोर हो गयी। उच्च निर्मल भाव धारा में बहते हुए माता मरुदेवा केवलज्ञान प्राप्त कर हाथी के होदे पर से ही मोक्ष पधार गई।

भगवान की प्रथम देशना सुनकर भरत के 500 पुत्र और 700 पौत्र आदि व्यक्तियों ने दीक्षा अंगीकार की। हजारों व्यक्तियों ने श्रावक धर्म स्वीकार किया। इनमें भरत महाराजा का ज्येष्ठ पुत्र पुण्डरिक कुमार प्रथम गणधर हुए। युग की आदि में चतुर्विध संघ की स्थापना करके धर्म प्रवर्तन करने के कारण भगवान ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ कहलाये।

*** निर्वाण कल्याणक** :- भगवान ऋषभदेव 20 लाख पूर्व वर्ष कुमार अवस्था में, 63 लाख पूर्व राज्य अवस्था में, एक हजार वर्ष छद्मस्थ अवस्था में, एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व वर्ष केवली अवस्था में रहे यानी संपूर्ण एक लाख पूर्व वर्ष चारित्र पालकर 84 लाख पूर्व वर्ष की आयुष्य पूर्ण कर अर्थात् घाती - अघाती कर्मों को क्षय कर इसी अवसर्पिणी के सुखम : दुखम् नामक तीसरे आरे के 3 वर्ष साढे आठ महीने शेष रहने पर माघ वदी तेरस के दिन अष्टापद पर्वत पर 10 हजार मुनियों सहित, छः उपवास युक्त अभिजित नक्षत्र में पद्मासन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विराजमान रहकर मोक्ष पधारे, सौधर्म स्वर्ग के अधिपति इन्द्र आदि असंख्य देवों तथा भरत चक्रवर्ती आदि मानवों ने मिलकर भगवान ऋषभदेव तथा अन्य मुनियों का निर्वाण कल्याणक मनाया।

* भगवान की शिष्य संपदा *

गणधर :- 84	साधु :- 84,000	साध्वी :- 3,00,000
श्रावक :- 3,05,000	श्राविका :- 5,54,000	केवलज्ञानी :- 20,000
मनःपर्यवज्ञानी :- 12,750	अवधिज्ञानी :- 9,000	वैक्रिय लब्धिधारी :- 20,600
चतुर्दश पूर्वी :- 4,750	चर्चावादी :- 12,650	

* एक झलक *

माता :- मरुदेवा	पिता :- नाभि	नगरी :- विनीता (अयोध्या)
वंश :- इक्ष्वाकु	गोत्र :- काश्यप	चिन्ह :- वृषभ
वर्ण :- स्वर्ण	शरीर ऊंचाई :- 500 धनुष	यक्ष :- गोमुख
यक्षिणी :- चक्रेश्वरी	कुमार काल :- 20 लाख पूर्व	राज्यकाल :- 63 लाख पूर्व
छद्मस्थ काल :- 1000 वर्ष	कुल दीक्षा पर्याय :- 1 लाख पूर्व	आयुष्य :- 84 लाख पूर्व

केवली पर्याय :- 1 लाख पूर्व में एक एक हजार वर्ष कम

* पंच कल्याणक *

कल्याणक - तिथि	स्थल	नक्षत्र
च्यवन :- आषाढ कृष्णा 4	सर्वार्थसिद्ध	उत्तराषाढा
जन्म :- चैत्र कृष्णा 8	अयोध्या	उत्तराषाढा
दीक्षा :- चैत्र कृष्णा 8	अयोध्या	उत्तराषाढा
केवलज्ञान :- फाल्गुण कृष्ण 11	पुरिमतालपुर	उत्तराषाढा
निर्वाण :- माघ कृष्ण 12	अष्टापद पर्वत	अभिजित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* दस कल्प *

कल्प यानी साधुओं के आचार। साधुओं के आचार 10 प्रकार कें है।

1. अचेलक 2. औद्देशिक 3. शय्यातर 4. राज पिण्ड 5. कृतिक्रम 6. महाव्रत 7. ज्येष्टकल्प 8. प्रतिक्रमण 9. मासकल्प और 10. पर्युषणा कल्प।

1. **अचेलक कल्प**:- आदिश्वर और महावीर स्वामी के साधु जीर्ण प्राय अल्पमूल्य वाले श्वेत वस्त्र धारण करते हैं और बावीस तीर्थंकरों के साधुजन प्रमाण रहित नवीन बहुमूल्य पंच वर्ण के वस्त्र भी धारण करते हैं।

2. **औद्देशिक कल्प**:- किसी भी मुनि के निमित्त बनाया हुआ आहारादि प्रथम व अंतिम तीर्थंकर के सर्व साधुओं को नहीं कल्पता, और बावीस तीर्थंकरों के शासन में जिस साधु के निमित्त आहारादि बनाया हो उसको नहीं कल्पे पर बाकी सब साधुजन ले सकते हैं।

3. **शय्यातर कल्प**:- अर्थात् जिस जगह साधु उतरे हो, उस जगह का मालिक, उपाश्रय (स्थान) देनेवाले के घर का आहार - पानी समस्त तीर्थंकरों के मुनियों को लेना नहीं, कल्प शैय्यातर के घर की इतनी चीजें लेना नहीं कल्पे 1. आहार 2. पानी 3. फल मेवा खादिम आदि 4. मुखवास 5. वस्त्र 6. पात्र 7. कम्बल 8. रजोहरण 9. सूई डोरा 10. चाकू केन्ची 11. दान्त व कान साफ करने के साधन 12. नाखुन काटने के साधन। यह बारह प्रकार का पिण्ड सर्व तीर्थंकरों के समय सभी साधुओं को नहीं कल्पता 1. घास 2. पत्थर की चीज (खरल आदि) 3. राख 4. पीठपाटिया 5. मकान 6. पाट - पाटला 7. रंग - रोगान आदि वस्तु ले सकते हैं।

4. **राजपिंड कल्प** :- सेनापति, पुरोहित, राज्याभिषेक युक्त राजा, श्रेष्ठि आदि, उसका आहार - पानी पहले और अंतिम शासन के मुनियों को नहीं कल्पता है, बावीस तीर्थंकर के मुनियों को कल्पता है।

5. **कृतिकर्म कल्प**:- अर्थात् वंदन, छोटा साधु बडे साधु के चरणों में वंदन करें, यह व्यवहार समग्र तीर्थंकरों के मुनियों के समान है।

6. **महाव्रत कल्प** :- पहले और अंतिम तीर्थंकरों के साधु के पांच महाव्रत होते हैं और बावीस तीर्थंकरों के शासन में साधु के चार महाव्रत होने के कारण कि वे स्त्री को परिग्रह में ही गिन लेते हैं।

7. **ज्येष्ठ कल्प** :- अर्थात् बडे - लघु पने का व्यवहार, संसार की वास्तविकताओं को देख, प्रभु ने धर्म पुरुष - प्रधान बताया। इसलिए सौ वर्ष की दीक्षीत साध्वी आज के दीक्षित मुनिराज को वंदन करें। इस तरह प्रभु ने एक दिन के दीक्षित साधु पर भी साध्वीयों के योग क्षेम की महान जवाबदारी डाली है। श्री आदिनाथ भगवान के और महावीर स्वामी के शासन में एक छोटी और दूसरी बडी इस तरह दो दीक्षाएं होती है, छोटेपन और बडेपन का पर्याय बडी दीक्षा से गिना जाता है, बावीस तीर्थंकरों के साधुओं में तो दीक्षा दिन से ही छोटाई - बडाई गिनी जाती है।

8. **प्रतिक्रमण कल्प** :- श्री आदिनाथ भगवान और श्री महावीरस्वामी के शासन के साधुओं को दोष लगे या न लगे, दोनों समय प्रतिक्रमण अवश्य करना होता हैं, बावीस जिनेश्वरों के मुनिजन तो दोष लगने पर ही प्रतिक्रमण करते हैं, अन्यथा नहीं।

9. **मास कल्प** :- पहले और अंतिम तीर्थंकरों के साधु नौकल्पी विहार करते हैं, यानी एक एक मास के आठ कल्प और चौमासे का एक कल्प इस प्रकार एक ही स्थान ज्यादा से ज्यादा रह सकने का समय पठन - पाठन के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिए, ग्लान तपस्वियों की सेवा के लिए, बीमारी तथा विशेष लाभ के कारण अधिक काल पर्यन्त भी मुनि एक स्थान पर ठहर सकते हैं। बावीस तीर्थंकरों के मुनियों का कोई नियत काल नहीं होता, एक ही स्थान पर महीना, दो तीन महीना या इससे भी अधिक ठहर सकते हैं।

10. **पर्युषण कल्प** :- बारिश हो अथवा न हो, योग्य क्षेत्र प्राप्त होने पर मुनि चौमासा ठहरते है, कदाचित योग्य क्षेत्र न हो तो भी भादों शुद्धि पंचमी से 70 दिन पर्यन्त एक स्थान पर अवश्य ठहरना होता है, यह श्री आदेश्वर भगवान व श्री महावीर प्रभु के साधुओं का आचार है, बावीस प्रभु के मुनियों के लिए कोई नियतकाल नहीं है।

उपरोक्त दस कल्पों में से 1. अचेलत्व 2. औद्देशिक 3. प्रतिक्रमण 4. राजपिण्ड 5. मासकल्प 6. पर्युषण का कल्प ये छः कल्प अस्थिर कल्प कहे जाते हैं, कारण कि ये प्रथम व अंतिम तीर्थंकरों के शासन में नियमितरुप माने जाते हैं और बावीस भगवंतों के शासन में अनियत है।

1. शैय्यातरपिण्ड 2. चार महाव्रत 3. ज्येष्ठ धर्म 4. परस्पर वंदन व्यवहार - ये चार कल्प स्थिर कल्प कहे जाते हैं, इसलिए कि सर्व तीर्थंकरों के शासन में ये समानता से माने जाते हैं । बावीस तीर्थंकरों के साधुओं के जो आचार है वे महाविदेह के तीर्थंकरों के साधुओं के भी आचार होते हैं।

पहले व अंतिम तीर्थंकरों के साधुओं में एवं शेष बाईस तीर्थंकरों के साधुओं में यह आचार भेद होने में सिर्फ जीव विशेष ही कारणभूत है।

प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजु - जड (सरल और बेसमझ) होते थे, उनको जितना कहा जाता, उतना ही समझते थे, परंतु विशेष नहीं समझ सकते, श्री महावीरस्वामी के तीर्थ के जीव वक्र और जड है (उद्धत और मूर्ख होते हैं) वे समझाने से समझ लेने पर भी झूठ (गलती) स्वीकार नहीं करते, कुर्तक करके अपना बचाव करते हैं और बीच के बावीस तीर्थंकरों के साधु ऋजुप्राज्ञ (सरल और समझदार)होते है, अर्थात् संकेत मात्र से वे संपूर्ण बात समझ लेते हैं। इसी वजह से पहले व अंतिम तीर्थंकरों के साधुओं के तथा बीच के बाईस तीर्थंकरों के साधुओं के आचार में भेद हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* दस अच्छेरे (आश्चर्य) *

ऐसी घटनाएं जो कभी कभी घटती है, सामान्य रुप से सदा नहीं बनती। किंतु किसी विशेष कारण से अनंतकाल के पश्चात् होती है, उसे आश्चर्य (अच्छेरा) कहा जाता है। इस अवसर्पिणी काल में हुए आश्चर्यों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

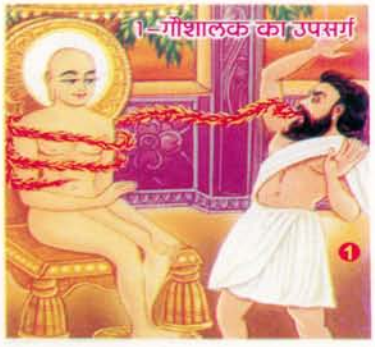

1. **उपसर्ग** :- अत्यंत पुण्यशाली आत्मा ही तीर्थंकर पद को प्राप्त करती है। केवलज्ञान होने के पश्चात् तीर्थंकरों को कभी कोई उपसर्ग नहीं होते ! परंतु भगवान महावीरस्वामी को केवलज्ञान होने के बाद भी कुशिष्य गोशाले ने तेजोलेश्या फेंकी, जिससे भगवान को भी छः महीने तक तेजोलेश्या की ज्वाला से रक्त अतिसार (खून की दस्ते) लगने लगी।

2. **गर्भ संहरण** :- आषाढ शुक्ल छट्ठ को भगवान महवीरस्वामी स्वर्ग से च्यवकर देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षी में आये । गर्भ अवतरण के 82 दिन पश्चात् सौधर्म कल्प के इन्द्र के आदेश से सेनापति हरिनैगमेषी देव ने उनको माता देवानन्दा के गर्भ से संहरण कर त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ में रख दिया, क्योंकि तीर्थंकर सदैव ही उग्र, भोग, क्षत्रिय, इक्ष्वाकु, ज्ञात, कौरव्य और हरिवंश आदि विशाल कुलों में ही जन्म लेते हैं। यह दूसरा अच्छेरा हुआ।

3. **स्त्री तीर्थंकर** :- ऐसा नियम है कि तीर्थंकर पद पुरुषों को ही प्राप्त होता है। परंतु मिथिला नगरी के राजा कुम्भराज की पुत्री मल्लीकुमारी ने तीर्थंकर पद को प्राप्त किया। वे इस अवसरर्पिणी के 19वें तीर्थंकर के रुप में प्रसिद्ध हुई। स्त्री का तीर्थंकर होना एक आश्चर्य है।

4. **अभावित परिषद्** :- यानी तीर्थंकर की देशना निष्फल होना। केवलज्ञान होने के बाद वैशाख शुक्ल दशमी के दिन भगवान महावीर स्वामी ने अपनी प्रथम धर्म देशना दी। देशना सुनकर किसी भी श्रोता ने चारित्र ग्रहण नहीं किया। तीर्थंकरों की देशना कभी निष्फल नहीं जाती, यह एक अभूतपूर्व घटना हुई।

5. **श्री कृष्ण वासुदेव का घातकी खण्ड की अमरकंका नामक नगरी में गमन** :- राजा पद्मनाभ घातकी खण्ड में स्थित अमरकंका नगरी का राजा था। नारद द्वारा द्रौपदी के रुप लावण्य की प्रशंसा सुनकर उसने देवों द्वारा द्रौपदी का अपहरण करवा लिया। श्री कृष्ण वासुदेव को पता चला तो वे अमरकंका नगरी पहुँचे और युद्ध में राजा पद्मनाभ को हराकर द्रौपदी को वापस द्वारका की ओर ले चले। संग्राम विजयी होने पर उन्होंने शंखनाद किया। उस शंख की आवाज सुनकर वहां के कपिल वासुदेव को आश्चर्य हुआ, जिससे उसने वहां विचरते हुए भगवान मुनिसुव्रत स्वामी से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शंखनाद के बारे में पूछा तो भगवान मुनिसुव्रत स्वामी ने श्री कृष्ण वासुदेव के बारे में बताते हुए कहा कि एक ही क्षेत्र में एक समय में दो तीर्थंकर, दो चक्रवर्ती, दो बलदेव और दो वासुदेव नहीं होते हैं। यह सुनकर कपिल वासुदेव को श्री कृष्ण वासुदेव से मिलने की तीव्र इच्छा जाग्रत हुई। वह सीधे समुद्र तट पर पहुँचा। परंतु श्री कृष्ण वहां से जा चुके थे। दूर जाते उनको देखकर उन्होंने शंखनाद करके मिलने की इच्छा प्रकट की। प्रत्युत्तर में श्री कृष्ण ने वापस शंखनाद करके अपने बहुत दूर निकल आने पर वापस लौटने में असमर्थता जताई। यों शंखनाद के माध्यम से दोनो का मिलन हो गया। यह अच्छेरा हुआ।

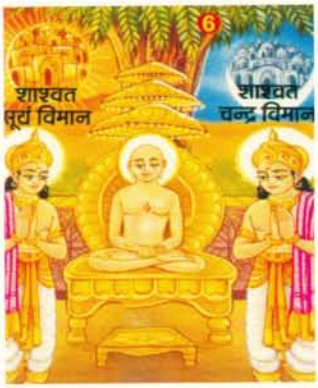

6. **सूर्य और चन्द्र एक साथ अपने शाश्वत विमानों में आना** :- कौशाम्बी नगरी में विराजित भगवान महावीरस्वामी के समवसरण में सूर्य और चन्द्र देव अपने - अपने शाश्वत विमानों सहित भगवान को वंदन - दर्शन के लिए आये। सूर्य और चंद्र देव का शाश्वत विमानों सहित आना एक आश्चर्य है। अन्यथा वे उत्तर वैक्रिय विमानों में ही आते हैं।

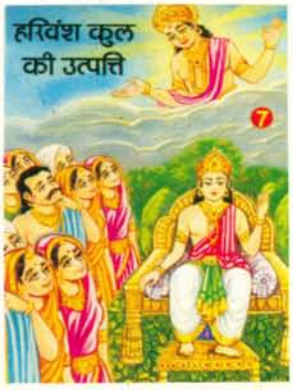

7. **हरिवंश कुल की उत्पत्ति**:- सौधर्म देवलोक के किल्विष देव ने हरिवर्ष क्षेत्र से हरि नाम के पुरुष युगल का अपहरण कर लिया और भरत क्षेत्र की चंपा नगरी में ले आया। वहां के राजा चंद्रकीर्ति की मृत्यु हो गई थी। किल्विष देव ने देववाणी की। उसे सुनकर वहां के मंत्री आदि ने हरि को अपना राजा बना दिया। हरि राजा बना, शादी की। उससे हरीवंश कुल की उत्पत्ति हुई। दोनों मरकर नरक में गये, युगलियां मरकर केवल देवगति में ही जाते हैं, और ये नरक में गये, इसलिए इसे अच्छेरा माना गया।

8. **चमरेन्द्र का सौधर्मकल्प में जाना** :- असुरों की नगरी चमरकंका के इन्द्र चमरेन्द्र ने एक बार अपने अवधिज्ञान से सौधर्मावतंसक विमान में सौधर्मेन्द्र को देखा तो क्रोधित होकर सोचने लगा ''यह सौधर्मेन्द्र मेरे सिर पर बैठा है, इसे सबक सिखाना चाहिए।'' वह उससे युद्ध करने सौधर्मकल्प की ओर चल दिया। सौधमेन्द्र की सभा में पहुंचकर उसने अपने शस्त्र से सौधर्मेन्द्र पर प्रहार किया, सौधमेन्द्र ने भी प्रतिकार में वज्र फैंका। चमरेन्द्र वज्र से डरकर भागता हुआ सीधा भगवान महावीरस्वामी के पास आया, भगवंत के पैरों के पास जाकर छिप गया। सौधर्मेन्द्र ने जब ध्यानस्थ भगवान को देखा तो वज्र को वापस खींच लिया, और भगवान को वंदन कर चमरेन्द्र से बोला '' भगवान की कृपा से तुम बच गये । जाओ अब तुम मुक्त हो। भय मत करो । '' यह कहकर लौट गया। चमरेन्द्र बच गया। चमरेन्द्र का सौधर्मकल्प में प्रवेश करना एक आश्चर्य है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

9. **उत्कृष्ट अवगाहाना वाले एक सौ आठ सिद्ध नहीं होते** :- इस अवसर्पिणी काल के सुषमा - दुषमा नामक तीसरे आरे में भगवान ऋषभदेव अपने 99 पुत्रों एवं 8 पौत्रों के साथ मोक्ष में पधारें। वे एक साथ एक सौ आठ जीव (99 पुत्र आठ पौत्र एवं स्वयं भगवान ऋषभदेव) सिद्ध हुए। उत्कृष्ट अवगाहना में एक साथ दो ही व्यक्ति सिद्धगति प्राप्त कर सकते हैं। परंतु एक साथ 108 व्यक्ति सिद्धगति को प्राप्त किये वह आश्चर्य है।

10. **असंयतियों की पूजा** :- नौवें तीर्थंकर श्री सुविधिनाथ भगवान के निर्वाण के कुछ समय पश्चात् साधु परंपरा का विच्छेद हो गया। लोगों ने स्थविर श्रावकों को ही धर्म का ज्ञाता समझ लिया। वे श्रावक अपनी अल्प बुद्धि अनुसार धर्म की अलग अलग व्याख्या करने लगे। लोग इन श्रावकों को ही ज्ञानी समझकर इनकी पूजा करने लगे, दान देने लगे। पूजा - प्रतिष्ठा से इनके मन में अभिमान उत्पन्न हो गया और वे धर्म के नये - नये नियम रचने लगे। सोना, चांदी, गौ, कन्या, हाथी, घोडा, आदि दान में लेने लगे। धर्म के नाम पर पाखण्ड चलने लगा। हमेशा संयति ही पूजे जाते हैं, मगर इस अवसर्पिणी काल में असंयतिओं की भी पूजा हुई है, यह अच्छेरा हुआ।

उपयुक्त दस अच्छेरे निम्नलिखित तीर्थंकरों के शासन काल में हुए हैं :-

1. उत्कृष्ट अवगाहाना वाले एक सौ आठ एक समय में सिद्ध हुए - श्री आदिनाथ भगवान के तीर्थ में
2. हरिवंशकुल की उत्पत्ति - श्री शीतलनाथ भगवान के तीर्थ में
3. श्री कृष्णवासुदेव का अमरकंका में जाना - श्री नेमिनाथ भगवान के तीर्थ में
4. स्त्री का तीर्थंकर होना - श्री मल्लिनाथ भगवान के तीर्थ में
5. असंयतियों की पूजा - श्री सुविधिनाथ भगवान के तीर्थ में
6. शेष :- उपसर्ग, गर्भसंहरण, अभावित परिषद्, सूर्यचंद्र का मूल विमान से उतरना, चमरेन्द्र का उर्ध्व गमन ये पांच अच्छेरे श्री महावीर स्वामी के तीर्थ में हुए हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* जैन तत्त्व मीमांसा *

संवर तत्त्व

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* संवर तत्व *

अनादि काल से जीव कर्मवश बनकर संसार - सागर में परिभ्रमण कर रहा है। जीव कभी कर्म का क्षय करता है तो कभी कर्मों का बंध करता है। परंतु क्षय और बंध की प्रक्रिया से ही आत्मा का भवपार नहीं हो सकता। आश्रव के कारण नये कर्मों का बंध होता रहता है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये कर्म बंध के कारण है। इनसे कर्मों का आगमन कैसे होता है, आत्म परिणामों की स्थिति कैसे होती है, मिथ्यात्व के कारण आत्मा को संसार में कैसे परिभ्रमण करना पडता है आदि का वर्णन आश्रव तत्व द्वारा होता है।

आत्मा कर्मावृत बनकर संसार में परिभ्रमण करता रहता है, फिर भी आत्म - विकास की शक्ति उसमें छिपी रहती है। अंधेरे से प्रकाश की ओर और अज्ञान से ज्ञान की ओर जाने के लिए जीव के प्रयत्न चलते रहते हैं। इस प्रकार के प्रयत्न करना ही संवर मार्ग पर चलना है।

आश्रव को रोकना तथा कर्म को न आने देना संवर है। संवर आश्रव का प्रतिपक्षी है। आश्रव - तत्व में आत्मा के पतन की अवस्था दिखायी गयी है और संवर में आत्मा के उत्थान की अवस्था दिखाई गयी है। आश्रव का मार्ग संसारलक्षी है तो संवर का मार्ग मोक्ष लक्षी है। संवर पथ के अपनाने से साधकों का केवल भविष्य ही उज्जवल नहीं बनता अपितु वे मोक्ष पद को भी प्राप्त कर लेते हैं।

*** संवर की परिभाषा** :- संवर शब्द सम् तथा वृ से मिलकर बना है। सम् उपसर्ग है और वृ धातु है। वृ का अर्थ है रोकना या निरोध करना। तत्वार्थ सूत्र में कहा है **' आश्रव निरोध संवर'** आश्रव का निरोध संवर है। **'संवृणोति कर्म अनेनेति संवर'** अर्थात् जिसके द्वारा आनेवाले नवीन कर्म रुक जाए वह संवर है।

कल्पना कीजिए - एक व्यक्ति किसी तालाब को खाली करने के लिए उसका पानी उलीच उलीच कर बाहर फेंक रहा है। दिन रात अत्यधिक परिश्रम करता है। वह एक ओर से पानी निकाल रहा है दूसरी ओर से नाली से पानी अंदर आ रहा है। इस प्रकार दिन - रात परिश्रम से जितना तालाब खाली होता है उसके बराबर या उससे अधिक पानी तालाब में भरता भी जा रहा है। इस स्थिति में कितना भी प्रयत्न या परिश्रम किया जाय किंतु तालाब खाली होने की संभावना नहीं है। जब नालों को बंद करके पानी उलीचा जाएगा, तभी तालाब खाली हो सकेगा।

प्रस्तुत रुपक संवर के लिए समझना चाहिए ! आत्मा एक तालाब के समान हैं उसमें कर्म रुपी पानी भरा हैं आश्रव रुप नालों से उसमें दिन रात कर्म रुप पानी भरता ही रहता है। साधक तप आदि साधनों के द्वारा कर्म रुपी जल को उलीच उलीच कर निकालने का प्रयास करता है। किंतु जब तक कर्मों के आने के द्वार को बंद नहीं करता तब तक कर्म जल से आत्म - सरोवर खाली नहीं हो सकता। उन नालों को बंद करना ही संवर तत्व है।

*** संवर के प्रकार :-**

जैन दर्शन में संवर के दो भेद हैं :-

1. द्रव्य संवर **2. भाव संवर**

1. द्रव्य संग्रह में कहा गया है - आते हुए नवीन कर्मों को रोकनेवाले आत्मा के परिणाम अथवा आत्मा की अकषाय अवस्था या आत्मा का शुद्धोपयोग भाव संवर है एवं उससे रुकनेवाले कर्मपुद्गल द्रव्य संवर है।

संवर की संख्या की अनेक परंपराएं प्राप्त है - मुख्य रुप से संवर के पांच भेद है :-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

1. **सम्यक्त्व** :- विपरीत मान्यता से मुक्त होना अथवा मिथ्यात्व का अभाव।

2. **व्रत या विरति** :- अठारह प्रकार के पापों का सर्वथा त्याग करना।

3. **अप्रमाद** :- धर्म के प्रति पूर्ण उत्साह होना।

4. **अकषाय** :- क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों का नष्ट होना।

5. **अयोग** :- मन, वचन और काया की दुष्प्रवृत्तियों को रोकना।

* संवर के बीस भेद :-

1-5 :- सम्यक्त्व, विरति, अप्रमाद, अकषाय, अयोग।

6-10 :- हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह से निवृत्ति लेना।

11-15 :- श्रोत, चक्षु, घ्राण, रस, स्पर्शन आदि पांच इन्द्रिय का निग्रह करना।

16-18 :- मन, वचन और काया को संयम में रखना।

19 :- भांडोपकरण :- वस्त्र - पात्र आदि उपकरण जयणा से रखना।

20 :- सुसंग - कुसंगति से दूर रहना।

इस प्रकार संवर के बीस भेद भी होते हैं। तत्वार्थ सूत्र में संवर के सतावन भेद माने गये हैं जो निम्नलिखित है।

1. तीन गुप्ति 2. पांच समिति 3. दस यति धर्म 4. बारह भावना / अनुप्रेक्षा 5. बाईस परीषह और 6. पांच चारित्र

* **गुप्ति** :- ''संसार कारणात् आत्मन गोपनं गुप्ति'' संसार के कारणों से आत्मा की जो सुरक्षा करे - वह गुप्ति है। मन - वचन तथा काया को हिंसादि सर्व अशुभ प्रवृत्तियों से निवृत करना, सम्यक् प्रकार से उपयोग पूर्वक प्रवृति करना गुप्ति है। गुप्ति के तीन प्रकार है:-

1. **मनोगुप्ति** :- अशुभ विचारों का त्याग करना और शुभ विचारों को धारण करना मनोगुप्ति है।

2. **वचनगुप्ति** :- असत्य भाषण से निवृत्त होना और मौन धारण करना वचन गुप्ति है। आचारंग सूत्र में इसके दो रुप मिलते हैं।

* भगवान ने जैसे कहा है तदनुसार प्ररुपणा करना अर्थात् शास्त्र मर्यादा के अनुसार बोलना और

* वाणी - विषयक मौन साधना अर्थात् शास्त्रानुसार निर्दोष वचन का प्रयोग करना और सर्वथा मौन धारण करना भी वचनगुप्ति है।

3. **कायगुप्ति** :- बिना कारण काया की चंचलता का त्याग करके काया को संयम में रखना अर्थात् सोना, बैठना, उठना, पैर फैलाना आदि आवश्यक कायिक क्रिया की चंचलता पर तथा अनावश्यक प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना एवं मर्यादा अनुसार शरीर की चेष्टा को संयमित करना। उपसर्ग आदि प्रतिकूल प्रसंगों में सर्वथा स्थिर होकर शरीर की चेष्टा का त्याग करके कायोत्सर्ग करना भी कायगुप्ति है। जैसे गजसुकुमाल मुनि ने की।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* **समिति** :- श्री जिनेश्वर भगवान की आज्ञानुसार यतनापूर्वक सम्यक् प्रवृत्ति करना। संसार का प्रत्येक प्राणी कुछ न कुछ प्रवृत्ति अवश्य करता है। प्रवृत्ति के अभाव से वह न जी सकता है और न व्यवहार कर सकता है। जब तक शरीर का त्याग नहीं होता तब तक जीवन व्यतीत करने के लिए कुछ न कुछ बोलना, खाना, पीना, उठना - बैठना आदि क्रियाएं करनी पडती है। इसलिए दशवैकालिक सूत्र में शिष्य ने गुरु से प्रश्न किया है।

" कहं चरे, कहं चिट्ठे, कह मासे, कहं सए। कहं भुंजंतो भांसतो, पावं कम्मं न बंधइ?"

" गुरुदेव ! मैं कैसे चलुं, कैसे खडा रहूं, कैसे बैठूं, कैसे सोऊं,
कैसे खाउं, कैसे बोलुं, जिससे पाप कर्मों का बंध न हो।"

गुरुदेव ने फरमाया है :-

"जयं चरे, जयं चिट्ठे, जयमासे, जयं सए। जयं भुजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधइ ।।"

" यतना से चलो, यतना से खडे रहो, यतना ये बैठो, यतना से सोओ,
यतना से खाओ, यतना से बोलो, जिससे पाप कर्मों का बन्ध न हो।"

अतः **यतनापूर्वक प्रवृत्ति** का नाम समिति है। समिति के पांच प्रकार है।

1. इर्या समिति 2. भाषा समिति 3. एषणा समिति 4. आदान भंडमत निक्षेपणा समिति 5. परिष्ठापनिका समिति

1. **इर्या समिति** :- इर्या यानी गमन के विषय में सम्यग् प्रवृत्ति करना अर्थात् शान्त चित्त से चलना, गमनागमन में विवेक रखना, भूत - भविष्य की स्मृति - कल्पनाओं में न डूबकर वर्तमान क्षण में उपयोग रखना, इर्या समिति है।

द्रव्य - क्षेत्र - काल और भाव की अपेक्षा से यह चार प्रकार की है।

* द्रव्य :- सूर्य - प्रकाश और नेत्र - प्रकाश से भली - भांति देखते हुए नीची दृष्टि रखकर चलना।
* क्षेत्र :- लगभग साढे - तीन हाथ आगे की भूमि देखकर चलना।
* काल :- रात्रि में अनिवार्य कारणवश चलना पडे तो प्रमार्जन किए बिना न चलना।
* भाव :- उपयोगपूर्वक चलना

2. **भाषा समिति** :- निर्दोष वचन (मुहपत्ती का उपयोग रखकर) बोलना सावध वचनों का त्याग करते हुए सर्वजन हितकारी और परिमित वचनों का बोलना भाषा समिति है। जो वचन मधुर हो, परिमित हो, प्रयोजन होने पर ही बोले गये हो, जो गर्व रहित हो, तुच्छ न हो, बुद्धि से विचार कर बोले गये हो और जो धर्ममय हो, ऐसे वचनों को बोलना भाषा समिति है।

3. **एषणा समिति** :- स्वादलोलुपता, रसपोषण को महत्व न देकर, आहार पानी में बयालीस दोषों को त्यागकर निर्दोष पदार्थ स्वीकार करना एषणा समिति है।

4. **आदान भंडमत निक्षेपणा समिति** :- अर्थात् आदान ग्रहण करना :- भंडमल अर्थात् पात्र आदि को जयणापूर्वक निक्षेपणा करना यानी वस्तु उठाने में, रखने में जीव - मैत्री का भाव रखकर विवेकमय प्रवृत्ति करना। अर्थात् वस्त्र, पात्र, आसन, शय्या आदि संयम के उपकरण तथा ज्ञानोपकरणों को उपयोगपूर्वक प्रमार्जना करके उठाना और रखना आदान भंड मत निक्षेपणा समिति है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

5. **परिष्ठापनिका समिति** :- परिष्ठापनिका समिति को उत्सर्ग समिति भी कहते हैं। इसका पूरा नाम उच्चार प्रश्रवण खेल सिंघाण जल्ल परिष्ठापनिका समिति है। इसका अर्थ है उच्चार अर्थात् मल, श्रवण यानी मूत्र, खेल यानी थूक या कफ सिंघाण यानी नाक का मैल और जल्ल यानी पसीना। मल - मूत्र श्लेश्मादि निस्सार तत्व फेंकते समय जीव हिंसा न हो ऐसा ध्यान रखकर क्रिया करना परिष्ठापनिका समिति है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से इसके चार भेद है :-

* द्रव्य :- त्यागने योग्य वस्तुओं को ऐसी ऊंची जगह न परठे जहां से नीचे गिरे या बहे। ऐसी नीची जगह में भी न परठे जहां एकत्र होकर रह जाय। ऐसी अप्रकाशित जगह में भी न परठे जहां जीव - जंतु दिखाई न दे। ऐसी जगह भी न डालें जहां चींटियों आदि के बिल हो, अनाज के दाने हो, अन्य जीव - जंतु हो।
* क्षेत्र :- जिसकी जगह हो, उस स्वामी की आज्ञा लेकर परठे, यदि वे न हो तो शक्रेन्द्र की आज्ञा लेकर परठे।
* काल :- दिन में अच्छी तरह देखभाल कर निरवध भूमि में परठे और रात्री के समय, पहले दिन में देखी हुई भूमि पर प्रमार्जन कर परठे।
* भाव से :- शुद्ध उपयोगपूर्वक यतना से परठे ! परठने के लिए जाते समय आवस्सहि (आवश्यक कार्यवश जाता हूं) शब्द का तीन बार उच्चारण करें। परठते समय ''अणुजाणह जस्सुग्गहो'' बोले । परठने के बाद वोसिरामी (इस वस्तु से अब मेरा कोई प्रयोजन नहीं है।) शब्द को तीन बार बोलें। परठकर जब अपने स्थान पर लौटे तब निस्सहीं (कार्य में निवृत हुआ हूँ) शब्द तीन बार उच्चारण करें।

समिती = विवेक पूर्वक आचरण

* इर्या :- जयणापूर्वक चलना
* भाषा :- हित - मित, प्रिय, सत्य और संदेह रहित वचन बोलना
* एषणा :- निर्दोष आहार लेना
* आदान :- उपकरणों को देख-भाल कर लेना व रखना
* परिष्ठा :- जन्तुरहित स्थान पर मल - मूत्र आदि का त्याग करना।

* दशयति धर्म *

धर्म जीवन का अमृत है। यदि धर्म मनुष्य के जीवन में न हो तो कर्मों का निरोध या क्षय नहीं किया जा सकता। यही कारण है भारतीय ऋषि - मुनियों ने धर्म को जीवन का प्राण कहा है जो संजीवनी बूटी की भांति है। धर्म ही एक ऐसा तत्व है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की समस्याओं को सुलझा सकता है। परिवार में ही नहीं विश्व के हर क्षेत्र में धर्म शांति, सुरक्षा और सौहार्द्र स्थापित कर सकता है। जब उसके शुद्ध स्वरुप को समझा जाय और तदनुसार श्रद्धापूर्वक उसका आचरण किया जाय। तत्वार्थ सूत्र में धर्म के दस प्रकार बताया है।

''उत्तमः क्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः''

1. उत्तम क्षमा 2. उत्तम मार्दव 3. उत्तम आर्जव 4. उत्तम शौच 5. उत्तम सत्य 6. उत्तम संयम 7. उत्तम तप 8. उत्तम त्याग 9. उत्तम अकिंचन्य और 10. उत्तम ब्रह्मचर्य। ये दशविध उत्तम धर्म संवर - निर्जरा रुप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

1. उत्तम क्षमा :- क्रोध का प्रसंग उपस्थित होने पर भी प्रतिक्रिया न करना उत्तम क्षमा हैं । आवेश का निमित्त सामने होने पर और प्रतिक्रिया करने का सामर्थ्य होते हुए भी भावों में मलिनता न आने देना तथा पूर्व के वैर - विरोध का स्मरण करके सकारण या अकारण उत्तेजित नहीं होना क्षमा है। ''अध्यात्मप्रकरण'' में लिखा है कि सम्भाव से **गाली सहन करने वाले को 66 करोड उपवास का फल मिलता है।**

क्षमा धर्म पांच प्रकार का बताया गया है।

1. **उपकार क्षमा** :- किसी ने हमारा नुकसान किया है, तो भी इसने अमुक समय पर हम पर उपकार भी तो किया था, ऐसा जानकर सहनशीलता रखना, उपकार क्षमा है।

2. **अपकार क्षमा** :- यदि मैं क्रोध करूंगा तो वह हानि पहुंचायेगा, ऐसा सोचकर क्षमा करना अपकार क्षमा है।

3. **विपाक क्षमा** :- यदि क्रोध करुंगा तो कर्मबंध होगा, ऐसा सोचकर क्षमा रखना विपाक क्षमा है।

4. **वचन क्षमा** :- शास्त्र में क्षमा रखने के लिए कहा है, ऐसा सोचकर क्षमा रखना वचन क्षमा है।

5. **धर्म क्षमा** :- आत्मा का धर्म ही क्षमा है, ऐसा सोचकर क्षमा रखना धर्मक्षमा है।

2. **उत्तम मार्दव** :- नम्रता रखना अथवा मान का त्याग करना। आत्मा में मान कषाय के अभाव में जो कोमलता या मृदुलता प्रगट होती है उसे मार्दव कहा जाता है। मार्दव जीवन में तभी आता है जब जातिमद आदि आठ प्रकार का मद न हो। निश्चय दृष्टि से पर - पदार्थों का मैं कर्ता हूं ऐसी मान्यता रुप अहंकार का उन्मूलन करना मादर्व है। अभिमान के प्रसंग पर नम्रता को धारण करना और तुरंत अपने लिए सोचना कि मैं एक दिन निगोद में था। धीरे - धीरे विकास करते हुए मैंने मनुष्य जन्म पाया है अब प्राप्त संयोगों का अहंकार करने से मैं दुर्गति में चला जाउंगा, तो मेरा पतन होगा। इस प्रकार अहंकार पर रोक लगाने से संवर का लाभ होगा और आत्म गुणों का दर्शन करने से निर्जरा का लाभ होगा।

3. **उत्तम आर्जव** :- आर्जव अर्थात् सरलता । कपट रहित होना, या माया, दम्भ ठगी आदि का सर्वथा त्याग करना, आर्जव धर्म है। भगवान महावीरस्वामी ने सरलता की उपलब्धि के विषय में कहा है, आर्जव से काया की सरलता, भावों की सरलता, भाषा की सरलता और योगों की अविसंवादिता जीव प्राप्त कर लेता है और अविसंवादिता संपन्न जीव शुद्ध धर्म का आराधक होता है। वह संवर - निर्जरा रुप कर्मक्षयकारणक धर्म की आराधना कर पाता है। उत्तम सरलता तब कहलाएगी जब हम किसी की कुटिलता को जानकर भी उसके साथ सरलतापूर्वक व्यवहार करें। सरल व्यक्ति के साथ सरलता का व्यवहार आसान है पर जटिल और कुटिल व्यक्ति के साथ भी सरलता का व्यवहार करना उत्तम सरलता है।

4. **उत्तम शौच** :- शौच धर्म का दूसरा नाम है निर्लोभता। लोभ को जीतना व पौद्गलिक पदार्थों पर आसक्ति न रखना शौच धर्म है। शौच धर्म के साधक को सोचना चाहिए कि सांसारिक पर पदार्थों को तो अनंत अनंत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बार ग्रहण किया है और छोडा है इसलिए लोभजनित महादोषों का विचार करके इस पर विजय प्राप्त करनी चाहिए तभी संवर निर्जरा धर्म की आराधना हो सकती है।

5. उत्तम सत्य :- हित - मित - प्रिय वचन बोलना। सत्य में भाव, भाषा और काया तीनों की सरलता अपेक्षित होती है। समवायांग सूत्र में साधु के मूल गुणों में भाव सच्च, करण सच्च, योग सच्च अर्थात् भावसत्य, करण सत्य और योग सत्य बताये गये है।

* **भाव सत्य** :- भावों में, परिणामों में सदा सत्य का भाव रहे।

* **करण सत्य** :- करणीय कर्तव्यों को सम्यक् प्रकार से करना।

* **योग सत्य** :- मन वचन काया की सत्यता।

व्यवहारिक दृष्टि से सत्य - धर्म, वाणी, मन और शरीर के द्वारा अभिव्यक्त हो सकता है। इस दृष्टि से सत्य को धर्म कहा गया है। सत्य धर्म के साथ उत्तम विशेषण मिथ्यात्व का अभाव और सम्यग्दर्शन के अस्तित्व का सूचक हैं। अतः जो जैसा है उसे वैसा ही मानना जानना और उसी रुप में राग - द्वेष रहित होकर वीतराग भाव में परिणत होना सत्य - धर्म है।

6. उत्तम संयम :- मन, वचन और काया का नियंत्रण करना अर्थात् इनकी प्रवृत्ति में यतना करना संयम है। संयम का दूसरा अर्थ है - सं अर्थात् सम्यक् प्रकार से, यम - यानी नियमों का पालन करना। हिंसादी अशुभ प्रवृत्तियों से निवृत्त होकर पांच महाव्रत या अणुव्रतों का पालन करना संयम धर्म है। मुनि के सत्रह प्रकार के संयम बताये गये है।

1 - 5 :- पांच महाव्रत

6-10 :- पांच इन्द्रिय निग्रह

11 - 14 :- चार कषाय जय

14 - 17 :- तीन दंड की निवृत्ति (मन, वचन, काया के अशुभ व्यापार) संयम के साथ जो उत्तम शब्द है वह सम्यग्दर्शन के अस्तित्व का सूचक है क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना संयम की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि या फल - प्राप्ति संभव नहीं है। केवल बाह्य - प्रवृत्ति का त्याग करना संयम नहीं हैं । साधक संयम से युक्त तभी होता है जब उसके जीवन में इन्द्रियों के विकारों का एवं राग - द्वेष का मुण्डन होता है। अपनी नजर को पर - पदार्थों से समेटकर आत्म - सन्मुख करना यानी अपने में सीमित करना उत्तम संयम कहा जाता है।

7. उत्तम तप :- तप का सामान्य अर्थ किया गया है, ''अष्टकर्म तपनात् तपः'' अर्थात् आठ कर्मों को तपाकर आत्म शुद्धि करना तप है। उपसर्गों को समभावपूर्वक सहने में तथा धर्म - पालन करने में तप शरीर और मन को सक्षम बनाता है। देह और आत्म का भेद विज्ञान जानना ही सम्यग् तप है। सम्यग् दर्शन के अभाव में करोडो वर्षों तक किया गया उग्र तप भी निरर्थक है। इसलिए जैनागमों में कहा है - इस जन्म के लिए या पर - जन्म के लिए या कीर्ति की कामना से तप नहीं करना चाहिए। तत्वार्थ सूत्र में आचार्य उमास्वाति ने कहा है '' इच्छानिरोधस्तपः'' इच्छाओं का निरोध करना तप है। केवल शरीर को तपाना तप नहीं है वह तो ताप है। मन की आशा और तृष्णा को रोकना तप है। तप बारह प्रकार के है उनका विस्तृत वर्णन निर्जरा तत्त्व में किया जाएगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

8. उत्तम त्याग :- पात्र को ज्ञानादि सद्‌गुण प्रदान करने को उत्तम त्याग कहते हैं।

ठाणांग सूत्र में चार प्रकार का त्याग बताया है।

1. **मणाचियाए** :- मन के विकारों का त्याग करना।
2. **वयचियाए** :- वचन से अशुभ तथा अप्रीतिकर शब्दों का त्याग करना।
3. **कायचियाए** :- काया से अनैतिक और अशुद्ध क्रियाओं का त्याग करना।
4. **उवगरणचियाए** :- उपकरणों का त्याग करना।

9. उत्तम आंकिचन्य :- बाह्य और अभ्यंतर परिग्रह का त्याग करके आत्म - भावों में रमण करना आंकिचन्य धर्म है। 'अ' अर्थात् नहीं, किंचन - कोई भी। किसी भी प्रकार का परिग्रह या ममत्व न रखना। वस्तु अपने आप में परिग्रह नहीं होती उसकेग्रहण का भाव, संग्रह की इच्छा और उस पर ममत्व आदि रखना परिग्रह है। यदि पर - पदार्थ केग्रहण या संग्रह की भावना और उस पर ममता नहीं है तो पर - पदार्थ की उपस्थिति परिग्रह नहीं है। आकिंचन्य धर्म वाले मुनि उपलक्षण से शरीर, धर्मोपकरण आदि के प्रति या सांसारिक पदार्थों के प्रति निर्ममत्व होते हैं। वे निष्परिग्रही होकर अपने लिए आहार पानी आदि संयम जीवन निर्वाह केलिए ही लेते हैं। जैसे गाडी केपहिये की गति ठीक रखने केलिए उसकी धुरी में तेल डाला जाता है, वैसे ही शरीर रुपी गाडी की गति ठीक रखने के लिए वे मूर्च्छारहित होकर आहार पानी लेते हैं। रजोहरण और वस्त्रपात्रादि अन्य उपकरण भी संयम एवं शरीर की रक्षा के लिए धारण करते हैं। यही परिग्रह त्याग रुप आकिंचन्य का रहस्य है।

10. उत्तम ब्रह्मचर्य :- आध्यात्मिक दृष्टि से ब्रह्मचर्य का अर्थ इस प्रकार किया गया है - ब्रह्म अर्थात् आत्मा और चर्य अर्थात् चलना। आत्मा में विचरण करना ब्रह्मचर्य हैं। व्यवहारिक दृष्टि से नववाड सहित मन - वचन - काया से मैथुन का त्याग करना ब्रह्मचर्य धर्म है। वाड से जैसे क्षेत्र का रक्षण होता है, उसी प्रकार नववाड से ब्रह्मचर्य का रक्षण होता है। उसके नौ प्रकार है।

1. **संसक्त वसतित्याग** :- जहां पर स्त्री / पुरुष / पशु व नपुंसक रहते हो उस स्थान का त्याग करना।
2. **स्त्रीकथा त्याग** :- स्त्री / पुरुष के रुप, लावण्य की चर्चा न करना।
3. **निषधा त्याग** :- जिस स्थान या आसन पर स्त्री, पुरुष बैठे हो उस पर 48 मिनिट तक नहीं बैठना।
4. **अंगोपांग निरीक्षण त्याग** :- स्त्री / पुरुष के अंगोपांग रागात्मक दृष्टि से न देखना।
5. **संलग्न दीवार त्याग** :- संलग्न दीवार में जहां दंपत्ति रहते हो ऐसे स्थान का त्याग करना।
6. **पूर्वक्रीडित भोगों का विस्मरण** :- पूर्वकाल में भोगे हुए भोगों को याद न करना।
7. **प्रणीत आहार त्याग** :- गरिष्ट एवं विकारजनक आहार न करना।
8. **अति आहार त्याग** :- प्रमाण से अधिक भोजन न करना।
9. **विभूषा त्याग** :- स्नान, इत्र, तेल आदि से मालिश आदि शरीर की शोभा बढानेवाली प्रवृत्तियों का त्याग करना।

उपयुक्त दस प्रकार केधर्म उत्तम धर्म कहलाने योग्य तभी होते हैं जब वे आत्म शुद्धिकारक और पाप निवारक हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* बारह अनुप्रेक्षा/भावना *

जीवन - निर्माण का सामर्थ्य विचारों में है। सुविचारों की संपदा ने ही भगवान महावीर जैसे महापुरुष बनाये और कुविचारों ने कंस, गोशालक, कोणिक आदि अधोगामी मनुष्य बनाये। जो विचार अंतरिक्ष में देर तक गूंजते हैं वे अपना प्रभाव वहां छोड जाते है। उसका कंपन काफी समय तक वातावरण में बना रहता है। सुविचारों का बार - बार चिंतन / अनुप्रेक्षन करने से वे सुविचार कर्ता के मानस पर गहरी छाप छोड जाते हैं। जैन - कर्म विज्ञान की भाषा में इन्हें भावना या अनुप्रेक्षा कहा जाता है।

अनुप्रेक्षा जैन दर्शन का परिभाषिक शब्द है। प्रेक्षा का अर्थ होता है प्रकर्ष रुप से देखना अर्थात् एकाग्र और स्थित होकर किसी तत्व या तथ्य को सुक्ष्मता से देखना। अनुपसर्ग प्रेक्षा से पूर्व लगने से इसका अर्थ होता है, आगमों या धर्मग्रंथों में पढे हुए तथ्य तथा सत्य का अनुचिंतन करना। चित्त को स्थिर करने के लिए किसी तत्व पर पुनः पुनः चिंतन करना अनुप्रेक्षा है। इसे एक प्रकार से ज्ञान की जुगाली कहा जा सकता है। जैसे गाय, पशु आदि खाने के बाद एकान्त स्थान में बैठकर जुगाली करते हैं, वैसे ही सीखे हुए ज्ञान को अनुप्रेक्षाओं द्वारा हृदयगम किया जा सकता है। बार बार चिंतन मनन से वह दृढ हो जाता है, अंतर चेतना में व्याप्त हो जाता है। कभी विस्मृत नहीं होता। " **उत्तराध्ययन सूत्र** " में भगवान महावीर स्वामी ने अनुप्रेक्षा का आध्यात्मिक लाभ बताते हुए कहा है अनुप्रेक्षा से आत्मा आयुष्य कर्म के अलावा शेष सात कर्मों की प्रगाढ प्रकृतियों को शिथिल कर लेती है। दीर्घकालिन स्थिति को अल्पकालीन कर लेती है, तीव्र रस को मंद रस कर लेती है, बहू प्रदेशों को अल्प प्रदेशों में बदल देती है, आसातावेदनीय कर्म का बार बार बंध नहीं करती तथा संसार को शीघ्रता से पार कर लेती है। इसलिए भावना को भव नाशिनी कहा गया है। अनुप्रेक्षा का दूसरा नाम भावना भी है। मोक्षमार्ग के प्रति भाव की वृद्धि हो ऐसा चिंतन करना भावना है। इसी कारण जैन दर्शन में मुमुक्षु के लिए संवर निर्जरा रुप बारह आध्यात्मिक भावनाओं से भावित होने का निर्देश दिया है। वे इस प्रकार है :-

1. अनित्य 2. अशरण 3. संसार 4. एकत्व 5. अन्यत्व 6. अशुचित्व 7. आश्रव 8. संवर 9. निर्जरा 10. लोकस्वभाव 11. बोधि दुर्लभ और 12. धर्म

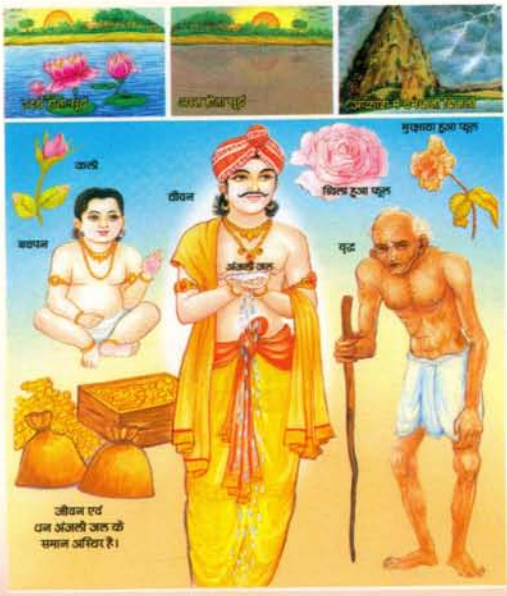

1. **अनित्य भावना** :- संसार के सभी पौद्गलिक पदार्थ अनित्य है। संसार की कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं है। यहां की सभी वस्तुएं नश्वर है, परिवर्तनशील है, उत्पन्न होते है, और नष्ट हो जाते हैं। यह शरीर इन्द्रियाँ, यौवन, आरोग्य, धन - समृद्धि, पद - प्रतिष्ठा, विषय - सुख और जीवन सब कुछ अनित्य है। जगत् में सभी पदार्थ कालक्रम में परिवर्तित होते रहते हैं। संसार का जो स्वरुप प्रातःकाल था वह मध्याह्न काल में नहीं रहता है और जो मध्याह्न काल में रहता है वह अपराह्नकाल (सायं) में नहीं रहता है। सभी संबंध या संयोग वियोग जनित है। आत्मा के अलावा इस संसार में कोई भी पदार्थ नित्य नहीं है। इस प्रकार का बार - बार चिंतन करना अनित्य भावना है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वाचार्यों ने इसी तथ्य का समर्थन करते हुए कहा है, लक्ष्मी बिजली की चमक के समान चंचल है। अधिकार पतंग के समान अस्थायी है, आयु हाथ की अंजली में जल की तरह प्रतिपल घटती जाती है और काम - भोग इन्द्रधनुष के समान उत्पन्न होने के साथ ही थोडी देर में नष्ट हो जाते हैं। जिसके अन्तस्थल में यह बात जम जाए कि धन, धान्य, योवन, परिवार, इष्ट पदार्थों का संयोग आदि सब अनित्य है तो वह इनके नष्ट या क्षीण होने पर दुःखी नहीं होता। वह दुःख को जानता है पर दुःख को भोगता नहीं।कहा जाता है :-

भव वन में जी भर घूम चुका, कण कण को जी भर भर देखा,
मृग सम मृग तष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा।
झूठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशाएं,
तन जीवन यौवन अस्थिर है, क्षण भंगुर पल में मुरझाएं।

भव रुपी वन में मैंने जी भर घूमकर देखा कि संसार सुख मृग तृष्णा के समान है जो दिखता है परंतु प्राप्त नहीं होती। अतः इस जगत से किसी प्रकार की आशा करना व्यर्थ है, यहां सभी संयोग अस्थिर है, यह तन - धन - यौवन क्षण भर में नाश होने वाले हैं। इस प्रकार की भावना सम्राट श्री **भरत चक्रवर्ती** ने भायी थी।

2. **अशरण भावना** :- अशरण - भावना में यह विचार करना अनिवार्य है कि इस संसार में हमारी आत्मा का रक्षक उसे शरण प्रदान करनेवाला कोई नहीं है। रोग, आपत्ति, संकट या मृत्यु आने पर संसार का कोई भौतिक साधन अथवा स्नेही, स्वजन, संबंधी आदि हमें उन दुःखों से एवं विपत्तियों से बचा नहीं सकता। कहा जाता है -

सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या ?
अशरण मृत काया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या ?

कोई सम्राट हो अथवा महाबल हो, परंतु मरण के समय कौन टाल सकता है, न कोई शरण दे सकता है। दुःख, आपत्ति एवं भय से परिपूर्ण इस संसार में अरिहंत परमात्मा एक मात्र शरणभूत है। उनकी शरण अंगीकार करने वाली आत्मा अपने अजर, अमर, अविनाशी, पूर्णानन्दमय स्वरुप को अवश्य प्राप्त कर सकती है।

संसार की अशरणता तथा धर्म की शरणता समझने के लिए **अनाथी मुनि** का प्रसंग अत्यंत प्रेरक है।

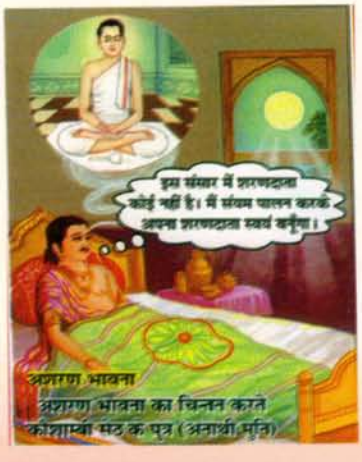

राजगृही के उद्यान में एक मुनिवर ध्यानमग्न थे। उनका नाम था अनाथी। उनकी देह अत्यंत सुकोमल थी। ऐसे समय में महाराजा श्रेणिक का वहां आगमन हुआ । वे मुनिवर को वंदन कर खडे रहे।

ध्यान पूर्ण होने पर तत्व चिंतन में मगन मुनिराज से राजा श्रेणिक ने पुछा यौवनावस्था में आपको वैराग्य का स्पर्श किस प्रकार हुआ ? मुनिराज ने उत्तर दिया :- '' अशाता वेदनीय कर्म के उदय से मैं बीमार हो गया। अनेक उपचार करने पर भी रोग दूर नहीं हुआ। उस समय मैंने मन ही मन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संकल्प किया की - यदि यह रोग दूर हो जाय तो मैं दूसरे ही दिन दीक्षा (चारित्र) अंगीकार करुंगा।

इस संकल्प के पश्चात् एक ऐसी घटना हुई जिससे मेरे नेत्र खुल गये। इस संसार में जीव को सच्ची शरण केवल धर्म की है। इस त्रिकाला बाधित सत्य में मेरा विश्वास अडिग हो गया, अखण्ड हो गया। घटना इस प्रकार है सुनिये :- मेरी देह रोगों एवं असह्य दाह - वेदना से ग्रस्त एवं त्रस्त थी । फिर भी मेरे प्रति अप्रतिम वात्सल्य की वृष्टि करने वाले मेरे माता - पिता - स्नेही स्वजन एवं मेरी प्राण - प्रिया (प्रियतमा) में से कोई भी न तो मेरा रोग, मेरी पीडा मिटा सके न वे मेरा जरा सा दुःख बांट सके।

सचमुच, मेरे तथाकथित समस्त संबंधी उपस्थित थे। फिर भी मैं अशरण था, अनाथ था। इस अनुभव के पश्चात मुझे यह सत्य तुरंत हृदयसात् हो गया कि संसार में कोई किसी का सगा नहीं है, सगा है तो एक मात्र केवली - कथित धर्म है। अतः रोग का शमन होते ही मैंने चारित्र अंगीकार किया। लोग मुझे अनाथी मुनि के नाम से पहचानते हैं। मुनिराज की कथनी सुनकर महाराजा श्रेणिक की जिन भक्ति (धर्म के प्रति श्रद्धा) प्रगाढ हो गई। और उसी समय उन्होंने सम्यक्त्व का उपार्जन किया।

3. **संसार भावना** :- इस संसार में जीव अनादि काल से जन्म - मरण आदि विविध दुखों को सह रहा है। कर्म के कारण आत्मा का एक जन्म से दूसरे जन्म को प्राप्त करने का नाम संसार है। जब तक आत्मा के साथ कर्म है तब तक उसे संसार में परिभ्रमण करना पडता है। शुभाशुभ कर्मों के अनुसार नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चार गतियों में व्याप्त इस संसार में परिभ्रमण करता हुआ जीव नाना प्रकार के दुःखों को भोगता है।

तिर्यंचगति में क्षुधा, तृष्णा, मारना, पीटना आदि की पीडा एवं नरक गति में क्षेत्र जन्य, परमाधामी देवों द्वारा एवं परस्परकृत वेदनाएं सहनी पडती है। मनुष्यगति में जन्म, जरा मृत्यु की वेदना से गुजरना पडता है और देवगति में अल्पता, अधिकता के कारण ईर्ष्या, दुःख द्वेष की आग में जीव झुलसता है। एक भी गति में पूर्णतया सुख नहीं है। कहा जाता है :-

संसार महादुःख सागर है, प्रभु दुःख मय सुख आभासों में,
मुझको न मिला सुख क्षणभर भी, कंचन कामिनी प्रासादों में।।

क्षण भर के लिए भी संसार में सच्चा सुख नहीं है मात्र सुखाभास है अर्थात् सुख का भ्रम है। संसार तो यह दुःखों का सागर है।

अबोध बालक **थावच्चापुत्र** ने संसारानुप्रेक्षा की थी। एक दिन थावच्चापुत्र ने पडोस में गाये जाने वाले मन - भावन मधुर गीतों को सुनकर मां से पूछा :- माँ ! ये गीत क्यों गाये जा रहे हैं ? माँ ने बताया :- ''वत्स! आज पडोसी के यहाँ पुत्र का जन्म हुआ है और उसकी खुशी में ये मंगल - गीत गाये जा रहे हैं।'' कुछ समय बाद मंगल मधुर गीत के बदले करुण विलाप के रुदन के स्वर सुनकर थावच्चापुत्र ने मां से पूछा :-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माँ! अब ये अप्रिय गीत क्यों गाये जा रहे हैं ? माँ ने गंभीर स्वर में कहा :- वत्स ! ये गीत नहीं रुदन के स्वर है। जिस पुत्र के जन्म की खुशी में सुरीले गीत गाये जा रहे थे उसी पुत्र के वियोग में अब शोक और विलाप के गीत गाये जा रहे हैं। थावच्चापुत्र ने कहा :- माँ! वह बच्चा अभी जन्मा और अभी मर गया - क्या मैं भी एक दिन मरुंगा। माँ ने कहा :- पुत्र! यह इस संसार की अनिवार्य घटना है, जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु भी देर - सवेर अवश्य होती है।

थावच्चापुत्र ने संसार की अनुप्रेक्षा करते हुए मां से पूछा :- माँ! क्या यह जीवन जन्म, जरा, रोग व मरण युक्त होकर यो ही चलता रहेगा ? क्या इस संसार परंपरा का कोई अंत नहीं है। माँ ने बताया :- वत्स ! यदि इस संसार परंपरा में अपवाद है तो भगवान अरिष्टनेमि के शरण में जाने का सत्पुरुषार्थ करनेवाला मनुष्य जन्म मरण की दुःख परंपरा का अन्त कर सकता है। भगवान की शरण संसार परंपरा का छेदन भेदन अमरत्व की प्राप्त करा सकती है। माँ के मुख से अमरत्व प्राप्ति के वचन सुनकर थावच्चापुत्र पुलकित हो उठा। एक दिन भगवान अरिष्टनेमि की वाणी सुनकर वह विरक्त हो गया और दीक्षित होकर उसने संसार का अंत कर दिया।

4. **एकत्व भावना** :- आत्मा के अकेलेपन का चिंतन करना एकत्व भावना है। कहा जाता है :-

मैं एकाकी एकत्व लिए, एकत्व लिए सब ही आते।
तन धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड चले जाते ।।

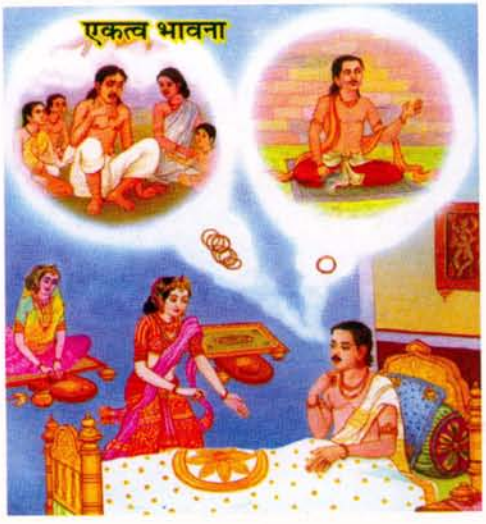

संसार में प्रत्येक मनुष्य अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरण को प्राप्त होता है, उसके साथ कोई भी स्वजन परिजन नहीं होता है, जीव अपने कर्मों का स्वयं कर्ता और भोक्ता होता है, संसार में भ्रमवश तन - धन, स्नेही स्वजन को अपना साथी मानता है, लेकिन एक समय वे उसे छोडकर चले जाते हैं। ऐसा चिंतन एकत्व भावना है।

नमिराजर्षि ने एकत्व भावना भायी थी। मिथिला नगर के राजा नमिराजर्षि के शरीर में दाह ज्वर उत्पन्न हो गया। उस रोग के निवारण के लिए रानियां अपने हाथों से चंदन घिसकर नमिराजर्षि के शरीर पर लेप कर रही थी। चंदन घिसते समय रानीयों के हाथों में पहने हुए कंगणों से आवाज हो रही थी। नमिराजार्षि कंगन के शोर से बेचैन हो गये। तब रानियों ने एक कंगन अपने अपने हाथ में रखा जिससे आवाज आनी बंद हो गयी।

नमिराजा ने पूछा '' क्या चंदन घिसना बंद हो गया ?'' उत्तर मिला - राजन् चंदन घिसा जा रहा है किंतु आवाज इसलिए नहीं आ रही है कि रानियों के हाथ में एक - एक ही कंगन है। यह सुनकर उनके चिंतन ने एक मोड लिया '' संसार में जहां अनेक है वहां दुःख है, जहां एक है वह सुख - शांति है। उन्होंने संकल्प कर लिया कि यदि मैं रोग मुक्त हो जाऊंगा तो सब संयोगों को छोड एकत्व का अवलम्बन लूंगा। संयोग से रोग शांत हो गया और नमिराजर्षि ने दीक्षा अंगीकार करके आत्म कल्याण किया और मुक्त हुए।

5. **अन्यत्व भावना** :- यह जो शरीर मैंने धारण कर रखा है, वह मेरा नहीं है, फिर घर - परिवार, कुटुम्ब, जाति, धन - वैभव आदि मेरे कैसे हो सकते हैं ? मैं अन्य हूँ और ये सब मुझसे भिन्न है, अलग है। शरीरादि तो जड

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

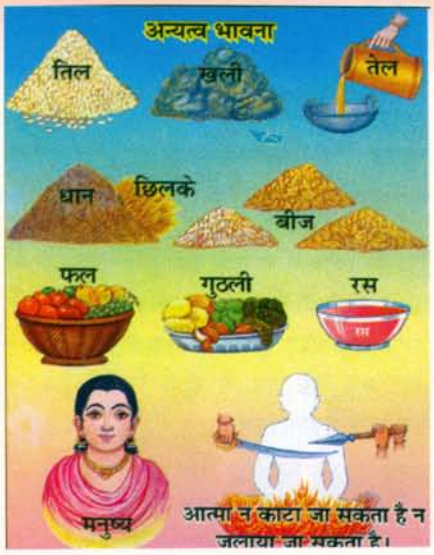

है, नाशवान है अस्थिर है। क्षणभंगुर है। मैं तो आत्मा हूँ, चेतन हूँ, शाश्वत हूँ। शरीरादि में मोह - आसक्ति रखना हितकारी नहीं है। जिस प्रकार तिल से तेल और खली, धान से छिलका और बीज, फलो से गुठली और रस अलग हो जाता है उसी प्रकार यह शरीर और आत्मा भिन्न - भिन्न है। कहा जाता है :-

मेरे न हुए ये मैं इनसे, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ।
निज में पर से अन्यत्व लिए, निज सम रस पीने वाला हूँ।

न कभी संयोग मेरे हुए, न कभी मैं उनका हुआ, मैं सभी से भिन्न हूँ, अखण्ड हूँ निराला हूँ, निज पर का भेद करने पर निज में समभाव के रस को पीने वाला हूँ।

पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण **मृगापुत्र** जब साधु बनने के लिए तत्पर हुआ तब उसके माता - पिता ने ममत्व भरी बातें कहकर उसे साधुत्व अंगीकार करने से रोकना चाहा। मृगापुत्र ने माता - पिता से अन्यत्व भावना से अनुप्रेरित होकर कहा **"यहां कौन किसका सगा - संबंधी और रिश्तेदार है"** वे सभी संयोग निश्चित ही वियोग रुप और क्षणभंगुर हैं माता - पिता, भाई - बहन, पुत्र - स्त्री, धन, दुकान, मकानादि यहां तक कि यह शरीर भी अपना नहीं है। कभी न कभी इन सबको छोडकर अवश्य जाना पडेगा। यदि इन विषय भोगों को जीव नहीं छोडता तो ये विषय भोग स्वयं जीव को छोड देते हैं। इस तरह माता पिता के प्रश्नों का उत्तर मृगापुत्र ने अन्यानुप्रेक्षा की दृष्टि से दिया। माता - पिता की आज्ञा प्राप्त कर मृगापुत्र ने मृग की तरह अकेले बनवासी रहकर संयम की आराधना करके मोक्ष को प्राप्त किया।

6. अशुचि भावना :- यह शरीर अशुचिमय है। शरीर रक्त - मांस - मज्जा - मल मूत्र आदि घृणित पदार्थों से बना हुआ पिण्ड हैं माता के गर्भ में अशुचि पदार्थों के आहार द्वारा इस शरीर की वृद्धि हुई। उत्तम स्वादिष्ट और रसीले पदार्थों का आहार भी इस शरीर में जाकर अशुचि रुप से परिणत होता है। इस देह को कितना भी सुगन्धित पदार्थों से युक्त जल से स्नान कराया जाए, चंदन, केशर आदि उत्तमोतम पदार्थों का लेप किया जाए, सभी द्रव्य दुर्गंध रुप में रुपान्तरित हो जाते हैं। कहा जाता है :-

जिसके श्रृंगारों से मेरा, यह महंगा जीवन धुल जाता।
अत्यंत अशुचि जड काया से इस चेतन का कैसा नाता ?

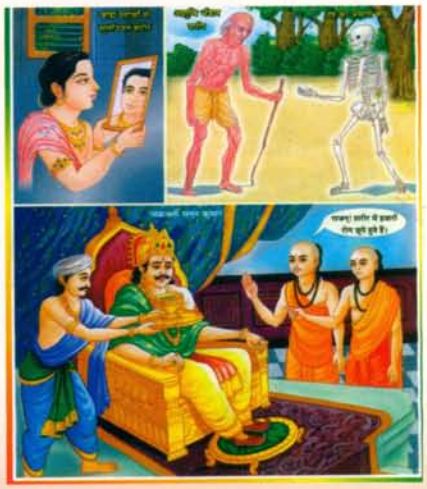

मेरा यह अनमोल जीवन जिस देह को संवारने में नष्ट हो रहा है, वह काया तो अत्यंत अशुद्ध है और उस जड काया से मुझ चेतन का कोई संबंध भी नहीं। ऐसे अशुचिमय शरीर के प्रति क्या राग करना? इस प्रकार इस शरीर की अशुचिता का चिंतन करना अशुचि भावना है। यह भावना **सनतकुमार चक्रवर्ती** ने भायी थी।

सनतकुमार चक्रवर्ती बहुत ही रुपवान थे। उन्हें अपने शरीर के सौंदर्य पर गर्व था। ब्राह्मण वेषधारी देव के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर वे और भी अहंकारग्रस्त हो गये थे और उन्होंने ब्राह्मण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेषधारी देवों को अपना रुप दिखाने हेतु राज्य सभा में आमंत्रित किया था। जब देव राजसभा में सिंहासनासीन सनतकुमार चक्रवर्ती के पास आये तो देखकर दंग हो गये। देवों ने कहा - अब तुम्हारा रुप पहले जैसा नहीं रहा, आपका शरीर रोगग्रस्त हो गया है। असंख्यात कीटाणु के साथ सात - सात महारोग इसमें भरे पडे हैं। इसलिए इस पर गर्व मत करो। देवों के कहने पर राजा ने पात्र में थुका। थूक में बिलबिलाते कीडे दिखाई दिये और दुर्गन्ध फैल रही थी। उसी पल उन्हे शरीर की अशुचि का भान हुआ और शरीर से वैराग्य हुआ। शरीर में उत्पन्न हुई पीडाओं को समभावपूर्वक सहन करने से वे सिद्धमुक्त हो गए।

7. **आश्रव भावना** :- मन, वचन और काया के शुभाशुभ व्यापार द्वारा जीव जो शुभाशुभ कर्म ग्रहण करते हैं, उसे आश्रव कहते हैं। आत्मा में मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योग रुप आश्रव द्वारों से निरंतर नूतन कर्मों का आगमन होता रहता है। इसी कर्मबंध के कारण आत्मा के जन्म मरण का चक्र चलता रहता है। इस प्रकार का चिंतन करना आश्रव भावना है। कहा जाता है :-

दिन रात शुभाशुभ भावों में मेरा व्यापार चला करता।
मानस वाणी और काया से, आश्रव का द्वार खुला रहता।।

मेरे दिन रात शुभ - अशुभ भाव चलते ही रहते है अतः मन, वचन, काया रुपी द्वार कर्मों के आने के लिए खुले ही रहते हैं। जिस प्रकार चारों ओर से आते हुए नदी, नालों और झरनों द्वारा तालाब भर जाता है,

इसी प्रकार आश्रव द्वारा आत्मा में कर्म रुपी जल आता है और इस कर्म से आत्मा मलीन हो जाती है। कर्मों का आगमन कितने द्वारों से होता है और इनके आगमन के कौन कौन से कारण तथा उससे कैसा फल परिणाम मिलता है आदि विषयों पर चिंतन किया जाता है। इस प्रकार आश्रव - भावना का चिंतन करने से जीव अव्रत आदि का कुपरिणाम समझ लेता है, इनका त्याग कर व्रत ग्रहण करता है, इन्द्रिय और कषायों का दमन करता है, योग का निरोध करता है और क्रियाओं से निवृत होने का प्रयत्न करता है।

चंपानगरी के पालित श्रावक का पुत्र **समुद्रपाल** एक दिन अपने महल के झरोखे में बैठा हुआ नगर के दृश्य देख रहा था। यकायक उसकी दृष्टि एक मृत्युदंड के लिए ले जाते हुए एक चोर पर पडी। चोर को बंधन में पडा देखकर उसने चिंतन किया की अशुभ कर्म के उदय से यह चोर बंधन में पडा है। अशुभ कर्मों का उदय आएगा तो मुझे भी कौन छोडेगा, यह कर्मोदय आश्रव पर निर्भर है। इस प्रकार आश्रव के परिणामों पर गहन चिंतन करते हुए समुद्रपाल को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। अतः उसने विरक्त होकर दीक्षा अंगीकार कर ली। तत्पश्चात् तप - संयम की आराधना कर मुक्ति को प्राप्त हुए।

8. **संवर भावना** :- संवर भावना में आश्रव द्वारों को बंद करने के सम्यक्त्व तथा व्रतादि साधनों - उपायों पर चिंतन - मनन किया जाता हैं । कहा जाता है :-

शुभ और अशुभ की ज्वाला से झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणें फूटे संवर से जागे अर्न्तबल ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शुभ और अशुभ की ज्वाला से मेरा अंतर जल रहा है। सम्यग्दर्शन रुपी किरणें ही इन शुभाशुभ भावों को शांत करके मेरे अंतरबल को जागृत कर सकती है। इस प्रकार के चिंतन से मनुष्य में धर्मपूर्वक तप, समिति, गुप्ति तथा परिषह जय आदि से सद् आचरण की और प्रवृत्ति बढती है, जिससे कर्मों के आगमन के द्वार बंद हो जाते है, अर्थात् कर्मों का संवर होने लगता है।

हरिकेशी मुनि ने इस भावना का चिंतन किया था। उन्होंने ब्राह्मणों को उपदेश दिया कि - ''हिंसामय यज्ञ का त्याग करके सच्चे यज्ञ का स्वरुप समझो। जीव रुप कुंड में अशुभ कर्मरुपी ईंधन को तपरुपी अग्नि के द्वारा भस्म करो। हिंसामय यज्ञ तो आस्रव यज्ञ है, पापबंध का कारण है। अतः उसे छोडकर संवर रुप पवित्र दयामय यज्ञ का अनुष्ठान करो।'' यह संवर भावना का उदाहरण है।

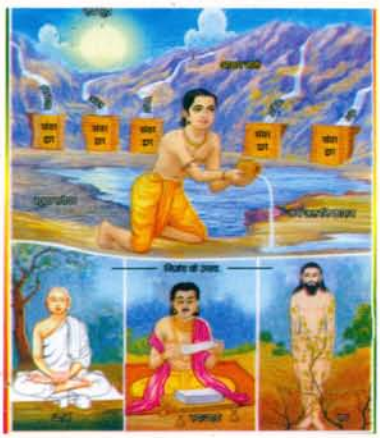

9. निर्जरा भावना :- बद्ध कर्मों को नष्ट करने के स्वरुप, कारण तथा उपाय आदि का चिंतन करना निर्जरा भावना है। निर्जरा का अर्थ है - जर्जरित करना, पूर्वबद्ध कर्मों का धीरे - धीरे क्षय होते जाना। जो निर्जरा संवर पूर्वक होती है, वही आत्मा के लिए उपयोगी है। जिस निर्जरा के साथ नवीन कर्म का बंध नहीं होता, वहीं निर्जरा आत्मा को कर्मों से मुक्त कर सकती है। ऐसी निर्जरा तप आदि के द्वारा होती है। तप करते हुए परिषह व उपसर्ग आने पर दुःख की अनुभूति नहीं होती है, अपितु आनंद की अनुभूति होती है। जीव उसे ज्ञानपूर्वक समभाव के साथ सहता है, तथा कषायों पर विजय भी प्राप्त करता है। कहा जाता है :-

फिर तप की शोधक वन्हि जगे, कर्मों की कडिया टूट पडे।
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पडे ।।

फिर सम्यक् तप रुपी शुद्ध अग्नि से कर्म नष्ट होते है और आत्म प्रदेशों में रहे आत्मा के शाश्वत अनंत गुण पूर्ण रुप से प्रकट होते हैं।

राजगृह निवासी **अर्जुनमाली** प्रतिदिन 6 पुरुष और 1 स्त्री यों सात प्राणियों का घात करता था। लगभग 1141 व्यक्तियों की हत्या कर डाली थी। परंतु सुदर्शन सेठ के निमित्त से वह प्रभु महावीर स्वामी के शरण में पहुंच गया व दीक्षा अंगीकार कर ली और यावज्जीवन बेले - बेले तप करने की प्रतिज्ञा ग्रहण की। पारणे के दिन नगरी में भिक्षा के लिए जाते तो उन्हें देखकर लोग ताडना - तर्जना, विविध प्रकार की यातनाएं देते थे किंतु अर्जुन अनगार समभाव, शांति और धैर्य से सहन करते हुए इस प्रकार चिंतन करते थे, मैंने तो इनके सम्बंधियों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की हत्या कर दी थी, परंतु ये तो मात्र मुझे मार - पीट ही कर रहे हैं, इससे मेरा कुछ भी नहीं बिगडता बल्कि ये मुझे कर्म - निर्जरा का सुंदर अवसर देकर मेरी सहायता कर रहे हैं। उन्होंने छह महीनों में ही समस्त कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त कर लिया।

10. लोक भावना :- जिस भावना में लोक के यर्थाथ स्वरुप, रचना, आकृति आदि पर चिंतन किया जाता है, वह लोक भावना है। इसमें उर्ध्व, तिर्यक और अधोलोक की स्थिति एवं उनमें रहे हुए सर्व पदार्थों के स्व - पर उपयोग पूर्वक विचार करना होता है। उर्ध्वलोक में देवविमान तिर्यंकलोक में असंख्यात द्वीप तथा समुद्र और अधोलोक में सात नरक भूमियाँ है। लोक अनादि, अनंत व षड्द्रव्यों का समूह है। इन द्रव्यों के स्वरुप तथा परस्पर संबंधों के बारे में चिंतन मनन करना, ऐसे चिंतन से लोक के शाश्वत और अशाश्वत होने तथा यह लोक किस पर टिका है, आदि से संबंधित मिथ्या धारणाएं नष्ट होती है।

हम छोड चले यह लोक तभी लोकान्त विराजे क्षण में जा
निज लोक हमारा वासा हो, शोकान्त बने फिर हमको क्या

अर्थातः- सभी कर्मों का नाश होने पर जीव इस दुःखमय लोक को छोडकर लोक के अंत में स्थित हो जाता है जहां निज आत्मा में ही उसका वास होने से दुःखों का अन्त हो जाता है।

गंगा नदी के तट पर बाल - तप करते हुए **शिवराज ऋषि** को विभंगज्ञान उत्पन्न हो गया था जिससे वे सात द्वीप और सात समुद्र पर्यन्त देख सकते थे। अपने इस ज्ञान को परिपूर्ण समझकर वे प्ररुपणा करने लगे, लोक में सात द्वीप और सात समुद्र ही है इसके आगे कुछ नहीं है। एक दिन उन्होंने भगवान महावीर स्वामी की वाणी द्वारा यह जाना कि स्वयंभूरमण समुद्र तक असंख्य द्वीप और समुद्र है उस दिन शिवराज ऋषि के मन में शंका उत्पन्न हुई और वे चिंतन की गहराई में डुब गए। फलतः तत्काल उनका विभंगज्ञान अवधिज्ञान में परिणत हो गया। भगवान महावीर के पास दीक्षा अंगीकार कर ली। लोक में द्वीप और समुद्र असंख्यात है, भगवान की इस प्ररुपणा पर उनको दृढ श्रद्धा और विश्वास हो गया, फिर बार बार अनुचिंतन और मनन से उन्हें केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त हो गया।

11. बोधिदुर्लभ भावना :- चौरासी लाख योनियों और चार गतियों मं भ्रमणशील मनुष्यों को उत्तम कुल प्राप्त होना और उसमें भी विशुद्ध बोध (आत्म बोध) सम्यक्त्व मिलना अत्यंत दुर्लभ है। जब ऐसी स्थित प्राप्त हुई तो उस मार्ग की ओर क्यो न हम अग्रसर होये ? जब यह चिंतन होता है तब वह बोधि दुलर्भ भावना कहलाती है। संसार में मनुष्य पर्याय ही एक ऐसी पर्याय है जिसमें धर्म को धारण करते हुए सम्यक् संयम, तपादि का आचरण कर कर्मबंध से मुक्त हुआ जा सकता है। यानि मोक्ष को प्राप्त किया जा सकता है।

जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभु, दुर्नयतम सत्वर टल जावे।
बस ज्ञाता दुष्टा रह जाऊँ, मद, मत्सर मोह विनश जावे।।

अर्थातः- सत्य बोध को पाना अति दुर्लभ है। इन भावनाओं के चिंतन से मुझे सत्य बोध की प्राप्ति हो, दुर्नय अर्थात मिथ्या मान्यता का नाश हो। अहंकार मोह आदि भाव विनिष्ट हो और ज्ञाता दृष्टा साक्षी भाव प्राप्त करुं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

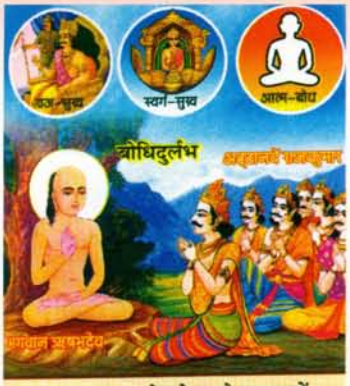

भगवान ऋषभदेव ने अपने अट्ठानवें पुत्रों को जो उपदेश दिया-
संबज्झह ! समझो! बोधिदर्लभ है।

भगवान ऋषभदेव के 98 पुत्रों ने प्रभु की प्रेरणा से इस भावना का चिंतन किया। भगवान ने उन्हें कहा - सबुज्झह, किं न बुज्झह संबोहि खलु पेच्च दुल्लहा - समझो क्यों नहीं समझते हो ? बोधि बीज की प्राप्ति होना अत्यंत दुर्लभ है। भौतिक राज्य तो अनंत बार प्राप्त हो चुका है परंतु बोधि - बीच की प्राप्ति पुनः पुनः नहीं होती। अतएव तुम सम्यक्त्व और चारित्र प्राप्त करके मोक्ष का अविचल राज्य प्राप्त करो। भगवान की वाणी से प्रतिबोध पाकर 98 पुत्रों ने संयम ग्रहण करके मोक्ष का अक्षय साम्राज्य प्राप्त किया।

12. धर्म भावना :- जिस भावना में धर्म और तत्व का चिंतन किया जाता है वह भावना धर्म भावना हैं। संसार में प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति सुलभ है परंतु धर्म के साधक - स्थापक - उपदेशक अरिहंत प्रभु की प्राप्ति महादुलर्भ है। इसमें मनुष्य यह चिंतन करता है कि यह मेरा अहोभाग्य है कि मुझे यह धर्म मिला है, जो प्राणी मात्र का कल्याण करने में समर्थ, सक्षम तथा सर्वगुण संपन्न है क्योंकि यह धर्म तीर्थंकरों के द्वारा बताया गया हैं। जब मनुष्य पर विपत्ति, रोग, शोक, भय की आंधियां उमड रही हों तब शांति, धैर्य, ममत्व द्वारा आत्म - स्वभाव में स्थिर रखनेवाला एक मात्र धर्म है। **उत्तराध्ययन सूत्र** में भी धर्म की शरण को ही उत्तम शरण कहते हुए कहा है कि संसार में धर्म ही शरण है। जन्म - जरा - मृत्यु के प्रवाह के वेग में डुबते हुए प्राणियों के लिए धर्मद्वीप ही उत्तम स्थान और शरण रुप है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई रक्षक नहीं है। कहा जाता है :-

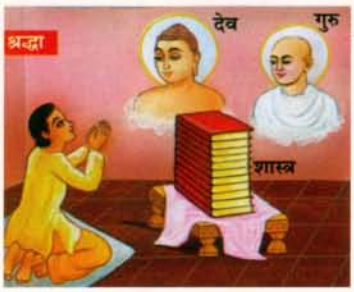

चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी,
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहे जग के साथी।।

दीर्घकाल में धर्म ही रक्षण करने वाला है अतः अब धर्म ही मेरा स्थायी साथी है, वास्तव में इस जग में हमारा कोई नहीं था, अब हम भी जग के साथी नहीं है। अतः मनुष्य जन्म तभी सार्थक है जब इस धर्म का सतत चिंतन व मनन कर तदनुरुप आचरण में उतारा जाए। यह भावना **धर्मरुचि अनगार** ने भायी थी।

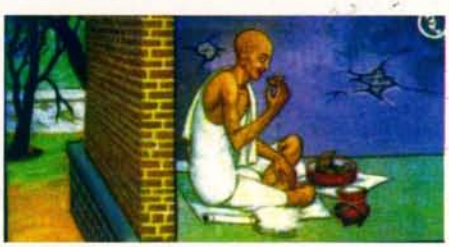

नागश्री ब्राह्मणी ने धर्मरुचि अनगार को कडवे तुम्बे का शाक बहराया था। वह लेकर जब वे गुरु के पास आये और उन्हें वह आहार बताया तो गुरु ने इसे विषैला जानकर निरवध भूमि में परठाने की आज्ञा दी। धर्मरुचि अनगार उस शाक की एक बूंद पृथ्वी पर डाली। उसी समय अनेक चिंटियां वहां आ गई और शाक खाकर मर गई। मुनि से यह नहीं देखा गया। उन्होंने अपने पेट को ही सर्वोत्तम निवध जगह मानकर यह आहार कर लिया। उससे सारे शरीर में वेदना उत्पन्न हो गई। मुनिराज दया धर्म में रहकर जीवरक्षा के लिए उस वेदना को समभाव से सहते रहे। आयुपूर्ण कर वे सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए। अगले भव में कर्मों का क्षय करके मोक्ष में जायेंगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार इन बारह भावनाओं के चिंतन करने से कोई भी मनुष्य अपने जन्म और मरण को सार्थक कर सकता है।

******

* बाईस परिषहजय *

परिषह शब्द परि + सह के संयोग से बना है। अर्थात् परिसमन्तात् - सब तरफ से, सम्यक् प्रकार से, सह -अर्थात् सहना समभावपूर्वक सहन करना। संयम मार्ग में आती हुई विकट बाधाओं को समभावपूर्वक सहन करना परिषह कहलाता है। परिषह - जय को संवर कहा गया जिसका मतलब यह है कि कष्टों से न घबराकर और निमित्त को न कोसते हुए दुःखों का सामना करना तथा उन पर चित्त को कहीं पर भी संक्लेश में न ले ज्ञानरुप विजय पाना। तत्वार्थ सूत्र में परिषह सहन के दो उद्देश्य बताते हुए कहा है। **मार्गच्यवन - निर्जरार्थ परिषोढव्या : परिषहा**

मार्ग से च्युत न होना एवं कर्मों के क्षय के लिए जो सहन करने योग्य हो, वे परिषह है।

परिषह सहन करने का प्रथम उद्देश्य है मार्ग च्यवन यानी जो साधक वीतराग मार्ग पर चल रहा है उससे च्युत नहीं होना अर्थात् उसमें स्थिर बने रहना। दूसरा उद्देश्य निर्जरा है, यानी पूर्वबद्ध कर्मों के क्षय के लिए परिषह सहन करना चाहिए। परिषह बाईस प्रकार के बताये गये हैः- 1. क्षुधा 2. पिपासा 3. शीत 4. उष्णा 5. दंश 6. अचेल 7. अरति 8. स्त्री 9.चर्या 10. निषधा 11. शय्या 12. आक्रोश 13. वध 14. याचना 15. अलाभ 16. रोग 17. तृण - स्पर्श 18. मल, 19. सत्कार - पुरस्कार 20. प्रज्ञा 21. अज्ञान 22. सम्यक्त्व/दर्शन

1. क्षुधा परिषह :- संयम की मर्यादा के अनुसार भिक्षा न मिलने पर भूख को समभावपूर्वक सहन करना परंतु सावद्य या अशुद्ध आहार ग्रहण न करना व आर्त्तध्यान भी नहीं करना, क्षुधा परिषह कहलाता है।

2. पिपासा परिषह :- जब तक निर्दोष अचित्त जल न मिले तब तक प्यास सहन करना पर सचित अथवा सचित अचित मिश्रित जल नहीं पीना, पिपासा परिषह कहलाता हैं।

3. शीत परिषह :- अति ठंड पडने से अंगोपांग अकड जाने पर भी अपने पास जो मर्यादित एवं परिमित वस्त्र हो, उन्हीं से निर्वाह करना एवं आग आदि से ताप न लेना, शीत परिषह है।

4. उष्ण परिषह :- गर्मी के मौसम में तपी हुई शिला, रेत आदि पर पदत्राण के बिना चलना, भीषण गर्मी में भी स्नान विलेपन की इच्छा न करना, मरणान्त कष्ट आने पर भी छत्र - छत्री की छाया, वस्त्रादि अथवा पंखे की हवा न लेना उष्ण परीषह है।

5. दंश परिषह :- वर्षाकाल आदि में डांस, मच्छर, खटमल आदि का उपद्रव होने पर भी धुएं, औषध आदि का प्रयोग न करना, न उन जीवों पर द्वेष करना बल्कि उनके डंक की वेदना को समभावपूर्वक सहन करना, दंश परिषह कहलाता है।

6. अचेलक परिषह :- अपने पास रहे हुए अल्प तथा जीर्ण - शीर्ण वस्त्रों में संयम निर्वाह करना, बहुमूल्य वस्त्रादि लेने की इच्छा न करना, अत्यल्प मिले तो भी दीनता का विचार न

करना, अचेल परीषह है।

7. अरति परिषह :- अंगीकृत मार्ग में अनेक कठिनाइयों के कारण अरुचि का प्रसंग आने पर भी मन में अरुचि - अप्रसन्नता वैर भाव न लाते हुए धैर्यपूर्वक संयममार्ग में रुचि रखते हुए दृढ रहना अरति परिषह है।

8. स्त्री परिषह :- पुरुष या स्त्री साधक को अपनी साधना में विजातीय आकर्षण या मोह का प्रसंग आने पर न ललचाना, समभाव एवं ज्ञानबल से मन को मोडना, स्त्री परिषह कहलाता है।

9. चर्या परिषह :- चर्या अर्थात् चलना, विहार करना। चलने में जो थकावट होती है तथा विहार के समस्त कष्टों को समभावपूर्वक सहन करना तथा मासकल्प की मर्यादानुसार विहार करना चर्या परिषह कहलाता है।

10. निषधा परिषह :- श्मशान, शून्य, गृह, गुफा आदि में ध्यान अवस्था में मनुष्य - पशु - देव द्वारा किसी भी प्रकार का अनुकूल अथवा प्रतिकूल उपसर्ग आने पर उससे बचने के लिये उस स्थान को छोडकर न जाना बल्कि उन उपसर्गों को दृढतापूर्वक सहन करना निषधा परिषह है।

11. शय्या परिषह :- सोने के लिए उंची - नीची कठोर जमीन मिलने पर भी मन में किसी प्रकार का द्वेष भाव न लाकर सहजता पूर्वक स्वीकार कर लेना, शय्या परिषह है।

12. आक्रोश परिषह :- कोई अज्ञानी गाली दे, कटुवचन कहे, तिरस्कार या अपमान करें तब भी उससे द्वेष न करना, सत्कार समझकर प्रसन्नतापूर्वक सहन करना आक्रोश परिषह है।

13. वध परिषह :- कोई अज्ञानी पुरुष साधु को डंडे से, लाठी या चाबुक से मारे - पीटे अथवा हत्या भी कर दे तब भी मन में किञ्चित रोष न लाना, वध परिषह है।

14. याचना परिषह :- साधु कोई भी वस्तु मांगे बिना ग्रहण नहीं करता। उसकी प्राप्ति के लिए मैं राजा था, धनाढ्य था इत्यादि मान एवं अहं का त्याग करके घर - घर से भिक्षा मांगकर लाना, याचना करते समय अपमान व लज्जा आदि को जीतना, याचना परिषह है।

15. अलाभ परिषह :- मान तथा लज्जा का त्याग कर घर घर भिक्षा मांगने पर भी न मिले तो लाभान्तराय कर्म का उदय जानकर शांत रहना, दुःखी अथवा उत्तेजित न होना, अलाभ परिषह है।

16. रोग परिषह :- व्याधि होने पर चिकित्सा शास्त्र विधि अनुसार करना रोग दूर न हो तो व्याकुल न होना। शरीर के मोह में पडकर व्याधि आदि के निवारण के लिए सदोष चिकित्सा जिसमें जीव - हिंसा होती हो, उसका प्रयोग न करें, अपने कर्म का विचार करके समतापूर्वक सहन करना, रोग परिषह कहलाता है।

17. तृण - स्पर्श :- तृण आदि के बने संथारे में या अन्य समय में तृण आदि का तीक्ष्णता या कठोरता का अनुभव होने पर भी मृदु - शय्या के स्पर्श जैसी प्रसन्नता रखना तृण - स्पर्श है।

18. मल परिषह :- साधु के लिए स्नान शृंगार वर्जित है और शृंगार विषय का कारण रुप है, अतः शरीर पर पसीने के कारण मैलादि जमने पर दुर्गंध आती हो तब भी उसे दूर करने के लिए स्नानादि की इच्छा न करना, मल परिषह है।

19. सत्कार - पुरस्कार :- सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय सत्कार सम्मान प्राप्त होने पर भी मन में हर्ष तथा गर्व न करना और न मिलने पर खेद न करना, सत्कार - पुरस्कार परिषह है।

20. प्रज्ञा परिषह :- प्रखर बुद्धि होने पर भी गर्व न करना और बुद्धि कम होने पर खेद न करना, प्रज्ञा परिषह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहलाता है।

21. अज्ञान परिषह :- ज्ञान प्राप्ति के लिये अथक प्रयास, तपस्या तथा ज्ञानाभ्यास करने पर भी ज्ञान की प्राप्ति न होने पर अपने आप को पुण्यहीन, निर्भाग मानकर खिन्न न होना, अपितु ज्ञानावरणीय कर्म का उदय समझकर चित्त को शांत रखना, अज्ञान परिषह है।

22. सम्यक्त्व या दर्शन परिषह :- नाना प्रकार के प्रलोभन अथवा अनेक कष्ट व उपसर्ग आने पर भी अन्य पाखंडियों के आडम्बर पर मोहित न होकर सर्वज्ञ प्रणीत धर्म तत्त्व पर अटल श्रद्धा रखना, शास्त्रीय सूक्ष्म अर्थ समझ में न आने पर उदासीन होकर विपरीत भाव न लाना, सम्यक्त्व / दर्शन परिषह है।

* किस कर्म के उदय से कौन-सा परिषह होता है *

* **ज्ञानावरणीय** :- प्रज्ञा, अज्ञान
* **अंतराय** :- अलाभ
* **दर्शन मोहनीय** :- सम्यक्त्व / दर्शन
* **चारित्र मोहनीय** :- अचेलक, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना, सत्कार - पुरस्कार
* **वेदनीय** :- क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श, मल

एक साथ एक जीव को 1 से लेकर 19 परिषह संभव है।

19 कौन सी :- उष्ण, शीत, शय्या, चर्या, निषधा + 17 शेष

19 = 1 + 1 + 17

* पांच चारित्र *

साधक जीवन का मूलाधार चारित्र है। चय यानि आठ कर्म का चय - संचय, उसे रिक्त - खाली करनेवाले अनुष्ठान का नाम चारित्र है। अर्थात् आत्मिक शुद्ध दशा में स्थिर रहने का प्रयत्न करना ही चारित्र है। **उत्तराध्ययन सूत्र** में चारित्र की परिभाषा करते हुए कहा गया है।

एयं चयरित्तकरं चारित्तं होई आहियं

आत्मा का पूर्व संचित कर्मों को दूर करने के लिए सर्व पाप रुप क्रियाओं का त्याग करना, सम्यक् चारित्र है। चारित्र पांच प्रकार का है।

1. सामायिक चारित्र 2. छेदोपस्थापनीय चारित्र 3. परिहार विशुद्धि चारित्र 4. सूक्ष्म संपराय चारित्र और 5. यथाख्यात चारित्र।

1. सामायिक चारित्र :- सम् - समता भावों का, आय - लाभ हो जिसमें, समता का लाभ हो वह सामायिक है। समभाव में स्थित रहने के लिए संपूर्ण अशुद्ध या सावद्य प्रवृत्तियों का त्याग करना सामायिक चारित्र है। इसके 2 भेद हैं - * इत्वारिक * यावत्कथिक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*. **इत्वरिक सामायिक चारित्र** :- इत्वर अर्थात् अल्पकालीन। अल्प काल के लिए जो सामायिक चारित्र दिया - लिया जाता है। जिसमें भविष्य में दुबारा करने का व्यपदेश हो, उसे इत्वरिक सामायिक चारित्र कहते हैं। श्रावक के 48 मिनट (2 घडी) तथा प्रथम व अंतिम तीर्थंकर के शासन में छोटी दीक्षा से बडी दीक्षा तक का चारित्र इत्वरिक है। यह जघन्य 7 दिन, मध्यम 4 मास तथा उत्कृष्ट 6 मास का होता है। यह चारित्र केवल भरत तथा ऐरावत क्षेत्र के प्रथम व चरम तीर्थंकरों के शासन में ही होता है।

*. **यावत्कथिक सामायिक चारित्र** :- यावज्जीवन की सामायिक यावत्कथिक सामायिक चारित्र कहलाती है। प्रथम व अंतिम तीर्थंकर को छोडकर बीच के 22 तीर्थंकरों के साधुओं एवं महाविदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों के साधुओं के दीक्षा के प्रारंभ से जीवन के अंतिम समय तक का चारित्र यावत्कथिक सामायिक कहलाता है।

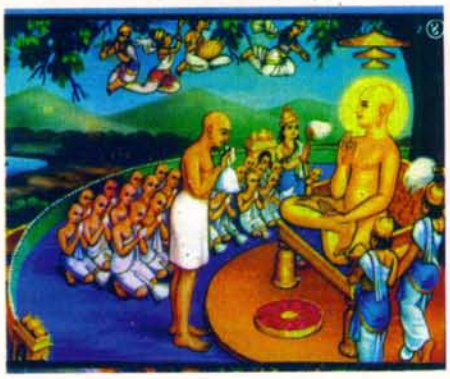

2. छेदोपस्थापनीय चारित्र :- पूर्व चारित्र पर्याय का छेद करके पुनः महाव्रतों का आरोपण जिसमें किया जाता है, उसे छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं। छेदोपस्थापनीय चारित्र दो प्रकार का हैं।

* **निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र** :- छोटी दीक्षावाले मुनि को एवं एक तीर्थंकर के शासन से दूसरे तीर्थंकर के शासन में जानेवाले साधुओं में जो पुणः व्रतारोपण किया जाता है, उसे निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं।

*. **सातिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र** :- मूल गुणों का घात करनेवाले साधु के पूर्व पर्याय का छेद कर जो पुनः महाव्रतों का आरोपण कराया जाता है, उसे सातिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं।

3. परिहार विशुद्धि चारित्र :- परिहार अर्थात् त्याग या तपश्चर्या विशेष । जिस चारित्र में तप विशेष से कर्म निर्जरा रुप शुद्धि होती है, उसे परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं।

तीर्थंकर, केवली, गणधरादि अथवा जिन्होंने पूर्व में परिहार विशुद्ध चारित्र अंगीकार किया हो, उनके पास यह चारित्र स्वीकार किया जाता है।

इसकी आराधना 9 साधु मिलकर करते हैं। इसकी अवधि 18 महिनें की होती है। प्रथम 6 मास में 4 साधु तपस्या (ऋतु के अनुसार उपवास से लेकर पंचौला तक की तपश्चर्या) करते हैं, चार साधु उनकी सेवा करते हैं और एक वाचनाचार्य (गुरुस्थानीय) रहता है। दूसरे 6 महीने में तपस्या करने वाले सेवा और सेवा करनेवाले तप करते हैं, वाचनाचार्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वहीं रहता है। इसके पश्चात् तीसरी 6 महीने में वाचनाचार्य तप करते हैं,(उनमें से एक साधु वाचनाचार्य हो जाता है।) शेष साधु उनकी सेवा करते हैं। हर बार तप का पारणा सभी साधु आयंबिल से करते हैं, इस दृष्टि से परिहार का तात्पर्यार्थ तप होता है उसी से विशेष आत्म शुद्धि की जाती है। यह तप पूर्ण होने पर वे साधु या तो इसी कल्प को पुनः प्रारंभ करते है या जिन कल्प धारण कर लेते हैं या वापस गच्छ में आ जाते हैं । भरत तथा ऐरावत क्षेत्र में ही यह चारित्र होता है। स्त्री को यह चारित्र नहीं होता। वर्तमान में यह चारित्र नहीं है।

4. **सूक्ष्म सम्पराय चारित्र** :- सामायिक अथवा छेदोपस्थापनीय चारित्र की साधना करते - करते जब क्रोध, मान, माया ये तीन कषाय उपशांत या क्षीण हो जाते हैं, केवल एक मात्र संज्वलन लोभ कषाय सूक्ष्म में रुप रह जाता है, उस स्थिति को सुक्ष्मसंपराय चारित्र कहते हैं। यह चारित्र दशवे गुणस्थानवर्ती साधु - साध्वियों को होता है।

5. **यथाख्यात चारित्र** :- जब चारों कषाय सर्वथा उपशम या क्षीण हो जाते हैं, उस समय की चारित्रिक स्थिति को यथाख्यात चारित्र कहते हैं। यह चारित्र गुणस्थान की अपेक्षा से दो भागों में विभक्त है।

1. उपशमात्मक यथाख्यात चारित्र 2. श्रयात्मक यथाख्यात चारित्र

1. प्रथम चारित्र ग्यारहवें गुणस्थान वाले साधक को, और द्वितीय चारित्र बारहवें और उससे ऊपर के गुणस्थानों में होता है।

इस प्रकार 5 समिति, 3 गुप्ति, 10 यति धर्म, 12 भावना, 22 परिषह और 5 चारित्र ये कुल मिलाकर संवर के 57 भेद होते हैं।

*****

* जैन आचार मीमांसा *

* आहार शुद्धि
* श्रावक के चौदह नियम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* आहार शुद्धि *

जैन दर्शन का लक्ष्य अनाहारी पद अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने का है। अनादि काल से आत्मा कर्मवश शरीर का निर्माण करती है और इसे टिकाने के लिए नित नया आहार लेती है। आहार से रक्त आदि धातुओं का निर्माण होता है और इसी के अनुसार विचारधारा का निर्माण होता है। आत्मा के परिणाम शुद्ध रखने के लिए खाद्य पदार्थों की शुद्धि अति आवश्यक है।

* **आहार विवेक** :- अनादिकाल से देहधारी जीव को आहारसंज्ञा, रस, स्वाद की वृत्ति न्यूनाधिक अंश में सताती है। इस वृत्ति के अनियंत्रित होने पर स्वास्थ्य हानि होती है। रोग के कारण जीवन पराधीन होता है असमाधिमरण होता है और फलस्वरुप परलोक में आत्मा की दुर्गति होती है। रसलोलुपता के दण्ड स्वरुप असंख्य, अनंत काल तक ऐकेन्द्रिय पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पतिकाय में भ्रमण करना पडता है। अतः शरीर के विकास, मन की निर्मलता और आत्मा के ओजस्व को प्रगटाने के लिए आहार में विवेक आवश्यक है।

* **आहार के प्रकार** :- आहार अर्थात् भोजन सामग्री चार प्रकार की है :- अशन, पान, खादिम, स्वादिम

भोजन में लिए जानेवाले खाद्य पदार्थों के संख्या अनेक है। युगलिक युग से लेकर आज तक मनुष्य ने चित्त की परिणितियों एवं संयोगों के चलते अनेक प्रयोगों द्वारा विविध रसवृतियों का निर्माण किया है। इन पदार्थों के भी दो विभाग किया जा सकते है।

* **भक्ष्य** :- खाने योग्य पदार्थ जैसे वनस्पति, अनाज, औषधि आदि।

* **अभक्ष्य** :- नहीं खाने योग्य पदार्थ जैसे कंदमूल, पाऊ, बटर, बिस्कीट, आचार, मांस, मदिरा आदि वस्तुएं।

* **आहारशुद्धि और मन** :- आहार का संबंध जितना शरीर के साथ है उतना ही मन के और जीवन के साथ भी है। कहां भी है जैसा अन्न वैसा मन और जैसा मन वैसा जीवन। साथ ही जैसा जीवन वैसा मरण। आहार शुद्धि से विचार शुद्धि और विचार शुद्धि से व्यवहार में शुद्धि आती है। दूषित अभक्ष्य आहार ग्रहण करने से मन और विचार दूषित होते हैं। अतः सात्विक गुणमय जीवन व्यतीत करने के लिए एवं अनेक दोषों से बचने के लिए भक्ष्य - अभक्ष्य व्यवहार के गुण दोषों का परिशीलन करना आवश्यक है।

* **भक्ष्य आहार से लाभ** :-
  * शुद्ध सात्विक आहार से अनंत त्रस व स्थावर जीवों को अभयदान प्राप्त होता है।
  * मन प्रसन्न, सात्विक बनता है।
  * शरीर निरोगी, सुंदर बनता है।
  * त्याग - तप आदि के संस्कार का आत्मा में बीजारोपण होता है।
  * जीवन - मरण समाधिमय बनता है।
  * परलोक सद्गतिमय बनता है।
  * सातावेदनीय कर्म का बंध होता है।

* **अभक्ष्य आहार से हानि** :-
  * अनंत त्रस व स्थावर जीवों की हिंसा होती है।
  * मन के परिणाम कठोर बनते हैं।

For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* मन विकार ग्रस्त, तामसी बनता है।
* शरीर रोगों का केन्द्र बनता है।
* काम, क्रोध उन्माद बढता है।
* अशाता वेदनीय कर्मों का बंध होता है।
* नरकादि दुर्गति का आयुष्य बंध होता है।

*** जैन दर्शन की दृष्टि के प्रकाश से 22 अभक्ष्य** :- अनंत उपकारी, अनंत करुणा के सागर श्री जिनेश्वर परमात्मा ने स्वयं के निर्मल केवलज्ञान के प्रकाश से हमारे समक्ष आहार विज्ञान का सूक्ष्म विवेचन किया है, जो इस चार्ट द्वारा दर्शाया गया है।

*** त्यागने योग्य पदार्थ - 22 अभक्ष्य ***

4 - संयोगिक अभक्ष्य	4 - महाविगई	32 - अनंतकाय	4 - फल	5 - गुलर फल	4- अनउपयोगी
द्विदल	मांस	साग (9)	बहुबीज	बड फल	बरफ
चलितरस	मदिरा	औषध (5)	बैंगन	पीपल फल	ओले
आचार	शहद	भाजी (5)	तुच्छफल	पीलंखन फल	मिट्टी
रात्रिभोजन	मक्खन	जंगली (6)	अन्जान फल	उदुंबर फल	जहर
		बेल (7)		कलुंबर फल	

*** चार संयोगिक अभक्ष्य :-**

I. द्विदल अभक्ष्य :- जिसमें दो दल, दो विभाग हो ऐसे धान्य को द्विदल कहते हैं।

* व्याख्या :-

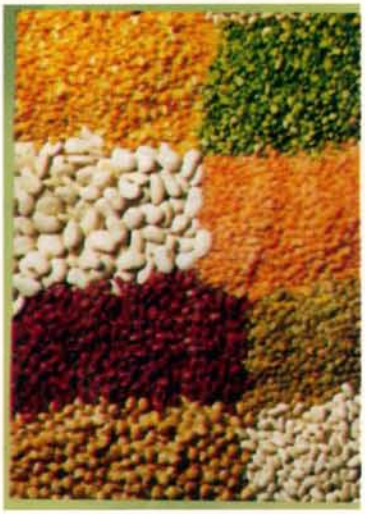

1. जो वृक्ष के फलरुप न हो।
2. जिसको पीलने से तेल न निकले।
3. जिसको दलने पर दाल बने।
4. जिसके दो भागों के बीच पड न हो ऐसे धान्य जैसे मूंग, मसुर, उडद, चना, मोंठ, चौला, वटाना, मेथी की दाल आदि। इन सबकी हरी पत्ती एवं हरे दाने उनका आटा सभी द्विदल कहलाते हैं। राई, सरसों, तिल और मूंगफली में से तेल निकलता है। इसलिए वे द्विदल नहीं कहलाते।

*** द्विदल त्याग का कारण** :- उपरोक्त चारों लक्षणों से युक्त सभी धान्य एवं धान्य से बनी हुई चीज कच्चे दही, दूध व छास के साथ मिलने पर तत्काल बेइन्द्रिय जीव की उत्पत्ति होती है।

इस मिश्रण के भक्षण से जीव हिंसा का महादोष लगता है और साथ ही आरोग्य भी बिगडता है। श्री श्राद्धवृत्ति और संबोध प्रकरण में लिखा है कि सभी देशों के सदैव गोरस से युक्त समस्त दलहनों (द्विदल) में अति सूक्ष्म पंचेन्द्रिय जीव तथा निगोद के जीव उत्पन्न होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* **द्विदल से बचने का उपाय** :- यदि कढी, रायता, दही वड़ा आदि बनाने हेतु कच्चा दूध, दही कठोल के साथ मिश्रित करना पडे तो उसे अच्छी तरह गरम करने पर द्विदल का दोष नहीं लगता।

* **द्विदल का दोष कहां लगता है** :-

1. **दही वडा** :- वडा मूंग, उडद आदि की दाल से बनता है। उसके बाद उस पर फ्रीज में से निकाला हुआ ठण्डा दही डालते हैं। यह दही और वडे का संयोग होने मात्र से तत्काल असंख्य बेइन्द्रिय जीव उत्पन्न हो जाते हैं। यह बैक्टेरिया चीज जैसे ही होती है, वैसे ही कलर के अतिसूक्ष्म कीडे के रुप उत्पन्न होते हैं। परमात्मा जिनेश्वर देव तो केवलज्ञान के स्वामी थे, उन्होंने अपने ज्ञानप्रकाश में जो जीवोत्पत्ति देखी है उसे बताया है। इस पर निश्कारण संदेह किये बिना उसे मस्तक झुकाकर स्वीकारना चाहिए। इस स्थान पर दही को वडे के साथ मिलाने से पहले अच्छी तरह से गरम करके उपयोग में ले। गरम करने के बाद खाते वक्त यदि वह ठंडा हो जाए तो हर्जा नहीं क्योंकि एकबार गरम करने के बाद फिर उसमें जो जीवात्पादक शक्ति थी, वह नष्ट हो जाती है।

2. **रायता** :- दही का रायता अनेक प्रकार से बनता है, इसमें जब कठोल चनादाल के आटे की बनी बूंदी मिक्स करते हैं तो द्विदल का दोष लगता है। कठोल के साथ मिक्स करने से पहले दहीं को उबाल ले तो दोष नहीं लगता।

3. **मेथी के पराठे** :- मेथी और मेथी की भाजी दोनों कठोल की गिनती में आती है। आजकल महिलाएं मेथी के पराठे बनाने बैठती है, तो द्विदल की बात बिलकुल भूल जाती है। थाली में गेहूँ बाजरे के आटे को मिलाकर फिर उसमें मेथी के पत्ते मिला देती है और फिर उसमें कच्छी छास डालकर उसे बहनें गूंथ लेती है। इस वक्त उन्हें यह ख्याल नहीं आता की तुम्हारे इस गूंथे हुए आटे में पूरे चेन्नई में न समाए इतने सूक्ष्म बेइन्द्रिय जीव पैदा हो गए है। वे तुम्हारे दोनों हाथों से मसले जा रहे हैं। थोडे समय बाद तुम उन्हें मौत की घाट (गरम तवे पर) पर उतारने वाली हो।

4. **कढी** :- जब छास की कढी बनानी हो, तब बहनें चूले पर छास तपेली में चढाकर गरम होने के पूर्व ही उसमें तुरंत बेसन डाल देती है। कच्ची छास में बेसन मिलते ही तत्काल असंख्य जीव पैदा हो जाते हैं। फिर जब कढी उबलती है तब वे जीव तपेली में ही स्वाहा हो जाते हैं। इस तरह जीवों की उत्पत्ति और संहार दोनों का दोष एक साथ होता है। इसलिए गरम होने से पूर्व बेसन डालने की जल्दी न करें। बघार में मेथी का उपयोग भूलकर भी न करें। दही गरम करने के बाद करें।

5. **ढोकला** :- खट्टे ढोकले बनाने के लिए कठोल के आटे का छास में घोल करते हैं। ये घोल करने के पहले छास को गरम कर लेना चाहिए। छास को गरम किये बिना सीधा आटा मिला दे तो द्विदल का दोष लगता है।

6. **दहीं और मेथी के पराठे** :- बाहरगाँव जाना हो तब व्यक्ति साथ में मेथी के पराठे ले जाता है। पराठे चाय के साथ उपयोग आये तब तो ठीक है, परंतु कई व्यक्ति पराठे के साथ दही खाते हैं, तब उन्हें यह ख्याल नहीं होता है कि पराठे के अंदर मेथी की भाजी डाली है। कच्चे दहीं के साथ मेथी का संयोग होगा तो असंख्य जीव उत्पन्न होंगे। इस कारण मेथी के पराठे के साथ दहीं न खाये। दहीं को गरम कर लेना जरुरी है, नहीं तो चाय के साथ पराठे खाये अथवा बिना मेथी और कठोल के पराठे बनाये।

www.jainelibrary.org

7. **छास** :- कई परिवारों में खाने के बाद छास पीते हैं। कच्ची छास के साथ कठोल का संयोग होने से बेइन्द्रिय कीडे उत्पन्न होते हैं। दोष से बचने की इच्छा वाले नर - नारी सबेरे छास को अच्छी तरह गरम करके फिर दोपहर में भोजन के समय उपयोग करते हैं। यह रास्ता सफल और सेफ है। यदि कभी कच्ची छास पीने में आये तो हाथ मुंह बिल्कुल साफ करना चाहिए। कठोल का स्पर्श न हो इस तरह अलग से छास पीकर उस छास की ग्लास को अलग से साफ करके रखना चाहिए। कठोल के झूठे के साथ यदि यह ग्लास का संयोग हो जाए तो हिंसा संभव है। इसलिए ये ग्लास अलग से साफ करके पानी पीना चाहिए। जिससे कभी दोष लगने का संभव न रहे। पेट में अंदर जाने के बाद कठोल मिक्स हो तो द्विदल का दोष नहीं लगता। क्योंकि शरीर में तो एक जबरदस्त अणुभट्टी चालू है। दूसरी बात यह है कि अंदर दाखिल होने के साथ ही तुरंत उसका रुपांतर शुरु हो जाता है। इस कारण पेट में कोई दोष नहीं लगता। थाली, कटोरी, हाथ, और मूँह साफ होने चाहिए।

8. **कच्चा दूध** :- कच्चे दूध को उपयोग में लाने का प्रसंग बहुत कम आता है। घर में दूध की तपेली खुल्ली रखने से कभी उसमें कठोल, दाल या मेथी भाजी की पत्ती गिर जाने की संभावना है। इस तरह कच्चे दूध के साथ कठोल का समागम होने पर जीव उत्पन्न होंगे इसलिए कच्चे दूध को बराबर ढक कर संभालकर रखना चाहिए।

* **दही की काल मर्यादा** :- दहीं के लिए साइन्स कहता है कि दूध के साथ जावन डालने के साथ ही उसमें बैक्टेरिया उत्पन्न हो जाते हैं। जैन दर्शन ऐसी मान्यता में सम्मत नहीं है। ऐसा हो तो बेइन्द्रिय जीवों की हिंसा से निर्मित दहीं कोई भी भोजन उपयोग में नहीं ले सकता। दहीं का उपयोग तो भगवान के आनंद कामदेव श्रावकों के समय में भी होता था और आज भी है। विज्ञान जिसको बैक्टेरिया कहता है, उसे हम पौद्गलिक परावर्तन कहते हैं। एक द्रव्य में दूसरा द्रव्य मिक्स होने पर रासायनिक परिवर्तन होता है। ऐसे परिवर्तन के समय दूध के कटोरे में भारी तूफान उठता है, इसको जीव मानने की जरुरत नहीं। यह तूफान जीवकृत नहीं परंतु केमिकलकृत मानना योग्य है।

जैन दर्शन ने दहीं के लिए काल मर्यादा निश्चित की हैं दहीं जमने के बाद दो रात रहे तो अभक्ष्य बन जाता है। इसलिए दहीं जमने के बाद कभी भी दो रात पूरी होने देना नहीं। दो रात पुरी होने के पूर्व ही दहीं खत्म कर देना चाहिए। दो रात पूर्ण होने के पूर्व दहीं बिलाकर छास बना लेंगे तो वह छास फिर दो दिन काम में आ सकती है। अब इस छास को दो रात्रि पूर्ण होने के पहले ही पराठा, पूडी बना देंगे तो वह दो दिन तक चल सकती है। अब ये पूडी या पराठा दो रात्रि पूरे होने के पूर्व ही खाखरा जैसे सेक ले तो अब आगे 15 दिन तक चल सकता है। अब 15 दिन पूरे होने के पहले ही खाखरों का चूरा करके चिवडा बना देने पर वह पुनः 15 दिन तक चलेगा। इस तरह पूरे 36 दिन तक दहीं की मर्यादा को खींच सकते हैं। परंतु आप ऐसा धंधा मत करना।

* **चावल की काल मर्यादा** :- जिस प्रकार दहीं की 16 प्रहर की काल मर्यादा बताई है उसी प्रकार चावल बने तब से आठ प्रहर का समय गिना जाता है। भात को छास में मिला दें तो दूसरे दिन रख सकते हैं। छास में मिला हुआ भात बासी नहीं होता परंतु छास में दाना दाना अलग होना चाहिए और मिलाने के बाद पूरा अंदर डूब होना चाहिए। ऊपर चार अंगुली जितनी छास तैरनी चाहिए। इस तरह छास छींटा हुआ नहीं परंतु छास में डूबा हुआ चावल दूसरे दिन उपयोग में ले सकते हैं। कुछ बहनें छास में भात भीगाने के बदले दूध में जावन डालकर भात मिला देती है। ये टेकनीक बिल्कुल झूठी है। ऐसा मिला हुआ चावल सुबह में नहीं चल सकता।

* **दही उपयोग में लेते समय विशेष सावधानी** :- दहीं, छास, दूध जब गरम करें, तब खास ध्यान रखना कि वह अच्छी तरह से गरम होना चाहिए। अंदर से बुड - बुड आवाज न आये तब तक एकदम कडक रीती से गरम करना चाहिए। कई बहनें मात्र बर्तन गरम करके नीचे उतार लेती है। यह ठीक नहीं है। अंगुली जलें उतना गरम होना चहिए।

For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

II. चलित रस अभक्ष्य :- चलितरस का त्याग यह जैन दर्शन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता हैं हर एक पदार्थ के सलामत रहने की एक टाईम लिमिट होती है। यह लिमिट पूरी होते ही उन पदार्थों का स्वरुप भी बदलने लगता है। पदार्थ का स्वरुप बदलने पर पदार्थ भक्ष्य होने पर भी अभक्ष्य बन जाता है।

*** व्याख्या** :- जिन पदार्थों का रुप रस, गंध, स्पर्श बदल गया हो, सामान्यतः उसमें एक खराब तरह की गंध आती हो, स्वाद बिड गया होता है और वह वस्तु फूल गयी होती है, वे चलित रस कहलाते हैं। उनमें त्रस जीवों की उत्पत्ति होती है। जैसे सडे हुए पदार्थ, बासी पदार्थ, कालातीत पदार्थ, फूलन आई हुई हो ऐसे चलित रस के पदार्थ अभक्ष्य होने से इनका त्याग करना हितकर है।

*** चलितरस के प्रकार**

1. दूसरे ही दिन अभक्ष्य बने रातबासी पदार्थ
2. 15/20/30 दिन के बाद अभक्ष्य बनते पदार्थ
3. 4 /8 मास बाद अभक्ष्य बनते पदार्थ

*** दूसरे ही दिन अभक्ष्य बने रातबासी पदार्थ** :- जिन पदार्थों में पानी का अंश रह जाता है वे सभी पदार्थ बासी कहलाते हैं। पानी का अंश होने के कारण **रसजलार के बेइन्द्रिय जीव** उत्पन्न होते हैं। उनके खाने से जीव हिंसा का दोष लगता है साथ ही स्वास्थ्य भी बिगडता है।

*** रातबासी पदार्थ ***

बाजरी / मक्की / चावल की रोटी, पराठा, रोटली, फलका, भाकरी, पुडला, पुरणपोरी, भजीया, वडा ढोकला, हांडवा,इडली - डोसा, कचोरी, समोसा, दूधपाक, खीर, मलाई, बासुंदी, श्रीखंड, फ्रूटसलाड, दूधी का हलवा, चीकु का हलवा, केरबडी, गुलाब - जामुन, कच्चा मावा, जलेबी, रसमलाई, रसगुल्ला, बंगाली मिठाई, सैका हुआ पापड, पानीवाली चटणी, चावल, खिचडी आदि सब्जी, दाल आदि इडली, डोसा आदि का घोल।

*** बहुत दिन बाद अभक्ष्य बनते पदार्थ** :- जिन पदार्थों को सेककर बनाते हैं, जिन पदार्थों को तलकर बनाते हैं या जिन पदार्थों को चाशनी बनाकर रखते हैं। यह पदार्थ पाक पद्धति के कारण दीर्घ समय तक भी सलामत रह सकते हैं। ऐसे पदार्थों की समय मर्यादा में सीजन के अनुसार परिवर्तन करने में आती है। टाईमलिमिट सीजन के अनुसार ठंडी, गर्मी चौमासे में 30 / 20 / 15 दिन की बताई गई है। ओवरलिमिट हो जाए तो त्याग कर देना चाहिए। समय से पहले भी यदि खराब हो जाए तो त्याग कर देना चाहिए।

*** सीसनल टाईम लिमिट ***

1. **शिशिर (ठंडी)**:- कार्तिक सुद 15 से फाल्गुन सुद 14 तक = टाईम लिमिट 30 दिन
2. **ग्रीष्म (गर्मी)** :- फाल्गुन सुद 15 से आषाढ सुद 14 तक = टाईम लिमिट 20 दिन
3. **वर्षा (चौमासा)** :- आषाढ सुद 15 से कार्तिक सुद 14 तक = टाईम लिमिट 15 दिन

*** बहुत महीनों बाद अभक्ष्य बनते पदार्थ** :- कई पदार्थों का प्रकृतिक स्वरुप ही ऐसा होता है कि वे चार - आठ महीने तक चल सकते हैं। कई पदार्थों को तैयार करने कि पद्धति इतनी जोरदार होती है कि वे पदार्थ लम्बे समय तक चल सकते हैं। जैसे पापड, बडी, खींचिया, आचार आदि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

*** एक्सपायरी डेट कब ? ***

1. कार्तिक सुद 15 से फाल्गुण सुद 14 तक खानेलायक पदार्थ :- भाजीपाला, धनीया, पत्तरवेल के पान, खजूर, खारेक, तिल, खोपरा, बदाम, काजु, चारोली, पीस्ता, किसमिस, अखरोट, खुरमानी आदि सभी प्रकार का सुखा मेवा

2. आषाढ सुद 15 से कार्तिक सुद 14 तक खानेलायक पदार्थ :- बदाम, खोपरा (छाल सहित) जिस दिन फोडते हैं उसी दिन चल सकता है। घी में तलने से 15 दिन तक चल सकती है।

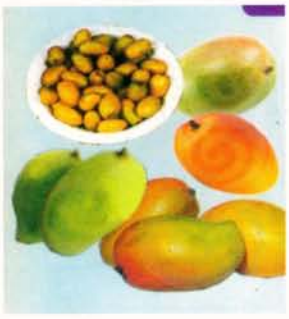

3. कार्तिक सुद 15 से आषाढ सुद 14 के आठ मास तक खानेलायक पदार्थ :- वडी, पापड, खींचिया, सीरावडी

4. आद्रा नक्षत्र से त्याज्य पदार्थ :- कैरी, आम, रायण इत्यादि। केरी, आम आदि चौमासे के बाद काम आ सकते हैं।

III. अपक्व आचार अभक्ष्य :- आजकल मानव की स्वादवृत्ति हद से ज्यादा बढ गई है। पहले मात्र केरी, मिर्ची, कैर या गुंदे का आचार बनता था। परंतु आजकल तो ककडी से लेकर टींडा तक का आचार बनने लगा है। यह बिना खटाई वाले दूसरे दिन और खटाई वाले बिना धूप दिए चौथे दिन अभक्ष्य हो जाते हैं।

*** आचार के प्रकार ***

1. धूप में बनते आचार :- केरी, मिर्ची, आदि को नमक मिलाकर धूप में रख देते हैं धूप से पानी धीरे - धीरे सुख जाता है। 3, 5 या 7 बार कडक धूप देने के बाद वनस्पति जब सूखी बंगडी जैसी होती है तो उसे मसाला और तेल में डूबोकर बनाया आचार 1 वर्ष पर्यंत चल सकता है।

2. चूलहे पर बनते आचार :- मुरब्बा आदि कई आचार चूल्हे पर बनाए जाते हैं। इसमें शक्कर की तीन तार की चासनी होने तक केरी के टुकडे डाल पकाया जाता है।

3. खट्टे रस में बनते आचार :- केरी, मिर्च, नींब आदि को खट्टे रस में तीन दिन भिगोकर फिर बाहर निकालकर तीन दिन धूप में सूखाकर एकदम कडक करने के बाद तेल में मसाला डालकर बनाया जाता है।

*** आचार सेवन से होनेवाली हिंसा** :-

* अभक्ष्य आचार में अनेक त्रस जीव (बैक्टेरिया) उत्पन्न होते है और मरते हैं। त्रस जीवों की हिंसा महादोष है।

* तेज धूप दिखाए बिना बनाए गए आचार में बेइन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं।

* जूठे हाथ या गीले हाथों से स्पर्श करने पर पंचेन्द्रिय समूर्च्छिम जीव उत्पन्न होते हैं।

* सही पद्धति बिना बनाया हुआ कच्चा आचार बोल अथाणा कहा जाता हैं । बोल अथाणां अर्थात् सैंकडों जीवों का विराट जनरल वार्ड समझदार मानव को अनेक त्रस जीवों की हिंसा से बचने के लिए जीवनभर आचार का त्याग करना लाभदायी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

IV. रात्री भोजन :- सूर्यास्त के पश्चात् दूसरे दिन सूर्योदय तक चार प्रहर की रात्रि मानी जाती है। उस समय किया गया भोजन रात्री भोजन कहलाता है। **भगवान महावीर** ने कहा है :-

''चउव्विहे वि माहोर राइ भोयणं वज्जणा''

अर्थात् अन्न पान, खादिम और स्वादिम यह चार प्रकार के भोजन रात्रि के समय नहीं करना चाहिए।

*** रात्री भोजन त्याग के प्रबल कारण ***

* सूर्यास्त के पश्चात् अनेक सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति होती है। उन्हें विद्युत प्रकाश में भी देखे नहीं जा सकता। ऐसे जीव भोजन में मिलकर नष्ट हो जाते हैं।

* हमारा नाभिकमल सूर्योदय के साथ विकसित होता है, उसकी क्रियाशक्ति गतिशील होती है और सूर्य की रोशनी के अभाव में वह मुरझा जाता है तथा पाचन तंत्र भी कमजोर पड जाता है। अतः स्वास्थ्य और शारीरिक दृष्टि से रात्रीभोजन त्याज्य हैं

* **योगशास्त्र** के तीसरे अध्याय में रात्रीभोजन के दोषों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि रात के समय निरंकुश संचार करने वाले प्रेत - पिशाच आदि अन्न जूठा कर देते हैं, इसलिए सूर्यास्त के पश्चात् भोजन नही करना चाहिए। रात्रि में घोर अंधकार होने से अवरुद्ध शक्तिवाले नेत्रों से भोजन में गिरते हुए जीव दिखाई नहीं देते, अतः रात के समय भोजन नहीं करना चाहिए। रात्रिभोजन करने से होने वाले दोषों का वर्णन करते हुए कहा है कि जो दिन - रात खाता रहता है, वह सचमुच स्पष्ट रुप से सींग और पूंछ रहित पशु ही है। जो लोग दिन के बदले रात को ही खाते हैं, वे मूर्ख मनुष्य सचमुच हीरे को छोडकर कांच को ग्रहण करते हैं। दिन के विद्यमान होते हुए भी जो अपने कल्याण की इच्छा से रात में भोजन करते हैं वे पानी के तालाब (उपजाऊ भूमि) को छोडकर ऊसर भूमि में बीज बोने जैसा काम करते हैं। अर्थात् मूर्खतापूर्ण काम करते हैं।

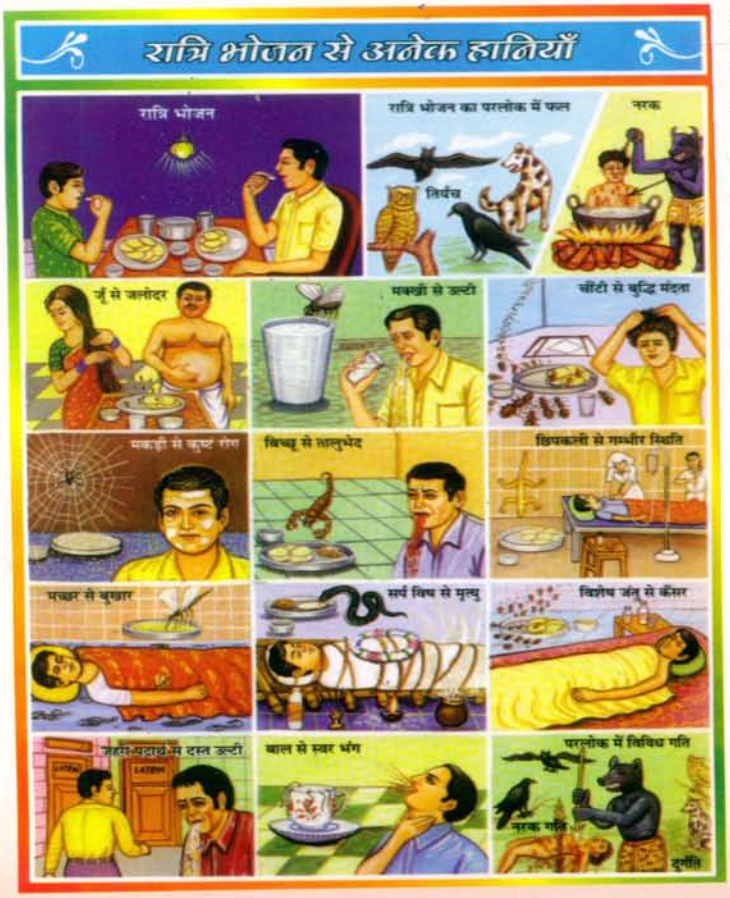

जो रात्रि में भोजन करता है, वह अगले जन्म में उल्लू, कौआ, बिल्ली, गिद्ध, शंबर, सूअर, सर्प, बिच्छु, गोह आदि की निकृष्ट योनि में जन्म ग्रहण करता है।

* रात को उडनेवाले मच्छर आदि जीव भोजन में मिल जाने से हिंसा होती है।

* रात्री भोजन से स्वास्थ्य बिडता है, अजीर्ण होता है, काम वासना जागृत होती है, प्रमाद व आलस्य बढता है, प्रातः उठने का मन नहीं होता, रोग होते हैं।

* विषैले जंतु की लार भोजन में आए तो मृत्यु हो जाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* रात्री भोजन के कारण जिस आयुष्य का बंध होता है वह तिर्यंचगति या नरक गति का होता है।
* रात्री भोजन करने पर धार्मिक क्रिया, प्रतिक्रमण, शुभध्यानादि नहीं हो सकते।
* नरक के चार द्वारों में रात्रीभोजन प्रथमद्वार है। इसलिए यह त्यागने योग्य ही है।

* चार महाविगइ त्याग *

विगइ अर्थात् जिसके भक्षण से जीव का स्वभाव विकृत हो जाता हैं उसे विगई कहते हैं। जैन दर्शन में विगइ के दो भाग बताए गए है।

* विगई *

1. **भक्ष्य** :- दूध, दही, घी, तेल, कडा - तला हुआ, गुड एवं शक्कर
2. **अभक्ष्य** (महाविगइ) :- मांस, मदिरा, शहद, मक्खन

भगवान महावीर ने **उत्तराध्ययन सूत्र** में कहा है कि :- **" रसा पगामं न निसेविअव्वा"**

अर्थात् रस याने विगइ का अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना, क्योंकि विगइ चित्त को उत्तेजित करती है और पाप कर्म करवाती है। भक्ष्य विगइ का भक्षण भी अल्प होना चाहिए तो अभक्ष्य विगइ का त्याग भी निश्चित है। जैन दर्शन में कहा गया है।

" मधे मांसे मथुनि च, नवनीते चतुर्थ के। उत्पयन्ते विलीयन्ते, सुसूक्ष्मा जन्तुराशयः।।"

अर्थात् शराब, मांस, मधु और मक्खन इन चारों पदार्थों में अति सूक्ष्म जीव सतत उत्पन्न होते हैं और मरते हैं।

V. मांस त्याग :-

* मांस के प्रकार *

1. **जलचर का मांस** :- पानी में होनेवाले जीव। मच्छी, केकडा, कछुआं इत्यादि का मांस।
2. **स्थलचर का मांस** :- धरती पर चलने वाले जीव। गाय, भैंस, भेड, बकरा, सांप, नेऊला इत्यादि का मांस।
3. **खेचर का मांस** :- आकाश में उडनेवाले जीव। कबूतर, मुर्गी, पोपट, चिडियाँ इत्यादि का मांस और अंडा।
4. **विकलेन्द्रिय का मांस** :- महीन जीवजंतु। केचुआ, चींटी, मकोडा, तीडघोडा इत्यादि का मांस।

उपरोक्त प्रकार में से कोई भी प्रकार के जीव का मांस खाना मांसाहार कहलाता है जो महापाप स्वरुप है। चरबी, जिलेटीन आदि भी मांसाहार ही है। फलित - अफलित दोनों प्रकार के अंडे भी मांसाहार ही है, शाकाहारी अंडे जैसा कुछ नहीं है। अफलित अंडा भी सजीव पंचेन्द्रिय भ्रूण ही है। पंचेन्द्रिय प्राणियों का वध बिना मांस तैयार नहीं हो सकता। बल्कि उसमें प्रतिपल समूर्च्छिम जीव, अनंत निगोद के एकेन्द्रिय जीव, सूक्ष्म कीट उत्पन्न होते हैं। अतः मांस सर्वथा अभक्ष्य माना गया है।

* मांसाहार से होने वाली हानियाँ *

* मांस भक्षण से तामसी वृत्ति, कठोरता, क्रूरता आती है।
* मांसाहार से कैंसर, रक्तपित्त, वातपित्त, पथरी आदि रोग उत्पन्न होते हैं।
* मांस में नाइट्रोजेन आवश्यकता से अधिक होने से मनुष्य मोटा हो जाता है। शरीर में अधिक उष्णता होने से क्रोधी, कामी, तामसी बन जाता है। जिससे छोटी - छोटी बातों में खूना खराबा, बलात्कार आदि के प्रसंग बढते जाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* मांस शरीर का मृत भाग है, शरीर से अलग होती ही वह सडने लगता है। तत्काल उसमें उसी वर्ण के बारीक जंतु (बैक्टेरिया) उत्पन्न हो जाते हैं तथा उसमें अनंत निगोद (फंगस) के जीव उत्पन्न हो जाते हैं।

* मांसाहारी मनुष्य क्षणिक सुख के लिए परलोक के, नरक - निगोद की अनंत दुःख वेदना भोगने वाला बनता है।

* मांस दिखने में दुर्गन्धयुक्त, मलिन और रक्त के जमे हुए मलरुप होने से सर्वथा त्याज्य पदार्थ है।

VI. **मदिरा त्याग** :- मदिरा अर्थात् मद्य, सुरा, कादम्बरी, विस्की, दारु, शराब, बीयर आदि। इन तमाम प्रकार की मदिरा में उसी रंग के बेइन्द्रिय और सूक्ष्म रसज त्रस जीव सतत उत्पन्न होते हैं और मरते हैं। अनेक वर्षों तक अंगूर वगैरह को सडाते हैं। उसमें कीडें उत्पन्न होते हैं। कीडों को मसलकर उसका रस निकाला जाता है जो महाहिंसा का कार्य है। दुर्गन्ध के साथ नए त्रस जीव भी उत्पन्न होते हैं। इन सब पापों के कारण मदिरा की गणना अभक्ष्य में होती है।

* **मदिरापन से होनेवाली हानियाँ** :- **श्री हेमचन्दाचार्य** ने **योगशास्त्र** में मदिरापन की हानियों का वर्णन किया है।

* मदिरा पान करनेवाले की बुद्धि उससे दूर चली जाती है।

* मदिरापान से पराधीन चित्तवाला मनुष्य अपना विवेक, संयम, ज्ञान, सत्य, शौर्य, दया और क्षमा का हनन कर देता है।

* मद्यपान से कांती, कीर्ति, बुद्धि लक्ष्मी का नाश हो जाता है।

* मद्यपान शरीर को शिथील, इन्द्रियों को निर्बल बनाता है और मुर्च्छा लाता है।

* मदिरा से चंचल चित्तवाला व्यक्ति स्व पर की पहचान में असमर्थ होता है।

* शराबी अपने परिवार के भरण पोषण के लिए उचित व्यय नही कर पाता। उसका अधिक खर्च मदिरा पर हो जाता है।

* मद्यपान करने वालो का मस्तिष्क अनियंत्रि होने के कारण मुनष्य अनाचारी बन जाता है।

VII. **मध त्याग** :- मध अर्थात् शहद। भमरी, लाल भमरीऔर मधुमक्खी - यह तीनों जंतु अपनी लार से मध बनाते हैं। मधुमक्खियां पुष्पों पर बैठकर फूलों का रस चूसती है। यह रस उनके शरीर में पच जाता है। रस पचने के बाद मधुमक्खियों के शरीर में से त्यागी हुई विष्ठा का दूसरा नाम शहद है। यह विष्ठा मधुमक्खियां कभी लार स्वरुप में मुख से बहाती है।

* **मध बनाने कि हिंसक प्रक्रिया** :- मधुमक्खी में रहा हुआ शहद इतना मीठा और चिकना होता है कि दूसरे असंख्य कीडे उसमें पैदा हो जाते हैं। शहद पीने के लिए जब मधपूडे को गिराया जाता है और जब उसे पूरा निचोडकर शहद छानने में आता है । उसके साथ - साथ अंदर पडे हुए सैंकडों सफद कीडे और मधुमक्खियों के अंडे और छोटे छोटे बच्चे भी निचोड दिए जाते हैं। इस हिंसा व विकृति के कारण मध अभक्ष्य माना गया है।

* **मध भक्षण से अलाभ** :- * योगशास्त्र में **कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य** ने पूछा है '' अरे ! मानव के मुंह से निकली लार को कोई चाटने के लिए तैयार नहीं होता तो मधुमक्खी जैसे क्षुद्र जंतु की लार चाटने कौन तैयार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होगा? अर्थात् मधु हिंसक और तुच्छ पदार्थ होने से निसंदेह त्याज्य है।

* अन्य शास्त्रों में भी कहा है कि '' सात ग्रामों को अग्नि से जलाने जितना पाप शहद की एक बूंद के भक्षण से होता है''

* शहद के क्षणिक मिठास के लोभ में पडकर उससे जनित विकार पूर्ण भयंकर अशुभ परिणामों के कारण चिरकाल तक नरक की वेदना का फल भोगना पडता है।

VIII. मक्खन त्याग :- मक्खन को छाछ से बाहर निकालते ही अनेक सूक्ष्म व उसी वर्ण के त्रस जीव पैदा हो जाते हैं। उनकी हिंसा का कारण तथा अप्रितिकारी होने से मक्खन अभक्ष्य माना गया है। मक्खन तीन प्रकार का होता है:-

1. गाय, भैंस के दूध का मक्खन
2. भेड, बकरी के दूध का मक्खन
3. डेरी का मिक्स मक्खन

मक्खन को खाते और गरम करते समय जीवों की हिंसा होती है। ऐसी हिंसा से बचने के लिए छास में से मक्खन को अलग करते वक्त साथ में थोड़ी छास भी उठा लेनी चाहिए। छास के साथ रखे हुए मक्खन में छास की खटाई के कारण जीवों की उत्पत्ति की संभावना नहीं रहती। दो दिन के दही को निलोने - मथने से वह चलित रस हो जाता है। अतः अनेक त्रस जीवों का नाश होता है।

*** मक्खन भक्षण से होनी वाली हानियां** :-

* मक्खन कामवासना विकार को उत्तेजित करनेवाला होता है। मन में कुविचार उत्पन्न करता है और चारित्र के लिए हानिकारक है।
* मक्खन थोडे समय में विकृत हो जाता है और वमन, बवासीर, कोढ तथा मेद उत्पन्न करता है।
* सूक्ष्म, त्रस जीवों की हिंसा के कारण मक्खन का सेवन दुर्गति में ले जानेवाला बनता है।

IX. 32 अनंतकाय *

वनस्पति के दो प्रकार है :-

1. **प्रत्येक वनस्पतिकाय** :- जिसके एक शरीर में एक जीव होते हैं। फल, फूल, छाल, काष्ठ, मूल, पत्ता, बीज में अलग अलग जीव होता है।
2. **साधारण वनस्पतिकाय** :- जिसके एक शरीर में अनंत जीव होते हैं।

अनंतकाय जीव के लक्षण :- '' **गुढ सिर सन्धि पव्वं समभगमहीरुगं च धिन्नरुहं साहारणं शरीरम्**''

* संधिया दिखती नहीं
* नसे दिखती नहीं
* गांठ गुप्त हो
* जिसे पूरा तोडने पर ठीक तरह टूट जाए और पीटने पर बराबर चूरा हो जाए।
* जिसमें रेशे न हो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* जिसे काटकर उगाने पर फिर से उग जाते हैं।

इन लक्षण वाले साधारण वनस्पतिकाय के एक शरीर में अनंतजीव होते हैं। जैसे आलू, प्याज, गाजर, शकरकंद हरी अदरक आदि । एक आलू में असंख्य शरीर होते हैं और प्रत्येक शरीर में अनंत जीव होते हैं। इस प्रकार कंदमूल के भक्षण में अनंत जीवों का नाश होने से इन्हें अभक्ष्य माना गया है।

* वनस्पतिकाय *

1. **प्रत्येक वनस्पतिकाय** :- एक शरीर में एक जीव
2. **साधारण वनस्पतिकाय** :- एक शरीर में अनंत जीव :-

a. साग :- भूमिकंद, आलू, गाजर, मूली, प्याज, लहसून, वंश - करेला, सूरण, कच्ची ईमली

b. भाजी :- पालक की भाजी, वत्थुआ की भाजी, थेग की भाजी, हरी मोथ, किसलय

c. पत्रबेल :- अमृतबेल, विराणीबेल, गडूचीबेल, सुक्करबेल, लवणबेल, शतावरीबेल, गिरिकर्णिकाबेल

d. औषध :- लवणक, कुंवारपाठा, हरीहल्दी, हरा अदरक, कचूरी

e. जंगली वनस्पतियां :- थोर, वज्रकंद, लोढक, खरसईयो, खिलोडीकंद, मशरुम

* अनंतकाय भक्षण से होनेवाली हानियां *

* अनंत जीवों के नाश से परभव में जिव्हा मिलना दुर्लभ है। एकेन्द्रिय जाति सुलभता से मिलती है जहां पर असंख्य या अनंत उत्सर्पिणी - अवसर्पिणी काल व्यतीन करना पडता है।

* जिन्हें खाने से बुद्धि विकारी, तामसी और जड बनती है। धर्म विरुद्ध आचरण और विचार होता है। अतः ऐसे अनंत जीवों के समूह रूप अनंतकाय का सेवन सर्वथा त्याग कर देना ही श्रेयस्कर है।

* 4 फल *

X. **बहुबीज अभक्ष्य** :- जैन दर्शन में वनस्पति के प्रत्येक और साधारण जैसे दूसरे दो भेद बताए गए है।

* **बहुबीज वनस्पति** :- जिन सब्जियों और फलों में दो बीजों के बीच अंतर न हो व एक दूसरे से सटे हो। जिनमें गुदा कम और बीज अधिक, जिन फलों और सब्जियों में बीज ठसाठस भरे हो, उन्हें बहुबीज समझना चाहिए। जैसे - खसखस, अंजीर, राजगिरा, कोठीवडा, पंपोटा, टिंबरु आदि।

* **अल्प बीज वनस्पति** :- जिन फलों में एक बीज के बाद एक परदा हो फिर बीज हो । इस तरह की व्यवस्था हो अथवा बीज के उपर पतली छाल की परत हो उसे बहुबीज नहीं कहते। जैसे काकडी, खरबूजा, पपीता आदि।

बहुबीज के अंदर परत नहीं होने के कारण अंदर जीव पडना संभव है। बहुबीज में विपुल सूक्ष्म बीज होते हैं और प्रत्येक बीज में अलग अलग जीव है। अतः उनकी हिंसा होने से बहुबीज अभक्ष्य कहा है और उसका त्याग करना उत्तम है।

*** बहुबीज भक्षण से हानि :-**

* बहुबीज वाली वस्तुएं पित्तवर्धक है। इसलिए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आरोग्य की दृष्टि से त्याज्य है।

XI. बैंगन अभक्ष्य :- सब प्रकार के बैंगन अभक्ष्य है। इसमें बहुत सारे छोटे छोटे बीज होते हैं तथा उसके डठल में सूक्ष्म त्रस जीव भी होते हैं। बैंगन कंदमूल नहीं है फिर भी मन और तन दोनों को बिगाडने वाला होने से भगवान ने उसके भक्षण का निषेध किया है। बैंगन को सुखाकर खाना भी निषेध है। यह हृदय को धृष्ट करता है।

*** बैंगन भक्षण से होनेवाली हानियां :-**

* बैंगन खाने से तामसभाव जागृत होता है। उन्माद बढता है। धर्मसंग्रह में कहा गया है - प्रमाद और निद्रा को बढाता है और विकार पैदा करता है।

* बैंगन खाने से शरीर में कफ और पित्त बढता है।

* अधिक बैंगन खानेवाले के लिए चार - चार दिन ज्वर और क्षय रोग सुलभ है।

* ईश्वर स्मरण में बाधक होने से पुराणों में भी इसके भक्षण का निषेक किया गया है।

XII. तुच्छ फल अभक्ष्य :- जिसमें खाने योग्य पदार्थ कम और फेंकने योग्य पदार्थ ज्यादा हो। जिसके खाने से न तो तृप्ति होती है और न शक्ति प्राप्त होती है। बहुत सारे फल खाने के बाद भी पेट नहीं भरता हो। जैसे बेर, ताडफल, पीलु, पीचु, पके गुंदे, सीताफल, जामुन आदि।

इन तुच्छफलों को खाने के बाद हम उनकी गुठली या बीज बाहर फेंक देते हैं। झूठे होने से इसमें सतत समुर्च्छिम जीव उत्पन्न होते रहते हैं। बीज इधर - उधर फेंक देने से उनकी मिठास के कारण अनेक चींटियां और जीव जंतु आते हैं। पैरों के नीचे आने से उन जीवों की हिंसा भी होती है। इस तरह बहुत विराधना होती है। अतः तुच्छ फलों का भक्षण त्याग करना चाहिए।

XIII. अनजान फल अभक्ष्य :- यह फल या फूल अभक्ष्य है जिनके नाम जाति, गुण - दोष से हम अनजान हैं उनके गुणों या दोषों से अज्ञात हम उनके भक्षण से रोगग्रस्त या मरण को भी प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए उनका त्याग युक्तियुक्त है। उदाहरण :- हितैषी, महान उपकारी गुरु महाराज ने वंकचूल चोर को अज्ञात फल के त्याग का नियम करवाया था। उसने प्रबल भूख लगने पर भी इस नियम का दृढता से पालन किया। फलतः उनके प्राण बच गए और उसके अन्य चोर साथी अज्ञात फल के भक्षण के कारण विष के वशीभूत हो मरण धर्म को प्राप्त हुए। अभक्ष्य त्याग के महिमा को पारावार नही है। इससे वंकचूल ने आत्मरक्षा कर और उत्तरोत्तर नियम के पालन द्वारा जीवन सफल किया। मृत्यु पश्चात् वंकचूल नियम के प्रभाव से 12वें देवलोक में गये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* पांच गुलर फल :- पांच प्रकार के उदम्बर फल (टेटा) का त्याग :-

XIV. वड का फल **XV**. पींपल का फल **XVI**. पीलंखन का फल **XVII**. उदुंबर का फल **XVIII**. कलुंबर का फल

इन पांचों वृक्षों के फल उंबर अथवा गूलर कहलाते हैं। इनमें राई के दानों से भी बारीक अनगिनत बीज होते हैं। एक दम बारीक असंख्य बीजों के अंदर बहुत सारे बहुत ही सूक्ष्म मच्छर जैसे त्रस जीव होते हैं। जिन्हें नजर से देखना भी मुश्किल है। ऐसे सूक्ष्म जंतुओं की हिंसा से बचने के लिए ऐसी तुच्छ हिंसक चीजों का त्याग कर देना चाहिए।

* पांच गूलर फलों के भक्षण से हानियां *

* यह जीवन यापन के लिए अनुपयोगी और रोगोत्पादक है। इन्हें खाने से असंख्य सूक्ष्म जीवों का नाश होता है।
* लौकिक शास्त्र में कहा है कि उदम्बर फल में विद्यमान कोई जीव खाने वाले के मस्तिष्क में प्रवेश कर जाय तो अकाल मृत्यु होती है।
* प्राणों का त्याग करना अच्छा है, परंतु अनेक त्रस जीवों का तथा बहु बीजों से भरे फल का भक्षण करना उचित नहीं है।

* चार तुच्छ चीजें *

XIX. बर्फ (हिम) अभक्ष्य :- छाने, अनछाने पानी को जमाकर या फ्रीज में रखकर बर्फ जमाया जाता है।

जैन दर्शन ने पानी की एक बूंद में असंख्य जीव का अस्तित्व देखा है। एक - एक जीव को यदि सरसों का रुप दिया जाये तो पूरा विश्व भर जाएगा परंतु जलबूंद के जीव समाप्त नहीं होंगे। ऐसी असंख्य बूदों को इकट्ठा करते हैं। तब एक आईस क्यूब बनता हैं। पानी जब झीरो डिग्री पर पहुंचता है तब बर्फ में रुपान्तर होता है। इस तरह रुपांतरित जल में असंख्य बेइन्द्रिय जीव उत्पन्न हो जाते हैं। विष्ठा में खदबद करते कीडे बर्फ के अंदर सफेद अत्यंत बारीक जैसे असंख्य कीडे भी देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार की हिंसा और अनावश्यक उपयोग के कारण एवं शरीर के लिए हानिकारक होने के कारण ज्ञानियों ने बर्फ को अभक्ष्य कहा है।

* बर्फ भक्षण से होने वाली हानियाँ *

* इसके भक्षण से मंदाग्नि अजीर्ण आदि रोगों की उत्पत्ति होती है।
* यह आरोग्य का दुश्मन है, फ्रीज के पेय पदार्थ भी हानिकारक होते हैं।
* बर्फ का उपयोग अन्य खाद्य पदार्थों में करने से, वह भी अभक्ष्य बन जाते हैं।

* अभक्ष्य आईस्क्रीम से बचें *

आईस्क्रीम बरफ और नमक के संयोग से सांचे में यंत्र द्वारा या मटके में हाथ से घुमाकर बनाई जाती है। जिसमें असंख्य पानी और नमक के जीव नष्ट होते हैं।

* जिलेटीन अर्थात् हड्डी का पावडर का उपयोग किया जाता है।

* केक तथा अंडे का रस मिलाया जाता है।

* स्वाद हेतु विविध रासायनिक केमिकल्य मिश्रित किये जाते हैं।

* आईस्क्रीम की बरनी (डिब्बी) साफ न हो तो बासी दूध के रस में अनेक बैक्टेरिया जन्तु और त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं।

* अभक्ष्य ठंडे पेय पदार्थ *

शरबत (कोकाकोला, थम्सअप आदि) की बोतलें जाति जाति के उंच नीच लोग और रोगी लोगों द्वारा मुँह से लगी होने के कारण झूठी होती है। उन्हें ठीक प्रकार से साफ किए बिना नया पेय भर दिया जाता है, जिससे इनमें समूच्छिर्म जीव, बासी, हाने के कारण और अधिक समय पडे रहने के कारण चलितरस बनने से रसज त्रसजीव पैदा होते है। अत्यंत भारी हिंसा के साथ स्वास्थय की हानि के कारण यह पेय पदार्थ सर्वथा त्याज्य है।

मानव की किडनी फेल करनेवाले ठंडे पेय पदार्थ बॉटल में पैक करके अलग - अलग नाम से बिकते हैं। वे सब अभक्ष्य है। शक्कर, पानी और फ्रुट के रस मिलाने के बाद मात्र एक रात बीतने पर ये पदार्थ अभक्ष्य बन जाते हैं। बिसलेरी की वॉटर बॉटल भी एक रात बीतने के बाद अपेय बन जाती है। कोल्ड्रीन्क्स और बिसलेरी का पानी कभी छनता नहीं।

* आईसक्रीम और ठण्डे पेय पदार्थों से होनेवाले नुकसान :-

* जो व्यक्ति ठंडे पेय पदार्थ, आईस्क्रीम, फ्रीज का ठंडा पानी, आईस्केन्डी और अत्यंत ठंडे पदार्थ पेट में ड़ालते हैं, वे पेट के अंदर की प्रदिप्त जठराग्नि (पाचक शक्ति) को समाप्त करते हैं । शरीर की ऊर्जा स्टेशन मंद पडने के साथ ही चारों तरफ से रोग धावा बोलनें लगेंगे। सर्वप्रथम व्यक्ति को भूख नहीं लगती, फिर नींद नहीं आती, भूख और नींद जाने के बाद कुछ भी खाने का रहता नहीं। बाकी का सब स्वयं चला जाता है। महारोग, राजरोग बिना बुलाये ही आ धमकते हैं।

* आइस्क्रीम शरीर के लिए हानिकारक है। गले का टांसिल, स्वरनली, अन्ननली में सूजन आ जाती है। कफ से सर्दी, खांसी और ज्वर हो जाता है।

* बोतलों में भरे शरबत, एसेन्स वाले डिंक्स आदि पीने से स्वास्थ्य बिगडता है, रोग के कीटाणुओं का चेप लेगता है, आंतडियां अथवा अन्ननली में सडन, अल्सर और केन्सर जैसे रोग भी उत्पन्न होने में देर नहीं लगती।

* भारत तथा विदेशों में मिलने वाले अनेक रंगों की तथा फलों के कृत्रिम स्वाद वाली आइस्क्रीम बनाने में जिन रसायनों को काम में लिया जाता हैं, वे शरीर के अनुकूल नहीं होते अपितु प्रतिकूल होते हैं।

www.jainelibrary.org

* फलों का रस जिसे सोफ्ट ड्रिंक्स कहते हैं, उसमें सेवफल रस, संतरा रस और आम रस आदि में सेव, संतरा या आमफल का अंश भी नहीं रहता है, मात्र शक्कर, पानी, फ्लेवर और रसायन होते हैं। अतः सभी को सावधान होकर आरोग्य के खतरों से बचना चाहिए।

* आईस्क्रीम में प्रयोग किये जानेवाले केमिकल्स और उनके दुष्प्रभाव *

1. **बेंजील एसीटेट** :- आइस्क्रीम में स्ट्रोबेरी नामक फल का स्वाद आता है। वह आइस्क्रीम में मिलाए गए बेंजील एसीटेट से आता है। यह रसायन नाईट्रेट जैसे तेज तेजाब के साल्वेंट के रुप में प्रयुक्त होता हैं, तेज होने के कारण यह पेट पर कुप्रभाव डालता है। हमें वे पदार्थ रुचिकर लगते हैं जो स्वादिष्ट हों, किंतु उनकी पृष्ठ भूमि में कितनी दुःख और पीडाएं निहित हैं, यह जानने के लिए रसायन शास्त्र के रहस्य प्रगट करें तो विदित होगा कि आईस्क्रीम में भयानक पदार्थों का उपयोग होता है।

2. **एमील एसीटेट** :- आइस्क्रीम में केले के स्वाद लाने के लिए इसे प्रयुक्त किया जाता है। वास्तविकता यह है कि हमारे घरों की दीवारों पर लगने वाले आयल पेंट को पतला करने के लिए इसका उपयोग होता है। यहीं पदार्थ आइस्क्रीम बनाने के काम आता है। इसका पाचक रस पर गंभीर प्रभाव पडता है।

3. **डिथील ग्लुकोल** :- अनेक आइस्कीम वाले यह दावा करते हैं कि वे उसमें अंडा डालते हैं। इससे प्रत्येक अंडे में पंचेन्द्रिय गर्भज जीव की हत्या होती है। अंडे से होनेवाली गंभीर हानियों का वर्णन पहले किया जा चुका है। अंडे की महंगाई के कारण आइस्क्रीम में उसके स्थान पर डिथील ग्लुकोल का मिश्रण किया जाता है, जो अण्डे के स्वाद का आभास पूरा कर देता हैं केक में कुछ लोग अण्डे का और कुछ लोग डिथील ग्लुकोल का उपयोग करते हैं। किसी भी पक्के रंग को दूर करने में यह पदार्थ काम में आता है। इसलिए यह रक्त के लाल कणों पर बहुत बुरा प्रभाव डालता है और स्वास्थ्य कमजोर करता है।

4. **एलडी हाइडसी 17** :- आइस्क्रीम में चेरी नामक फल का स्वाद इस रसायन के मिश्रण का परिणाम है। यह आंतडियों और पेट में फोडा फुन्सी करने वाला है। प्लास्टिक और रबड़ में इसका प्रयोग होता है।

5. **इथील एसीटेट** :- इसका उद्देश्य अनानास का स्वाद उत्पन्न करना है। कारखानों में इसका उपयोग चमडे और कपडों को साफ करने के लिए होता है। इस उद्योग में काम करने वाले व्यक्ति जबसे इथीलएसीटेट की वाष्प के संबंध हुए हैं, तब से उनके फेफडों, हृदय और विशेषतः लीवर की हानि हुई है। अनानास के स्वाद शरबत और अन्य अनेक पदार्थ खाने पीने के काम में आते है जिनके साथ इथील एसीटेट को उदर में स्थान देकर हम अपने आरोग्य को जानबूझकर संकट में डालते हैं।

6. **बुट्रालहेड** :- आइस्क्रीम में महंगे भाव के सूके मेवों का उपयोंग कोई उत्पादक करें तो बिक्री बढ नहीं सकती। अतः काजू, बादाम या पिस्ते की एकाध कतरी डालकर बाद में इनका स्वाद उत्पन्न करने के लिए **बुट्रालहेड** नामक रसायन को मिला देते हैं। रबर और सिमेन्ट में इसका उपयोग होता है। इससे स्वास्थ्य को हानि पहुंचती है।

7. **पिपरोहाल** :- सफेद रंग का वेनीला आइस्क्रीम में पीपरोहाल का उपयोग होता है। यह एक धीमी गति का जहर (स्लो पॉईसन) है। यह रसायन अनेक जन्तुओं का नाशक है। यह पेट में जाते ही आंत को नुकसान पहुंचाता है। चेरी की आइस्क्रीम, स्ट्रोबेरी ग्लेसचेरीझ में ई-202 नाम का रसायन होता है। जो कोचीनील है । जो ईल्ली और कॉकरोच से बनती है । '' वेजीटेरियन'' नाम देकर फसाया जाता है। इसलिए देश - प्रदेश में, विमान में, होटल - रेस्टॉरेन्ट में खाना टालना चाहिए।

* फास्टफुड, टीनफुड, फोसेस्डफुड *

* जैन दर्शन की मान्यतानुसार कोई भी बाजारु पदार्थ भक्ष्य नही बन सकता क्योंकि जैन दर्शन ने तैयार किये गये खाद्य पदार्थों की जो समयसीमा दी है वह 15, 20, और 30 दिन की ही है। तमाम खाद्य पदार्थों की सीमा समाप्त होने के बाद वे तुरन्त अभक्ष्य बन जाते हैं।

* आहारशुद्धि के नियमानुसार तमाम फास्टफुड, टीनफुड, कोल्ड्रींक्स, बिसलेरी आदि खाद्य पेय पदार्थ एकस्पायर्ड डेट वाले होते हैं। प्रभु ने जो बाते बताई हैं वह केवलज्ञान के प्रकाश से बताई जो कभी असत्य हो ही नहीं सकती।

* खाद्य पदार्थ को लंबे समय तक रखने के लिए केमिकल, कन्टेईनर, कोल्डस्टोरेज और फ्रीज विज्ञान ने खोज लिया। हर एक के घर में ये सभी चीजें आने के बाद अब रह - रहकर विज्ञान जोर - जोर से शोर कर रहा है कि ये फास्टफुट, टीनफुड खाना नहीं, इसको खाने से रोग होता है।

* डब्बा पेक (टिन्ड) वेजीटेबल, फल और डब्बे में पेक बियर, डब्बे के अंदर का रसायनवाला आवरण आदि पुरुष के वीर्य को दूषित करता है। **बिस्फेनोल** ए नाम का रसायन फूडकेन्स के अंदर के आवरण में उपयोग होता है। अंदर की धातु खराब न हों इसलिए ये रासायनिक आवरण चढाते हैं परंतु ये रसायन खाद्य पदार्थों में जाता है और वह खाने से उसमें रहा हुआ ओस्ट्रोजेन नाम का तत्त्व पुरुषों में नपुंसकता लाता है।

* चाय, कॉफी, दारु, ठंडापानी तथा बाजार में मिलनेवाले फास्टफुड और प्रोसेस्ड फुड, चॉकलेट वगैरह जानलेवा रोगों के लिए जवाबदार है।

* टीन फुड को फ्रेश रखने के लिए सी **बोटुलिजम** नामक सूक्ष्म जीवाणु पैदा करते है। जीवाणु सिर्फ तीन चार माइक्रोमीटर होते है। (एक माईक्रोमीटर यानी मीटर का दस लाखवाँ भाग) वे गहरी जमीन में रहते हैं। अनेक सजीवों के लिए प्राणवायु प्राणदाता है। जबकि सी बोटुलिजम के लिए ऐसा नहीं। इस खासियत के कारण कुदरती संयोग वह ही खतरा रुप नहीं बनता क्योंकि हवा में उसका अधिक टिकना कठीन हैं परंतु हवा चुस्त डब्बे में कुदरती संयम नहीं होते। खुराक बचाने के लिए उत्पादक उसमें शून्यावकाश उत्पन्न करते हैं। इसलिए खुराक में प्राणवायु के अभाव के बीच उसे मौका मिलता है। जीवाणुओं की चयापचय की क्रिया जोर पकडती है। बोटुलिन्स नाम का जहर मुक्त करता है। चयापचय से हलाहल जहर खुराक में मिलता है। खुराक का यह डब्बा जो ग्राहक खरीदें उसका 90 प्रतिशत तो आ बना समझो । प्रथम हमला पक्षाघात (लकवा) का होता है। क्योंकि शरीर में प्रवेश किया बोटुलिजम जहर सबसे पहले ज्ञानतंतु का संचार बंद कर देता हैं फेफडे और हृदय की गति को नियंत्रित करनेवाला भी ज्ञानतंत्र है। इसलिए मौत दोनों ओर से टीनफुड के शौकीनों को घेर लेती है।

* जैन दर्शन रेड सिग्नल बताता है कि पानी के अंशवाली हर एक बासी वस्तु में रात्री पसार होते ही नये - नये असंख्य त्रसजंतु - बैक्टेरिया उत्पन्न होते हैं। यह जहरीले जंतुओं का रस फूड को जहरीला बनाता है। जिसको खाने से दस्त उल्टी अथवा मृत्यु भी हो जाती है।

* आरोग्य, शक्ति और दीर्घायु होने के लिए शुद्ध और ताजा भोजन आवश्यक है। फास्ट फुड को लज्जतदार बनाने हेतु उपयोग में लिए गए विविध मसाले और एसेन्स भी ऊँची क्वालिटी के नहीं होते हैं। फास्ट फुड और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रोसेस्ड फुड में डाले गए **बुटिलेटेड हाइड्रोक्सी, एनीसोल, मोनो सोडिम, ग्लुयमेट, एन्टोई आक्सीडन्ट** आदि शरीर को हानि पहुंचाते हैं। इस खाद्य सामग्री को फूलन न चढे इसलिए सोडियम प्रोपर्नेट और ज्यादा समय रखने के लिए **नाइट्रेट या सोडियम नाइट्रेट** मिलाया जाता है।

* **मोनो सोडियम और ग्लुटामेट** जैसे रसायन केन्सर, बच्चों को मस्तिष्क रोग पैदा कर सकते हैं, इससे दिल की धडकन बढती है, सिरदर्द और फेंफडे बिगडते हैं। मुँह, छाती, गला और चर्म रोग व उनकी संवेदनशीलता घटने लगती है। जिन सोड्यिम आदि केसंयोजन से खाद्य सामग्री को स्वादिष्ट बनाने में आती है, उससे भी दातों में सडान, हृदय रोग, तीव्र रक्तचाप, फेफडों की बिमारी हो सकती है। बाजारु पेय, आचार, होट डोग, जाम जेली में आने वाले अमारन्थ से केन्सर होता है।

8. **जिलेटिन** :- गाय की हड्डी और पैर की खुर में से बनता है। जैली आईस्क्रीम, चीझ, केक, विदेशी मिठाईयों और मिन्ट में उपयोग होता है। बहुत सारी आईस्क्रीम में जिलेटीन + चरबी + ई नाम का मांसाहारी अेडीटी उपयोग होता है।

* जिलेटीन प्राणियों के हड्डियों का पाउडर है। इसका उपयोग जेली, आईस्क्रीम, पीपरमेन्ट, केप्सुल, च्युइंगम आदि बनाने में किया जाता है।

* **जाजाब्स, एकस्ट्रा स्ट्रांग, सफेद पीपरमेन्ट, जेली क्रिश्टल** में जिलेटीन आता है।

* बटर में उसी रंग के असंख्य त्रस जीव - जंतु होते हैं।

* **चाइनाग्रास** - समुद्री काई - सेवाल (लील) के मिश्रण से बनाया जाता है।

* **क्राफ्ट चीस** :- 2-3 दिन के जन्में बछडे के जठर को निचोडकर रस निकाला जाता है। यह पीझा के उपर लगाने में काम आता है।

* **मेन्टोस** :- इसे बनाने में बीफटेलो, बोन (हड्डी का पाउडर और जिलेटीन) का उपयोग किया जाता है।

* **पोलो** :- इसमें जिलेटीन और (बीफ ओरिजीन) गाय - बैल केमांस का मिश्रण किया जाता है। इसमें मांसाणु के कारण इन्हें खाने वालों के स्वभाव में तीखापन, बात - बात में चिडचिडापन आदि होता है।

* **नूडल्स सेव पेकेट** - इसमें चिकन फ्लेवर (मुर्गी का और अंडे का रस) होता है जो नास्ते में खाते हैं।

* **सूप पाउडर तथा सूप क्युब्स** :- इसमें भी मुर्गी का रस आता है।

* **पेप्सीन (साबुदाना का वेफर)** :- रतालु नाम के जमीनकंद के रस से बनती है। रस के कुंड में असंख्य कीडे आदि जन्तु पैर से कुचल दिए जाते हैं। उस रस के गोल - गोल दानों को साबुदाना कहते हैं। इसमें अनंतकाय और असंख्य त्रस जंतुओं का कचूमर निकलता है।

* **टूथपेस्ट** :- प्रायः सभी में अंडे का रस, हड्डी का पाउडर, तथा प्राणिज ग्लिसरीन की मिलावट होती है। इसके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थान पर वज्रदंती, वैद्यनाथ, लाल दंत मंजन, विक्को, हर्बो एवं दंतेश्वरी आदि का उपयोग करें।

* **स्नान के साबुन**:- इसमें अधिकतर प्राणिज चर्बी होती है।

* **लिप्स्टीपक, शेम्पु** :- इसमें जानवरों की हड्डी का पावडर, लाल खून, चर्बी, जानवरों के निचोड का रस होता है। इन सबकी जांच सुअर, चूहे, बंदर आदि की आंखों में की जाती है। जिससे वे अंधे हो जाते हैं।

* **ब्रेड पाव** :- इसमें अभक्ष्य मैदा, ईयल जैसे अनेक कीडों का नाश, खामीर बनाते समय त्रस जीवों का अग्नि में संहार तथा पानी का अंश रह जाने से बासी आटे में करोडों जीव (बैकटेरिया) उत्पन्न हो जाते हैं।

XX. ओले (गार) अभक्ष्य :- कभी कभी वर्षा के साथ आकाश से बर्फ के गोलें (गार) गिरते हैं। यह बरफ के समान पानी के कोमल गर्भ का पिण्ड है। इन्हें ओला कहा जाता है। इनमें पानी के असंख्य जीव होते हैं। जीवन निर्वाह के लिए यह अनावश्यक हैं तथा बरफ के सदृश्य आरोग्य के लिए हानिकारक भी है। इसलिए ज्ञानि पुरुषों ने इसे अभक्ष्य कहा है।

XXI. मिट्टी अभक्ष्य :- सभी प्रकार की मिट्टी खडी, चूने से मिली हुई कलर, कच्चा नमक आदि अभक्ष्य है। इनके कण - कण में पृथ्वीकाय के असंख्य जीव होते हैं। इन वस्तुओं का भक्षण जीवन के लिए अनावश्यक है। इससे न तो पेट भरता है और न शक्ति मिलती है, अतः त्याज्य है।

* **मिट्टी भक्षण से होनेवाली हानियां** :-

* इसके भक्षण से पथरी, पांडूरोग, सेप्टिक, पेचिस जैसी भयंकर बिमारीयां होती है।

* मिट्टी से पीलिया, आंव, पित्त तथा शरीर दुर्बल हो जाता है।

* कई प्रकार की मिट्टी मेंढक आदि समूर्च्छिम जीवों की योनी रुप है, वह मिट्टी पेट में जाने से पथरा आदि का भय रहता है।

XXII. विष अभक्ष्य :- विष अर्थात् जहर। यह आहार का एक भाग नहीं है, क्योंकि पेट में प्रवेश पाते ही यह मनुष्य के प्राणों का हरण कर लेता है। भ्रम, दाह आदि दोष उत्पन्न करके धीमें धीमें वेदना देकर मार डालता है। विष स्व पर जीवों का घातक होने से अभक्ष्य माना गया है।

सर्वज्ञ प्रभु ने 15 कर्मादानों में विष व्यापार भी निषेध किया है। इसके व्यापार से अनेक अनर्थ सर्जित होते हैं और आत्मा की दुर्गति होती है। इसलिए विष का आत्मघात में या व्यसन में प्रयोग नहीं करना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* विष के प्रकार *

1. खनिज (रसायनिक) 2. प्राणिज
3. वनस्पतिज 4. मिश्रण :- विष से सत्व निकालकर अथवा अन्य औषधि प्रयोग से तैयार किए गए रसायन, तालपुट आदि मिश्रण विष है।

अभक्ष्य अर्थात् अनंत जीवों की हिंसावाला, त्रस जीवों की हिंसावाला अयोग्य भोजन। शरीर, मन व आत्मा का अहित करनेवाला भोजन। शरीर निर्वाह के लिए अनुपयोगी भोजन । दुष्ट वृत्तियों को उत्पन्न करनेवाला भोजन। लोक - परलोक को बिगाडनेवाला भोजन।

श्री सर्वज्ञ भगवंत ने **22 प्रकार** के अभक्ष्यों को निषेध कहा हैं वह वस्तुतः युक्तियुक्त है। **जिन दोषों के कारण इन पदार्थों को अभक्ष्य कहा गया है, वे निम्नानुसार है :-**

1. कन्दमूलादि पदार्थों में अनंत जीव का नाश होता है। मांस मदिरादि पदार्थों में द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के असंख्य त्रस जीवों का नाश होने से अभक्ष्य हैं । 2. अभक्ष्य खान - पान से आत्मा का स्वभाव कठोर और निष्ठुर बन जाता है। 3. आत्मा का अहित होता है। 4. आत्मा तामसी बनती है। 5. हिंसक वृत्ति भडकती हैं 6. अनंत जीवों को दुःख देने से असाता वेदनीयादि अशुभ कर्मों का बंध होता है। 7. धर्मविरुद्ध भोजन है। 8. जीवन स्थिरता हेतु निरर्थक है। 9. शरीर, मन और आत्मा को अस्वस्थ करता है। 10. जीवन में जडता लाता है जिससे धर्म में रुचि उत्पन्न नहीं होती है। 11. दुर्गति की आयु का बंध करता है। 12. काम - क्रोध की वृद्धि करता है। 13. रसलालसा से भयंकर रोग पैदा करता है। 14. अचानक असमाधिमय मृत्यु होती है। 14. अनंतज्ञानी के वचन पर विश्वास भंग हो जाता है।

इन समस्त हेतुओं को ध्यान में रखकर अनेक दोषोत्पादक अभक्ष्य पदार्थों का आजीवन त्याग सभी के लिए हितकर है।

अभक्ष्य पदार्थों में किन जीवों का नाश होता है।

* गूलर के पांचों फलों में वनस्पति के अनगिनत बीजों के जीव
* मधु, मदिरा, मक्खन, बोल अचार,द्विदल, चलित रस, रात्रिभोजन में असंख्य द्वीन्द्रियादि त्रस जीव।
* मांस में, विष में पंचेन्द्रिय जीव, निगोद के अनंत जीव, समूर्च्छिम जीव, कृमी आदि।
* बरफ, ओले में पानी के असंख्य जीव।
* मिट्टी में पृथ्वीकाय के असंख्य जीव।
* बहुबीज, बैंगन, तुच्छ फल में वनस्पति के जीव और त्रस जीव, एठी गुठली पर समूर्च्छिम जीव।
* अनंतकाय में कंदमूल के कण - कण में अनंत जीव
* अज्ञात फल - फूल, वनस्पति के जीव, पंचेन्द्रिय जीव तथा त्रस जीवों का नाश है।

******

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* श्रावक के चौदह नियम *

जीवन को अनुशासित बनाने के लिए त्यागमयी वृत्तियों में दृढता लाने के लिए प्रत्येक श्रावक को अपनी दिनचर्या को नियमबद्ध करने का विधान जैनागम में है। जगत् की सभी वस्तुएँ उसके उपयोग में नहीं आ सकती। अतः उन वस्तुओं के उपयोग का अनावश्यक पाप बंध न हो इसके लिए चौदह नियम लेना चाहिए। इसमें आवश्यक चीजें खुली भी रख सकते हैं और अनावश्यक के त्याग का लाभ भी हो जाता है।

खाते पीते बिना किसी तकलीफ के पापों से बचने का सुंदर व सरल उपाय है, यह चौदह नियम इस प्रकार है:-

'' सचित दव्व - विगई - वाणह - तंबोल वत्थ कुसुमेसु।
वाहण - शयन विलेवण - बंभ दिसि ण्हाण भत्तेसु ।।''

1. सचित :- सचित अर्थात् जिसमें जीव सत्ता है। इसमें सचित पदार्थों के सेवन करने की दैनिक मर्यादा रखी जाती है। सचित पदार्थ वे है। जैसे कच्चि हरी सब्जी, फल, नमक, पानी आदि का संपूर्ण त्याग अथवा इतनी संख्या से अधिक उपयोग नहीं करुंगा ऐसा नियम करना।

2. द्रव्य :- द्रव्य की प्रतिदिन मर्यादा रखनी है, इसमें पदार्थों की संख्या का निश्चय किया जाता है। भिन्न - भिन्न नाम व स्वाद वाली वस्तुएं इतनी संख्या से अधिक खाने के काम में नहीं लूंगा। जैसे खीचडी, रोटी आदि का नियम करना।

3. विगई :- अभक्ष्य विगई, मदिरा, मांस, शहद और मक्खन इनका सर्वथा त्याग होना चाहिए।

:- भक्ष्य विगई - प्रतिदिन तेल, घी, दूध, दही, शक्कर या गुड तथा घी या तेल में तली हुई वस्तु ये छः विगय है। इनका यथाशक्ति त्याग करना।

4. वाणह :- जूता, मोजा, चप्पल आदि पाव में पहनने की चीजों की मर्यादा रखें।

5. तंबोल :- मुखवास के योग्य पदार्थों, पान - सुपारी आदि का दैनिक त्याग करना या परिमाण रखना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

6. वत्थ :- पहनने ओढने के वस्त्रों की दैनिक मर्यादा रखना। आज में अमूक संख्या में वस्त्रों को अपने शरीर पर धारण करुंगा, इससे अधिक संख्या में वस्त्र को नहीं पहनूंगा।

7. कुसुम :- पुष्प, तेल, इत्र, क्रीम, पाउडर आदि सुगंधित पदार्थों का दैनिक मर्यादा रखना।

8. वाहन :- रिक्शा, स्कूटर, कार, बस, ट्रेन आदि का दैनिक त्याग या मर्यादा करें।

9. शयन :- शय्या, आसन, कुर्सी, बिछोना, पलंग आदि का प्रमाण करना।

10. बिलेवण :- साबुन, तेल, पाउडर आदि का प्रमाण करें।

11. ब्रह्मचर्य :- परस्त्री का सर्वथा त्याग, स्वस्त्री के साथ मर्यादा का संकल्प करें।

12. दिशा :- दस दिशाओं में अथवा अमुक दिशा में इतने कि.मी. से अधिक दूर जाने की सीमा निश्चित करना।

13. स्नान :- श्रावक प्रतिदिन स्नान, हाथ पैर धोने में संख्या की मर्यादा रखना।

14. भत्त नियम :- प्रतिदिन अन्न, पानी आदि चारों आहारों का तोल रखना।

इन चौदह नियमों के अतिरिक्त अन्य भी कुछ नियम है जो उपयोगी होने से उनका भी पालन करना जरुरी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

1. पृथ्वीकाय :- मिट्टी, नमक, पत्थर आदि जो खाने व किसी काम के उपयोग में आवे उनका प्रमाण करना।

2. अप्काय :- जो पानी स्नान करने, कपडे धोने व पीने के काम में आवे उसका प्रमाण करना।

3. तेउकाय :- चुल्हा, भठी, चिराग, गेस, बिजली, स्वीच आदि का प्रमाण करना।

4. वायुकाय :- झुला, पंखा, ऐ.सी. आदि की मर्यादा रखना।

5. वनस्पतिकाय :- हरी वनस्पति आदि का प्रमाण करना।

6. त्रसकाय :- निरपराधी चलते फिरते जीवों को न मारने का नियम रखना, अनजाने में मर जाए उसका मिच्छामि दुक्कडम् देना।

❊ तीन कर्म :-

1. असिकर्म :- तलवार, कैंची, सूई, चाकु, मिक्सी आदि शस्त्रों की संख्या रखकर नियम करना।

2. मसिकर्म :- कागज, कलम, दवात पेन, पेन्सिल आदि लिखने - पढने के साधन का प्रमाण करना।

3. कृषिकर्म :- खेती, बगीचा आदि का प्रमाण करना।

इन चौदह नियम को चितारने वाले प्रातःकाल सूर्योदय के समय और सायंकाल के समय शुद्धभूमि पर बैठकर प्रथम तीन नवकार गिनकर निम्नलिखित पच्चक्खान लें।

'' देसावगासियं भोगपरिभोगं पच्चक्खामि अण्णत्थणाभोगेणं सहसागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।''

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* जैन कर्म मीमांसा *

* मोहनीय कर्म
* आयुष्य कर्म

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीय कर्म

जो कर्म आत्मा के सभी तरह के सम्यक्त्व और चारित्रगुण का घात करता है अथवा जो कर्म जीव को स्व पर-विवेक में तथा स्वरुप रमण के विषय में विपरीतता लाता है तथा बाधा पहुँचाता है, उसे मोहनीय कर्म कहते हैं । आठ कर्मों में यह सबसे अधिक शक्तिशाली है। अन्य सात कर्म प्रजा है तो मोहनीय कर्म राजा है। इसके प्रभाव से वीतरागता प्रकट नहीं हो पाती।

इस कर्म की तुलना मदिरा पिए हुए शराबी से की गई है। जैसे मदिरा के नशे में व्यक्ति सुध - बुध खो बैठता है, जहाँ - तहाँ गिर जाता है, हित - अहित को नहीं जानता, बोलने का भी विवेक नहीं और क्रिया व्यवहार का भी विवेक नहीं रखता, अपना नियंत्रण खो देता है, ठीक वैसे ही मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा अपने हिताहित का, कर्त्तव्य - अकर्त्तव्य का, सत्य - असत्य का और कल्याण - अकल्याण का भान भूल जाती है। धर्म - अधर्म का विवेक नहीं कर पाती। वह संसार के विकारों में उलझ जाती है, हिताहित को कदाचित जान - समझ भी ले किन्तु इस कर्म के उदय से आचरण नहीं कर पाती। यह कर्म आत्मा के आनंदमय शुद्ध स्वरुप को आवृत कर देता है जिससे आत्मा इन्द्रियों के क्षणिक वैषयिक सुखों को ही सुख समझती है। वह अनुभव करती है। यह कर्म आत्मा के मूलभूत क्षायिक सम्यक्त्व गुण और यथाख्यात चारित्र गुण को प्रकट नहीं होने देता है।

* मोहनीय कर्म के भेद *

मोहनीय कर्म के कुल भेद - 28 मुख्य भेद - 2

1. दर्शन मोहनीय 2. चारित्र मोहनीय

1. दर्शन मोहनीय :- आत्मा के सम्यक्त्व गुण का घात करने वाले कर्म को दर्शन मोहनीय कर्म कहते हैं।

यह ध्यान में रहे कि दर्शनावरणीय कर्म के ''दर्शन'' शब्द और दर्शन मोहनीय कर्म के दर्शन शब्द के अर्थ बिलकुल भिन्न - भिन्न हैं । दर्शनावरणीय कर्म के दर्शन शब्द का अर्थ किसी पदार्थ का सामान्य बोध (ज्ञान) है। जबकि दर्शन - मोहनीय कर्म के दर्शन शब्द का अर्थ श्रद्धा या प्रतीति है। जो पदार्थ जैसा है, उसे वैसा ही समझना दर्शन है। अर्थात् तत्वार्थ श्रद्धा को दर्शन कहते हैं। यह आत्मा का गुण है। इसमें विकलता पैदा करने वाला या आवृत करने वाला कर्म को दर्शन मोहनीय कहते हैं। इस कर्म के उदय से जीव सुदेव, सुगुरु, सुधर्म और आत्मस्वरुप के प्रति सही श्रद्धा नहीं कर पाता। सही को गलत और गलत को सही मानता है। ऐसे समय में उसकी रुचि और श्रद्धा लौकिक और सांसारिक लाभ देने वाले चमत्कारी देवों के प्रति, हिंसक, और हिंसा आदि जीवन जीनेवाले एवं हिंसा आदि में धर्म बतानेवाले गुरुओं के प्रति तथा सांसारिक पदार्थों के भोग - उपभोग की ओर प्रेरित करने वाले धर्म के प्रति प्रगाढ रुप से होती है। यही नहीं दर्शन मोहनीय कर्म के कारण आत्मा पर पदार्थों में रुचि रखती है। जैसे स्त्री - पुत्रादि मेरे हैं, या धन - धान्यादि संपत्ति मेरी है, शरीर और भोगों में ''मै'' और ''मेरेपन'' की कल्पना करती हुई आत्मा उनके इष्ट - अनिष्ट में ही स्वयं के इष्ट - अनिष्ट का भाव रखती है। उनका उपभोग करने में ही सुख मानती है और उनके वियोग में दुख मानती है। इस प्रकार के मिथ्या श्रद्धा रुप मोह को दर्शन मोहनीय कर्म कहते हैं।

2. चारित्र मोहनीय :- आत्मा के स्व भाव में रमण करना चारित्र है। जो कर्म इस चारित्र गुण का घात करता है, उसे चारित्र मोहनीय कर्म कहते हैं। यह कर्म आत्मा के चारित्र गुण को मूर्च्छित कर उसमें विपरीतता लाता है। इसके कारण आत्मा अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, साधु - गृहस्थ धर्म आदि सदाचार के मार्ग पर चल नहीं सकती। इतना ही नहीं चारित्र मोहनीय कर्म आत्मा को इतना पराधीन और मूढ बना देता है कि वह पर - भाव को स्व-भाव मान बैठता है। व्यक्ति क्षमा, विनय, सरलता, संतोष आदि आत्मा के स्वभाव को छोडकर क्रोध, मान, माया, लोभ आदि पर भावों में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीते हुए पुनः मोहनीय कर्म का बंध करता है।

* दर्शन मोहनीय कर्म के 3 भेद *

1. मिथ्यात्व मोहनीय :- जिसके उदय से जीव को तत्व पर अश्रद्धा हो, अथवा विपरीत श्रद्धा हो। तत्वों के यथार्थ स्वरुप की रुचि ही न हो उसे मिथ्यात्व मोहनीय कहते हैं। इस कर्म के उदय से जीव वीतराग धर्म के सर्वप्रणीत मार्ग से उन्मुख रहकर उसके प्रतिकूल मार्ग पर रुझान (आस्था) रखता है। वह सन्मार्ग से विमुख रहता है, जीव अजीव आदि तत्वों के उपर श्रद्धा नहीं करता है और अपने हित - अहित का विचार करने में असमर्थ रहता है। हित को अहित और अहित को हित समझता है।

2. मिश्र मोहनीय :- इसका दूसरा नाम सम्यक्त्व - मिथ्यात्व मोहनीय है। जिस कर्म के उदय से जीव को जिन कथित तत्व पर श्रद्धा या अश्रद्धा का मिला हुआ भाव हो, डंवाडोल मनःस्थिति रहे, उसे मिश्र मोहनीय कहते हैं।

3. सम्यक्त्व मोहनीय :- जिसके उदय से सम्यग् दर्शन की प्राप्ति होने पर भी नव तत्वों पर श्रद्धा होते हुए भी क्षायिक समकित की तुलना में वह कमजोर होती है। जो एक तरह से अतिचार रुप है। यह कर्म जीव को क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति में बाधा पहुंचाता है। यह सम्यक्त्व का नाश तो नहीं करती किंतु चल मल अगाढ दोष लगाकर उसे मलीन करती है।

* चारित्र मोहनीय कर्म के 25 भेद *

मुख्य भेद - 2 (1. कषाय मोहनीय 2. नोकषाय मोहनीय) कषाय मोहनीय- 16 नोकषाय मोहनीय - 9 = 25 भेद

* **कषाय मोहनीय** :- कष यानी जन्म - मरण रुप दुःखभरा संसार और आय अर्थात प्राप्ति या वृद्धि अर्थात् जिस कर्म से संसार की वृद्धि हो उसे कषाय कहते हैं। "तत्वार्थ राजवार्तिक" में कषाय मोहनीय की परिभाषा देते हुए बताया गया है, "चारित्र परिणाम कषणात् कषाय" अर्थात जिसके कारण चारित्र के परिणाम क्षीण होते है, उसे कषाय कहते हैं। जिस कर्म के कारण क्रोध, मान, माया और लोभ इन कषायों की उत्पत्ति हो उसे कषाय - मोहनीय कहते हैं। यह कषाय जीव को संसार के साथ एकत्व कराने में तथा आत्मा के मूल गुणों से दूर रखने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कषाय मोहनीय के 16 भेद है जिनका संक्षेप में निरुपण करते हैं। मूल रुप में कषाय के चार भेद है और उनकी तत् प्रकारक - खासियत के आधार पर प्रत्येक कषाय के चार भेद होने से कषाय के 16 भेद प्ररुपित किये गये हैं। कषाय के मूल 4 भेद इस प्रकार हैं:-

1. **क्रोध** :- समभाव को भूलकर आवेश से भर जाना दूसरों पर रोष करना, अपने और दूसरे के अपकार या उपघात आदि करने के क्रूर परिणाम लाना क्रोध है।

क्रोध एक ऐसा आत्मा के अध्यवसायों का विकार है, जिसके उत्पन्न होने पर शारीरिक मानसिक संतुलन बिगड जाता है। शरीर में अनेक परिवर्तन होते है, जैसे - चेहरे का तमतमाना, आंखे लाल होना, भुकृटि चढाना, होंठ फडफडाना , जीभ लडखडाना, वाक्य व्यवस्था स्खलित होना इत्यादि। क्रोधावस्था में थायरायड ग्लैण्ड आदि ग्रंथियां समुचित कार्य नहीं करती, जिससे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। हृदयगति (**Heart Beat**), रक्त चाप (**Blood Pressure**) तथा नाडी की गति बढ जाती है। पाचन क्रिया में विघ्न आता है, रुधिर का दबाव बढता है।

मनोविज्ञान की मान्यता है, तीन मिनट किया गया तीव्र क्रोध नौ घंटे कठोर परिश्रम करने जितनी शक्ति को समाप्त कर देता है। जैसे दिन भर चलने वाली हवा से घर में उतनी मिट्टी नहीं आती, जितनी धूल पांच मिनट की आंधी में आ जाती है, वैसे ही पूरें दिन भर की भावदशा से इतने कर्म - परमाणु आत्मा में नहीं आते - जितने पांच मिनट के क्रोध में आ जाते है।

2. **मान** :- गर्व, अभिमान, अहंकार, मगरुरी (**Pride**) आदि झूठे आत्म दर्शन को मान कहते हैं। यह एक ऐसा मनोविकार है, जो स्वयं को उच्च एवं अन्य को निम्न हल्का समझने की वृत्ति रखता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योगशास्त्र में श्री हेमचन्द्राचार्य ने कहा है - मान : विनय, श्रुत और सदाचार का हनन करने वाला है। धर्म अर्थ और काम का घातक है। विवेक रुपी चक्षु को नष्ट करने वाला है।

3. **माया** :- कपटभाव (वक्रता), मन - वचन - काया की प्रवृत्ति में एक रुपता का न होना, कथनी और करनी में असमानता होना माया है। कहा जाता है कि जिस आत्मा में माया (वक्रता) है उस आत्मा में धर्म नहीं टिक सकता। जैसे बंजरभूमि में बोया बीज निष्फल जाता है या मलिन चादर पर चढाया केसरिया रंग व्यर्थ हो जाता है। ठीक वैसे ही मायापूर्वक किया गया धर्म कार्य भी निष्फल होता है। जितनी मात्रा तक वह माया करता है, उतनी मात्रा तक उसकी साधना निरर्थक है। उसका संसार परिभ्रमण चालू रहता है।

4. **लोभ** :- बाह्य पदार्थों के प्रति ममत्व (मेरापन) एवं तृष्णा की बुद्धि लोभ है। यह कषाय सब पापों का बाप माना जाता है। लोभ का विस्तार आकाश के समान अनंत है यह एक ऐसी मनोवृत्ति है जिसके वशीभूत होकर व्यक्ति पापों के दल - दल में पांव रखने के लिए तैयार हो जाता है। इसलिए शास्त्रकार ने इसे सर्वविनाशक कहा है। **दशवैकालिक सूत्र में आचार्य स्वयंभवसूरिजी** ने कहा है क्रोध से प्रीति, मान से विनय, माया से मित्रता का नाश होता है, किंतु लोभ तो सब गुणों का विनाश कर देता है। इसलिए इसे पाप का बाप कहा जाता है।

ये चारों कषाय प्राणी के चित्त को कसैला बना देते हैं । सभी जीवों के कषाय समान रुप से उदय में नहीं आते, इसलिए इन चारों कषायों के पुनः चार प्रकार बताये गये हैं। जो क्रमशः अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी तथा संज्वलन के नाम से कहे जाते हैं। इनके लक्षण ये है:-

✲ **अनंतानुबंधी कषाय** :- जो कषाय कर्मोंका पुनः पुनः बंध करवाने के माध्यम से अनंत संसार का अनुबंध कराने वाले है उन्हें अनंतानुबंधी कहते हैं। इस कषाय के प्रभाव से आत्मा अनंत काल तक संसार में परिभ्रमण करती है। यह कषाय सम्यक्त्व का घात करता है, जीवन पर्यन्त बना रहता है और मुख्य रुप से नरक में ले जाता है। इसके चार भेद हैं

1. **अनंतानुबंधी क्रोध** :- आत्मा के प्रति अरुचि भाव रखना, अनंतानुबंधी क्रोध है। अज्ञानावस्था में शरीर में अहंबुद्धि तथा पदार्थों में ममत्वबुद्धि होती है। शरीर, स्वजन, संपत्ति आदि में ममत्व भाव तीव्र होता है। प्रिय संयोगों की प्राप्ति में बाधक तत्व अप्रिय लगता है। स्वार्थ के ठेस लगने पर जो क्रोध पैदा होता है वह अनंतानुबंधी क्रोध है। यह क्रोध पर्वत में पडी हुई दरार के समान है। जैसे पर्वत के फटने से पडी हुई दरार का जुडना अत्यंत कठिन है उसी प्रकार अनंतानुबंधी क्रोध अथक परिश्रम व अनेक उपाय करने पर भी शांत नहीं हो पाता। कठोर वचन, परस्पर वैर इत्यादि किसी भी कारण से उत्पन्न क्रोध ऐसा भंयकर होता है जो एक जिंदगी में नहीं अनेक जन्मों तक वैर - परंपरा के रुप में जारी रहता है।

2. **अनंतानुबंधी मान** :- आत्मज्ञान के अभाव में व्यक्ति शरीर को मैं रुप मानकर उसका अभिमान करता है। पर के आधार पर अपना मूल्यांकन करना अनंतानुबंधी मान है। यह मान पत्थर के स्तंभ (खम्भे) के समान है। अथवा वज्रस्तंभ के समान है। ऐसा स्तंभ टूट जाता है पर किसी भी तरह झुकता नहीं। इसी प्रकार अनंतानुबंधी मान वाली आत्मा अपने जीवन में कभी नम्र नहीं बनती।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

3. अनंतानुबंधी माया :- अपने स्वरुप से भिन्न स्वरुप मानना अर्थात् शरीर के प्रति ''मैं'' का भाव होना अनंतानुबंधी माया है। यह बांस की जडों के समान है, जो कभी सीधी या सरल नहीं होती। इसी प्रकार इस कषाय से युक्त जीव सरल नहीं बनता है।

4. अनंतानुबंधी लोभ :- जीवन निर्वाह के लिए वस्तु पर ममत्व बुद्धि रखना अथवा पर में सुख मानकर उसकी अभिलाषा करना अनंतानुबंधी लोभ है। जब देह को मैं स्वरुप जीव मानता है, तब वह जीने की आकांक्षा, इष्ट पदार्थों के संयोग की कामना, प्रिय व्यक्तियों से संबंध बनाने की भावना रखता है। इसे किरमिची के रंग की उपमा दी गई है। जिस प्रकार किरमिची का रंग कभी नहीं मिटता, उसी प्रकार अनंतानुबंधी लोभ का धारक वस्तु के प्रति ममत्व या लालसा कभी नहीं छोडता।

*** अप्रत्याख्यानी कषाय** :- जो कषाय आत्मा को देशविरति चारित्र (श्रावक धर्म) प्राप्त करने में बाधा पहुंचाए, जिसके कारण जीव अल्पतम पच्चक्खाण भी नहीं कर पाता है, अथवा त्याग के परिणाम में जो कषाय बाधक बनता है, उसे अप्रत्याख्यानी कषाय कहते हैं। यह कषाय आत्मा को पापों से विरत नहीं होने देता। अप्रत्याख्यानी कषाय में मिथ्यात्व दूर होता है और सम्यक्त्व प्रकट होता है, जो आत्मा को श्रद्धावान् बनाकर सच्चे देव - गुरु - धर्म की पहचान कराता है। इस कषाय के उदय से जीव तिर्यंच गति का बंध करता है। इस कषाय की काल मर्यादा अधिक से अधिक एक वर्ष की है। यदि यह कषाय एक वर्ष से अधिक रह जाए तो अनंतानुबंधी में परिणत हो जाता है।

इस काल मर्यादा को ध्यान में रखते हुए ही जैन परंपरा में सांवत्सरिक प्रतिक्रमण की व्यवस्था है। वर्ष भर में हुए समस्त वैर - विरोध, द्वेष - रोष आदि को समाप्त करना, क्षमा आदान - प्रदान करना, पूर्व कषाय संस्कारों को क्षय करना इस प्रतिक्रमण का उद्देश्य होता है। इसके चार भेद इस प्रकार है।

1. **अप्रत्याख्यानी क्रोध** :- सम्यग् दर्शन प्राप्त होने पर आत्म तत्व का बोध होता है। जगत् के समस्त जीवों के प्रति आत्मीय भाव उत्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में किसी के प्रति अन्याय होने पर जो क्रोध होता है वह अप्रत्याख्यानी क्रोध है। सम्यग्दृष्टि को देव - गुरु - धर्म का राग होता है। अतः देव - गुरु - धर्म का अपमान करने वाले के प्रति जो क्रोध आता है वह अप्रत्याख्यानी क्रोध है। जैसे वस्तुपाल महामंत्री ने राजा के मामा द्वारा एक बाल मुनि को थप्पड मारने पर उसका हाथ कटवा दिया था।

पृथ्वी में आई हुई दरार जिस प्रकार पानी के संयोग से फिर भर जाती है, उसी प्रकार अप्रत्याख्यानी क्रोध की आग विशेष परिश्रम तथा उपाय के द्वारा मिट जाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

2. **अप्रत्याख्यानी मान** :- सम्यग् दृष्टि सम्यग अर्थ में स्वाभिमानी होता है। स्व स्वरुप प्राप्ति के लिए उसे देव - गुरु - धर्म का राग होता है, उसका गौरव होता है वह अप्रत्याख्यानी मान है। सम्राट अकबर ने अन्य कवियों के समान कवि गंग को अपनी खुशामद करते नहीं देखा। एक दिन अपनी स्तुति करवाने हेतु एक समस्या पूर्ति पद दिया, ''सब मिल आस करो अकबर की....। कवि गंग ने दोहे की रचना करते हुए अंत में कह दिया 'जिस प्रभु पर विश्वास नहीं, वह सब मिल आस करो अकबर की'। सम्राट के रुष्ट होने की भी चिंता कवि गंग ने नहीं की।

जिस प्रकार हड्डी को नमाने के लिए कठिन परिश्रम करना पडता है, तेल आदि का मर्दन करना पडता है ठीक उसी प्रकार यह मान अत्यंत मेहनत व पुरुषार्थ से दूर होता है।

3. **अप्रत्याख्यानी माया** :- सत्य स्वरुव का ज्ञान होने पर तत्व - बोध हो जाता है। किंतु कभी कभी न्याय - नीति हेतु अन्याय को समाप्त करने के भाव से असत्य का आश्रय लिया जाता है वह अप्रत्याख्यानी माया है। महाभारत युद्ध में क्षायिक सम्यक्त्वी श्री कृष्ण ने द्रौणाचार्य को परास्त करने के लिए असत्य भाषा का आश्रय युधिष्ठिर को दिलाया। अश्वत्थामा हतः शब्द स्पष्ट उच्चारण करके अस्पष्ट रुप से नरो व कुंजरो वा बोला '' द्रौणाचार्य ने अपने पुत्र की मृत्यु समझकर शस्त्र त्याग किया।''

भेड के सींग की वक्रता महाप्रयत्न से दूर होती है, अप्रत्याख्यानी आत्मा अति परिश्रम से सरल परिणाम को प्राप्त होती है।

4. **अप्रत्याख्यानी लोभ** :- सम्यग्दृष्टि की कामना जगत - कल्याण की होती है। साधक में धर्म-वात्सल्य उमडता है। तीर्थंकर बनने योग्य आत्मा इस अवस्था में भावना करती है ' सवि जीव करुं शासन रसी' जगत के समस्त जीवों का मैं कल्याण कर दूं, उन्हें शाश्वत सुख दूं। क्षायिक सम्यक्त्वी श्री कृष्ण वासुदेव ने अपने राज्य में घोषणा की थी, ''जो भी नगरवासी प्रभु नेमिनाथ के चरणों में संयम ग्रहण करें, उसके कुटुम्ब पालन का उत्तरदायित्व मेरा है।'' वे अपने निकटस्थ प्रत्येक व्यक्ति को दीक्षा अंगीकार हेतु प्रेरणा देते थे। यह अप्रत्याख्यान लोभ है।

गाडी के पहिये के कीट के समान यह लोभ अति कठिनता से दूर होता है। इस कषाय के उदय से जीव तिर्यंच गति का बंध करता है।

* **प्रत्याख्यानावरण कषाय** :- जिसके उदय से जीव को सर्वविरति चारित्र (साधु धर्म) की प्राप्ति में रुकावट आती है, अर्थात् जो कषाय हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह रुप महापापों के सर्वथा त्याग में बाधक बनता है। उसे प्रत्याख्यानावरण कषाय कहते हैं। इस कषाय की अधिकतम काल स्थिति चार मास की है। यह कषाय चार महीने से अधिक उदय में नहीं रह सकता। इस काल में साधक अपने दोष का प्रायश्चित एवं अन्य के अपराध को क्षमादान देता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। चातुर्मासिक प्रतिक्रमण का उद्देश्य यही है कि अविरति रुप अप्रत्याख्यानी कषाय का उदय न हो। इसके उदय से आत्मा मनुष्य गति का बंध करती है। इसके चार भेद हैं:-

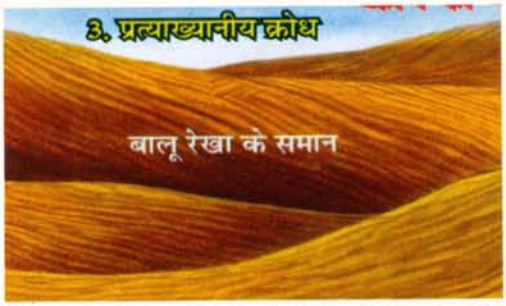

1. प्रत्याख्यानावरण क्रोध :- सम्यग् दृष्टि साधक सांसारिक कार्यों को संक्षिप्त करके श्रावक जीवन के बारह व्रत स्वीकार करता है। उसके व्रत पालन में कोई बाधक बनता है तो उसे जो क्रोध आता है वह प्रत्याख्यानावरण क्रोध है। संयम लेने के लिए तत्पर मुमुक्षु आत्मा को जब उसके संयम में रुकावट पैदा होती है, उस समय उसे जो क्रोध आता है वह प्रत्याख्यानावरण क्रोध है।

यह क्रोध रेत या बालु में पडी हुई रेखा के समान है, जो हवा के चलने पर कुछ समय में मिट जाती है। यह क्रोध भी कुछ समय में शांत हो जाता है।

2. प्रत्याख्यानावरण मान :- साधना पद्धति में जो विशिष्ट राग का कारण होता है, वह प्रत्याख्यानावरण मान हैं। जैसे मांडवगढ के महामंत्री पेथडशाह को प्रभु - पूजा के समय राजा भी उन्हें मंदिर से बाहर नहीं बुला सकते थे, मंत्री पद भी इस शर्त के साथ पेथडशाह ने स्वीकार किया था।

यह मान लकडी के खंभे के समान है। जैसे लकडी को नमाने के लिए तैल मालिश आदि करना पडता है, उसी प्रकार यह मान थोडे परिश्रम से नम्रता में परिवर्तित हो जाता है।

3. प्रत्याख्यानावरण माया :- स्वयं धर्ममार्ग से जुडने के पश्चात् अन्य व्यक्तियों को भी धर्ममार्ग से जोडने के भाव प्रायः साधक को रहता है। ऐसे कार्य में इच्छित फल की प्राप्ति न होने पर साधक कई बार जो माया का आश्रय लेता है वह प्रत्याख्यानावरण माया कहलाती है। जैसे महामंत्री पेथडशाह से देवपुरी के श्रावकों ने निवेदन किया 'हे मांडवगढ श्रृंगार ! आपने अपनी नगरी को जिनालयों से सुशोभित किया है किंतु एक प्रभु मंदिर हमारी नगरी में भी बनवाइए !'' क्या बाधा है ? ऐसा प्रश्न होने पर स्पष्ट किया '' हमारे नगर में अन्य धर्मावलम्बी हमारा जिनालय बनने में रुकावट देते है तथा पृथ्वीपति राजा उन्हीं की सलाह अनुसार निर्णय देता है । महामंत्री पेथडशाह ने देवपुर के मंत्री के साथ मैत्री - संबंध बांधने के लिए मांडवगढ और देवपुर के मध्य एक अतिथिगृह, भोजनशाला आदि का निर्माण करवाया और उसका निर्माता देवपुर के मंत्री हेमू को घोषित किया गया। मंत्री हेमु की यश, कीर्ति चारों ओर फैलने लगी। दोनों नगर के मंत्रियों के मध्य मित्रता संबंध स्थापित हुआ। मंत्री हेमु के माध्यम से पेथडशाह ने देवपुर में एक देव-विमान तुल्य जिनालय का निर्माण करवाया।

जैसे चलते हुए बैल के मुत्र की धार जमीन पर टेढी - मेढी दिखती है, किंतु शीघ्र ही सुखकर समाप्त हो जाती है, वैसे ही प्रत्याख्यानी माया (वक्रता) भी अल्प प्रयास से सरलता में परिवर्तित हो जाती है।

4. **प्रत्याख्यानावरण लोभ** :- साधना - क्षेत्र में तीव्र गति से आगे बढने की भावना को प्रत्याख्यानी लोभ कहते हैं। बारह व्रत ग्रहण कर प्रतिमाएं धारण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करने की इच्छा इस लोभ में होती है।

काजल के रंग के समान यह लोभ कुछ प्रयत्न से दूर होता है।

*** संज्वलन कषाय** :- सर्व विरति युक्त साधु को जो कषाय मंद / अल्प रुप से दोष युक्त बनाता है, चारित्र को मलिन करता है, आत्मा को यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति न होने देता है, वह संज्वलन कषाय है। यह केवलज्ञान की उत्पत्ति में बाधक बनता है। यह कषाय उपसर्ग या कष्ट आने पर साधु के चित्त में समाधि और शांति नहीं रहने देता किंतु इसका असर लम्बे समय तक भी नहीं रहता। इस कषाय की काल मर्यादा अधिक से अधिक पंद्रह दिन की है। पाक्षिक प्रतिक्रमण का विधान इसी हेतु से हैं। यद्यपि साधक को रात्रि एवं दिवस संबंधी दोषों की आलोचना प्रतिदिन कर लेनी चाहिए, नहीं तो पाक्षिक प्रतिक्रमण तो अवश्य ही करना चाहिए, जिससे प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय न हो जाए। इस कषाय के उदय से आत्मा को देवगति का बंध होता हैं । इसके भी निम्न चार भेद हैं।

1. संज्वलन क्रोध :- शुद्ध स्वरुप प्राप्ति की साधना में जिन्हें अपने दोष पर रोष होता है, वह संज्वलन क्रोध है। **श्रीमद् राजचंद्रजी** ने अपूर्व अवसर में कहा है 'क्रोध प्रत्ये तो वर्ते क्रोध स्वभावता' - क्रोध के प्रति ही क्रोध हो। अपना दोष कंटक की तरह अपने को ही चुभने लगे वह संज्वलन क्रोध है। जैसे अरणिक मुनि ने अपनी भूल की प्रायश्चित में अनशन धारण किया।

यह क्रोध पानी में खींची हुई लकीर के समान हैं पानी में खिंची गयी लकीर जिस प्रकार आगे आगे चलने से पीछे पीछे नष्ट हो जाती है, वैसे ही यह क्रोध जल्दी शांत हो जाता है।

2. संज्वलन मान :- विनयशील, समझदार व्यक्ति कभी अहंकार करता भी हो तो वह विवेक जागृत होने पर शीघ्र ही अहंकार को छोड देता है। संज्वलन मान के उदय से बाहुबलि को केवलज्ञान उपलब्धि के पश्चात् समवसरण में जाने का भाव बना था। इस मान वाला जीव सामान्य परिश्रम से नमाये जाने वाले बेंत के समान होता है, जो शीघ्र ही अपने आग्रह को छोड देता है।

3. संज्वलन माया :- कभी - कभी साधना हेतु भी माया होती है। महाबल मुनि ने मित्र मुनियों से अधिक तप करने की भावना से उन्हें पारणा करने दिया एवं स्वयं अस्वस्थता का बहाना लेकर तप किया। मायापूर्वक किया गया यह तप तीर्थंकर नाम कर्म के साथ - साथ स्त्रीवेद बंध का कारण बना। वे महाबल मुनि श्री मल्लि तीर्थंकर हुए। संज्वलन माया बांस के छिल्के के समान स्व अल्पतम वक्र है। जैसे छीले जाते हुए बांस के छिलको का टेढापन विशेष प्रयत्न किये बिना मिट जाता है वैसे जो माया आसानी से अपने आप दूर हो जाती है वह संज्वलन माया है।

4. संज्वलन लोभ :- शीघ्रातीशीघ्र मुक्ति का आनंद मिले, यह संज्वलन लोभ है। जैसे गजसुकुमाल मुनि ने नेमीनाथ प्रभु के चरणों में दीक्षा अंगीकार करके सर्वप्रथम यह प्रश्न किया था '' प्रभो ! जल्दी से जल्दी मुक्ति कैसे प्राप्त करुं ? !''

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संज्वलन लोभ हल्दी के रंग के समान है जैसे वस्त्र पर लगा हुआ हल्दी का रंग सहज में उड जाता है, उसी प्रकार जो लोभ विशेष प्रयत्न किये बिना तत्काल अपने आप दूर हो जाता है वह संज्वलन लोभ है।

इस प्रकार साधक क्रमशः समस्त कषायों का क्षय करता हुआ अकषाय/वीतराग अवस्था को प्राप्त होता है।

इन कषाय को चार्ट द्वारा सरलता से समझ सकते हैं :-

चार कोटी के कषाय	अनंतानुबंधी	अप्रत्याख्यानी	प्रत्याख्यानी	संज्वलन
स्वरुप	आत्मा का अनंत काल संसार में परिभ्रमण	आत्मा पापों से विरक्त नहीं हो पाती	साधु धर्म की प्राप्ति नहीं होती	केवलज्ञान में बाधक
क्रोध	पर्वत की रेखा	जमीन की रेखा	रेत पर रेखा	पानी पर रेखा
मान	पाषाण स्तम्भ	शरीर की हड्डी	लकडी स्तम्भ	बांस की बेंत
माया	बांस की जड	भेढ के सींग	बैल की मूत्र धारा	बांस की छाल
लोभ	किरमिची रंग	पहिये का कीचड	काजल का दाग	हल्दी का दाग
काल मर्यादा	आजीवन	एक वर्ष तक	चार मास तक	15 दिन तक
गुण - घात	सम्यक्त्व गुण	देश विरति गुण	सर्व विरति गुण	वीतरागता गुण
गति बंध	नरक गति	तिर्यंच गति	मनुष्य गति	देव गति

* नो कषाय मोहनीय *

चारित्र मोहनीय का दूसरा प्रकार नोकषाय मोहनीय है। यहां नो शब्द का अर्थ नो (9) नहीं है, इसका अर्थ अल्प अथवा सहायक है। जो कषाय तो न हो, किंतु कषाय के उदय के साथ जिसका उदय होता है अथवा कषायों को पैदा करने में, उत्तेजित करने में सहायक हो उसे नोकषाय कहते हैं। यह नौकषाय पूर्वोक्त सोलह कषाय के सहचारी है। पूर्वोक्त कषाय का क्षय होने के बाद नोकषाय भी नहीं रहते । कषायों का क्षय होते ही इनका भी क्षय होने लग जाता है। अथवा नोकषाय का भी उदय होने पर कषायों का भी उदय अवश्य होता है। इनके नौ भेद हैं।

1. हास्य :- जिसके उदय से सकारण या अकारण हंसी आवें। हंसना एक क्रिया है। इस क्रिया में भाव अनेक होते हैं। व्यक्ति कभी मानवश किसी का उपहास करता है, कभी किसी को हंसाने के लोभ में स्वयं को मजाक बनाता है। द्रौपदी को हंसी आई थी दुर्योधन पर। जब स्थल को जल समझकर दुर्योधन फिसल गया था।

सत्यधर्म का उपहास एवं हंसी मजाक से हास्य मोहनीय कर्म बंध होता है।

2. रति :- जिसके उदय से इष्ट पदार्थ के प्रति राग - आनंद हो। राग की तीव्रता से रति मोहनीय कर्म का बंध होता है। महाशतक की पत्नी रेवती ने पौषध व्रत धारक पति को रींझाने के लिए कितनी क्रीडाएं की किंतु सफल नहीं हुई।

3. अरति :- अरुचि या उपेक्षा भाव होना। कण्डरिक मुनि की रस लोलुपता इतनी अधिक हो गई थी कि संयमी जीवन से अरति हो गयी। पाप में रुचि एवं संयम में अरुचि उत्पन्न करने वाली प्रवृत्ति से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरति मोहनीय कर्म का बंध होता है।

4. भय :- भय उत्पन्न होना। कारागृह में कैद श्रेणिक राजा तलवार हाथ में लिए पुत्र को आते देखा तो भयभीत हो अंगूठी का हीरा चूसकर प्राण त्याग दिए। स्वयं भयभीत होने से अथवा अन्य को भयभीत करने से भय मोहनीय कर्म का बंध होता है।

5. शोक :- जिसके उदय से इष्ट के वियोग से, अनिष्ट के संयोग से, चित्त में अफसोस हो या दुःखी होना शोक है। चक्रवर्ती की स्त्री रत्न (पटरानी) छः महिने तक महाशोक करके छट्ठी नरक में उत्पन्न होती है। स्वयं शोक करना अथवा अन्य को दुःखी करने से शोक मोहनीय कर्म का बंध होता है।

6. जुगुप्सा :- जिसके उदय से दुर्गंधी पदार्थों के प्रति घृणा पैदा होना। अशुचिमय पदार्थों को अथवा कुरुपता को देखकर नाक - भौं सिकोडना। अभिमान वश किसी की घृणा करने से जुगुप्सा मोहनीय कर्म का बंध होता है। एक कोढी को समवसरण में आते देखकर कई व्यक्तियों को करुणा आई, किसी को कर्म स्वरुप का चिंतन प्रारंभ हुआ, किसी को शरीर व्याधि घर है, इस सत्य का बोध हुआ किंतु कुछ जुगुप्सा भाव ग्रस्त भी हुए।

7. स्त्रीवेद :- जिस कर्म के उदय से पुरुष के साथ भोग करने की इच्छा हो। दिन - रात विषय आसक्ति में डुबे रहने से तथा दूसरों से ईर्ष्या भाव रखने से स्त्रीवेद कर्म का बंध होता है।

8. पुरुष वेद :- जिसके उदय से स्त्री के साथ भोग करने की इच्छा हो। जो पुरुष परस्त्री का त्याग करके अपनी स्त्री में संतुष्ट रहता है वह पुरुष वेद का बंध करता है।

9. नपुंसक वेद :- जिसके उदय से स्त्री और पुरुष दोनों के साथ भोग करने की इच्छा हो। तीव्र कामुकता से इस वेद का बंध होता है। इस प्रकार कुल मिलाकर मोहनीय कर्म के 28 भेद हुए हैं।

* दर्शन मोहनीय के बंध के कारण *

1. उन्मार्ग की देशना :- उन्मार्ग अर्थात् गलत मार्ग या विपरीत मार्ग का उपदेश देना। संसार के कारणों और कार्यों का मोक्ष के कारणों के रुप में उपदेश देने को उन्मार्ग देशना कहते हैं।

2. सन्मार्ग का नाश :- सन्मार्ग अर्थात् सुमार्ग, सच्चा मार्ग। ऐसे मार्ग का विनाश करना। जैसे न मोक्ष है, न पुण्य - पाप है, जो कुछ सुख है वह इसी जीवन में है। खाओ - पीओ मौज उडाओ ! पुनर्जनम नहीं है। क्युं तप करके शरीर सुखाना? आदि उपदेश देकर भोले जीवों को सन्मार्ग से हटाने से दर्शनमोहनीय कर्म का बंध होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

3. देवद्रव्य का हरण :- जिन मंदिर / प्रतिमा हेतु अर्पित राशि को देवद्रव्य कहते हैं। उस राशि का हरण करना, अन्य को हरण करते हुए जानने पर भी उपेक्षा करना, शक्ति होने पर भी उसे नहीं रोकना।

4. जिनेश्वर परमात्मा, अरिहंत परमात्मा की प्रतिमा, मंदिर, चतुर्विध संघ (साधु-साध्वी - श्रावक - श्राविका), श्रुतज्ञान आदि भवसागर तिरने के लिए नाव के समान है। इनका वैर - विरोध, शत्रुता, निंदा, टीका टिप्पणी करने से दर्शन मोहनीय कर्म का बंध होता है। दर्शन मोहनीय कर्म से जीव दुर्लभ बोधी होता है एवं अनंत भवों तक भटकता रहता है।

* कषाय मोहनीय बंध के कारण *

स्वयं कषाय करना, दूसरों में भी कषाय जगाना तथा कषाय के वशीभूत होकर अनेक तुच्छ प्रवृत्तियां करना आदि कषाय मोहनीय बंध के कारण हैं।

* मोहनीय कर्म के निवारण के उपाय *

1. सभी जीवों के साथ समान व्यवहार, सहनशीलता, सम्यक समझ और संसार में कमल की तरह निर्लिप्त रहने से मोहनीय कर्म का क्षीण होता है, जैसे भरत चक्रवर्ती को छः खण्ड की राज्य - समृद्धि और भोग सामग्री मिली फिर भी वे सबसे निर्लिप्त रहे। परिणाम स्वरुप अपने महल में ही मोहनीय कर्म का क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त किया।
2. आत्मा और शरीर के भेद विज्ञान का चिंतन करने से सग्गे - संबंधी परिवार, धन - दौलत आदि शरीर के संबंधी है, आत्मा के नहीं
3. क्रोधादि कषायों पर विजय पाने का प्रयास करने से। अर्थात् क्रोध को क्षमा से, मान को नम्रता से, माया को सरलता से, और लोभ को संतोष से जीतने से।
4. हास्यादि नोकषायों से सावधान होकर चलने से।
5. मिथ्यात्व की गाढता को मिटाकर सुदेव - सुगुरु - सुधर्म के प्रति श्रद्धा रखने से।
6. आत्म - स्वरुप का चिंतन करने से और पर - पदार्थों के प्रति विरक्ति रखने से तथा।
7. राग - द्वेष मोह कर्म के बीज है। अतः सुख - दुःख, संयोग - वियोग की परिस्थिति में समभाव रखने से मोहनीय कर्म क्षय होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* आयुष्य कर्म *

इस संसार में एक मनुष्य सौ वर्ष जीता है, तो एक मनुष्य जन्मते ही मर जाता है। कोई चढती जवानी में मरता है, तो कोई वृद्धावस्था में मर जाता है। यह देखकर जिज्ञासा हो जाती है कि जीवन और मृत्यु का कोई निर्णायक तत्व अवश्य होना चाहिए। कर्म - सिद्धांत के अनुसार इस जिज्ञासा का समाधान कराने वाला तत्व है आयुष्य कर्म, जो जीवन धारण करने की अवधि का नियामक है।

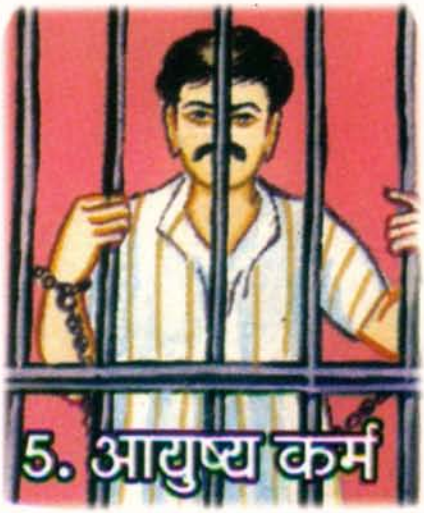

आयुष्य कर्म के अस्तित्व से प्राणी जीवित रहता है और इसके क्षय होने पर मृत्यु का आलिंगन करता है। देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक इन चार गतियों में से किस आत्मा को कितने काल तक अपना जीवन वहां बिताना है या उस नियत शरीर से बद्ध रहना है, इसका निर्णय आयुष्य कर्म करता है।

जिस कर्म के उदय से जीव निश्चित काल (जीवन काल) की पूर्णता से पहले मृत्यु प्राप्त नहीं कर सकता है उसे आयुष्य कर्म कहते हैं।

आयुष्य कर्म का स्वभाव काराग्रह के समान है। जैसे अपराधी को अपराध के अनुसार अमुक काल तक कारागृह में डाला जाता है, और अपराधी उससे छुटकारा पाने की इच्छा भी करता है, किंतु अवधि पूरी हुए बिना निकल नहीं पाता है, उसे निश्चित समय तक वहां रहना पडता है, वैसे ही आयुष्य कर्म के कारण जीव को निश्चित अवधि तक नरकादि गतियों में रहना पढता है जब बांधी हुई आयु भोग लेता है, तभी उसे उस से छुटकारा मिलता है।

आयुष्य कर्म का कार्य जीव को सुख - दुःख देना नहीं है, परंतु नियत अवधि तक किसी एक शरीर में बनाये रखने का है, नरक गति के नारकी पल - पल मौत की इच्छा करते हैं, परंतु जब तक आयुष्य कर्म पुरा न हो, तब तक वे मर नहीं सकते। वैसे ही उन मनुष्य और देवों को जिन्हें विषय - भोगों के साधन प्राप्त है और उन्हें भोगने के लिए जीने की प्रबल इच्छा रहते हुए भी आयुष्य कर्म के पूर्ण होते ही परलोक सिधारना पडता है। अर्थात् आयुष्य कर्म के अस्तित्व से जीव अपने निश्चित समय प्रमाण अपनी गति एवं स्थूल शरीर का त्याग नहीं कर सकता है और क्षय होने पर मरता है, यानी समय पूरा होने पर उस स्थूल शरीर में नहीं रह सकता है।

* आत्मा आयुष्य कर्म कब बांधती है ? *

इस संसार में चार प्रकार के जीव है - देव, नारकी, तिर्यंच और मनुष्य। देवों और नारकों का आयुष्य उनकी छः महीनें की आयु शेष रहने पर बंध जाती है। मनुष्य और संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय का आयुष्य इस नियम से है - वर्तमान जन्म की निश्चित आयु को तीन भागों में बांटने पर इनमें से दो भाग बीत जाने के बाद जो शेष रहे उस एक भाग में अगले जन्म की आयु बंध सकती है। यदि उस समय आयु न बंधे तो शेष रहे एक भाग को तीन हिस्सों में बांटने पर उनमें से दो भाग बीत जाने के बाद जो शेष बचे उस एक हिस्से में आयु बंधती है। यो करते - करते अंतिम अन्तर्मुहुर्त में आयुष्य अवश्य ही बंधती है। उदाहरण के तौर पर मान लिजिए, किसी व्यक्ति का वर्तमान जन्म का आयुष्य नब्बे वर्ष का है। तो साठ वर्ष व्यतीत हो जाने पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगामी जन्म का आयुष्य बंध सकता है। यदि उस समय न बंधे तो शेष तीस वर्ष के दो भाग यानी बीस वर्ष बीत जाने पर शेष 1/3 यानी दस वर्ष में उसका आयुष्य बंध सकता है अर्थात् पूर्ण आयु नब्बे वर्ष की होने से अस्सी वर्ष बीत जाने पर आयुष्य बंधता है। उस वक्त भी न बंधे तो अंतिम दस वर्ष के भी दो भाग बीत जाने पर आयुष्य कर्म बंधता है।

*** आयुष्य कर्म के दो प्रकार है:-**

1. अनपवर्तनीय आयुष्य **2. अपवर्तनीय आयुष्य**

1. **अनपवर्तनीय आयुष्य** :- यह आयुष्य वह है जो बीच में टूटती नहीं और अपनी पूरी स्थिति भोग कर ही समाप्त होती है। अर्थात् जितने काल के लिए बंधी है उतने काल तक भोगी जाये वह अनपवर्तनीय आयुष्य है। इसमें आयुष्य कर्म का भोग स्वाभाविक एवं क्रमिक रुप से धीरे - धीरे होता है। देव, नारकी, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, उत्तमपुरुष, चरम शरीरी (उसी भव में मोक्ष जाने वाले जीव) और असंख्यात वर्ष जीवी, अकर्मभूमि के मनुष्य और कर्मभूमि में पैदा होनेवाले यौगलिक मानव और तिर्यंच ये सब अनपवर्तनीय आयुष्य कर्म वाले होते हैं।

2. **अपवर्तनीय आयुष्य** :- यह आयुष्य वह है जो किसी शास्त्र, विष, पानी आदि का निमित्त पाकर बांधे गये नियत समय से पहले भोग ली जाती है। इसमें आयुष्य कर्म शीघ्रता से एक साथ भोग लिया जाता है। अर्थात् आयु का भोग क्रमिक न होकर आकस्मिक रुप से होता है उसे अपवर्तनीय आयुष्य कहा जाता है। इसे व्यावहारिक भाषा में अकाल मृत्यु अथवा आकस्मिक मरण भी कहते हैं। बाह्य कारणों का निमित्त पाकर बांधा हुआ आयुष्य अन्तर्मुहुर्त में अथवा स्थिति पूर्ण होने से पहले शीघ्रता से एक साथ भोग लिया जाता है।

*** आयुष्य कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ ***

आयुष्य कर्म की उत्तर प्रकृतियां चार है :- 1. नरकायु 2. तिर्यंचायु 3. मनुष्यायु और 4. देवायु। इस संसार में जितने भी संसारी जीव है उन्हें नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चार विभागों में बांटा गया है। समस्त संसारी जीव आयुष्य कर्म से युक्त होते हैं। इसलिए आयुष्य कर्म के चार भेद बताये गये हैं।

नरकायु :- जिस कर्म के उदय से नरक गति का जीवन बिताना पडता है, उसे नरकायु कहते हैं।

स्थानांग सूत्र में नरकायुष्य कर्मबंध के चार कारण बताये गये हैं 1. महारंभ 2. महापरिग्रह 3. पंचेन्द्रिय वध और 4. मांसाहार

1. **महारम्भ** :- आरम्भ अर्थात् हिंसाजनक क्रियाकलाप। तीव्र क्रूर भावों के साथ अधिक संख्या में या अधिक मात्रा में किया गया कार्य महारम्भ कहलाता है। जो आत्मा महारंभ में आसक्त रहती है वह नरक गति का आयुष्य बांध लेती है। महारंभ में आसक्त कालसौरिक कसाई प्रतिदिन पाँच सौ भैंसों की हत्या करने के कारण सातवीं नरक में गया। जो लोग बडे पैमाने पर ऐसी पार्टी या महाभोज आयोजित करते हों जिसमें असंख्य त्रस जीवों की हिंसा होती हो एवं जो मांस - मछली, अण्डों का निर्यात करते हैं तो उन्हें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हिंसक वृत्ति के फलस्वरुप महारंभ के कारण नरक गति का मेहमान बनना पडता है। जिस व्यवसाय में असंख्य जीवों की (एकेन्द्रिय से पंचेन्दिय तक) हिंसा होती है, उसको आरंभ समारंभ कहते हैं। जो मनुष्य आरंभ - समारंभ में आसक्त रहते हैं या जो आरंभ समारंभ करते हुए करणीय - अकरणीय कार्य का तनिक भी विचार नहीं करते वे नरक गति का आयुष्य बांध लेते हैं।

2. **महापरिग्रह** :- इसका अर्थ है वस्तुओं पर अत्यंत मूर्च्छाभाव या आसक्ति रखना। अत्याधिक परिग्रह रखने का भाव यानी अत्यधिक संचय करने की वृत्ति। जैसे मम्मण सेठ ने सांसारिक पदार्थों पर अत्यंत आसक्ति रखी। उसने हीरे - मोती रत्नों से जडित एक बैल बना लिया था और वैसा दूसरा बैल बनाने के लिए वह कठोर श्रम कर रहा था किंतु मरने के बाद उसे सातवीं नरक में जाना पडा जहां भयंकर यातनाएं सहनी पडती है। ममता - मूर्च्छा भाव ही वस्तुतः परिग्रह का केन्द्रिय अर्थ है। बाह्य वस्तुओं पर या अपने शरीर आदि पर जो आसक्ति है वह परिग्रह है। यहां महा शब्द से ममता भाव की तीव्रता सूचित की गई है। विशाल धन - संपत्ति होने मात्र से कोई महापरिग्रही नहीं हो जाता । जैसे आनंद, कामदेव आदि श्रमणोपासकों के पास बारह क्रोड सोनैया आदि की संपत्ति थी किंतु उस धन के प्रति उनको तीव्र ममता नहीं थी। भरत चक्रवर्ती के पास छः खण्ड का साम्राज्य तथा विशाल वैभव था किंतु वे महापरिग्रही नहीं थे क्योंकि वे अनासक्त थे। जिसके पास संपत्ति नहीं है परंतु संपत्ति की कल्पना करके जो आसक्ति करता है वह भी नरक गति का आयुष्य कर्म बांध लेता है। मनुष्य के पास संपत्ति - वैभव हो या न हो जहां आसक्ति है वहाँ परिग्रह है।

3. **पंचेन्द्रिय वध** :- मनुष्य, पशु - पक्षी आदि पंचेन्द्रिय जीव संकल्प की बुद्धि से वध करना। जो लोग देव - देवीयों को बलि चढाने, तस्करी - डकैती करने, शिकार करने या कसाईखाना चलाने के लिए आतंकवाद से प्रेरित होकर या क्रूरतापूर्वक द्वेषवश निर्दोष मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों, मछलियों आदि पंचेन्द्रिय प्राणियों का वध करते हैं और गर्भपात कराते हैं वे भी नारकीय जीवन प्राप्त करते हैं।

4. **मांसाहार** :- मांस, मछली और अण्डों आदि शा इतन में मिश्रित पदार्थों का सेवन करना - कराना भी तीव्र हिंसाकारक परिणाम होने से नरकायु का बंध कराता है।

* **तिर्यंचायु** :- जिस कर्म के उदय से आत्मा को तिर्यंच योनी में जीवन बिताना पडे वह तिर्यंचायु कर्म है। तिर्यंचायु के कर्मबंध के चार कारण है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

1. **गूढ माया** :- कपट को कपट के द्वारा छिपाना, बाहर से मित्रता - सहयोग - सद्भाव दिखाना और भीतर से कषाय, वैरभाव और आक्रोश रखना। मुख से राम, बगल में छूरी कहावत की भांति धूर्तता या ठगी करने से भी तिर्यंचायुष्य का बंध होता है।

2. **सशल्य (माया करना)** :- कपट और शल्य युक्त होना, महाव्रत -नियम भंग होने पर आलोचना नहीं करनेवाला, किसी अन्य के नाम से आलोचना लेकर शल्य सहित आलोचना करने वाला तिर्यंच आयुष्य का बंध करता है। लक्ष्मणा साध्वी ने सशल्य आलोचना ग्रहण करके भारी संसार का उपार्जन किया था।

3. **असत्य भाषण** :- सत्य आत्मा का स्वभाव है और झूठ बोलना एक असहज तनाव है। क्रोध, लोभ, भय और स्वार्थ के कारण मनुष्य असत्य भाषण करता है और तिर्यंचायु का बंध कर लेता है। असत्य भाषण का परिणाम पशु - जीवन की प्राप्ति के रुप में मिलता है किंतु झूठ बोलते समय अनेक दोषों की और कुसंस्कारों की जो पुष्टि होती है वह महाघातक है।

4. **झूठा तोल - माप करना** :- खरीदने के तोल - माप और बेचने के तोल - माप भिन्न - भिन्न रखना। व्यावहारिक जगत् में छल - कपट करना विश्वासघात है। परंतु धार्मिक जगत् में छल - कपट महाघातक हैं जो लोग धर्मके नाम पर पाखण्ड फैलाते हैं, दम्भ - दिखावा करते हैं भोल लोगों को ठगते हैं उसके कटु परिणाम इस जन्म में नहीं, अगले जन्म में भी भोगने पडते हैं । इसी बात को सूत्रकृतांग सूत्र में स्पष्ट कहा है '' जो माया पूर्वक आचरण करता है वह अनंत बार जन्म - मरण करता है।

✲ **मनुष्यायुष्य** :- जिस कर्म के उदय से मनुष्य गति में जन्म हो अथवा जिस कर्म के उदय से आत्मा को अमुक समय तक मनुष्यभव में रहना पडे उसे मनुष्यायुष्य कर्म कहते हैं। चार कारणों से आत्मा मनुष्यायु कर्म का बंध करती हैं । जैसे 1. सरलता 2. विनम्रता 3. दयालुता 4. अमत्सरता (ईर्ष्या रहित होने से)

1. **सरलता** :- मन - वचन - काया की एकरुपता को सरलता कहते हैं। जहां हृदय की सरलता हो वहां धर्म के बीजों का वपन होता है। इसी कारण प्रकृति की भद्रता को मनुष्यायु बंध का कारण कहा है।

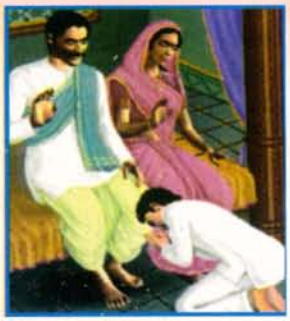

2. **विनम्रता** :- विनम्रता का अभिप्राय दब कर चलना या डर कर रहना नहीं है। विनम्रता का अर्थ है अन्तस् से झुकना। झुकने से हृदय के द्वार खुलते हैं और ऐसा विनय भाव ही मनुष्यायु का बंध कराता है।

3. **दयालुता** :- दूसरों के दुःख में दुःखी होना दया है। दयापूर्ण हृदय से सद्भाव एवं सहयोग का जन्म होता है। अपने सुख का त्याग करके भी दूसरों के कष्टों को दूर करने का भाव जिस हृदय में हो वह मनुष्यायु का बंध करता है।

4. **ईर्ष्या रहित होना** :- ईर्ष्या एक प्रकार की जलन है जिसका निशाना दूसरों की तरफ होता है किंतु व्यक्ति स्वयं घायल हो जाता हैं ईर्ष्या की अग्नि समस्त सुखों को जली देती है। दूसरों के सुखों को देखकर जो व्यक्ति जलता - कुढता है उसे मनुष्यायु प्राप्त नहीं होती।

* **देवायुष्य** :- जिस कर्म के उदय से आत्मा को अमुक समय तक देवगति में जीवन व्यतीत करना पडता है उसे देवायु कहते हैं। देव - भव की निश्चित आयु पूरी होने पर देवता वहां चाह कर भी एक क्षण अधिक नहीं रह सकते। देवायुष्य बंध के चार कारण है :- 1. सराग - संयम 2. संयमासंयम 3. बाल तप और 4. अकाम निर्जरा

1. **सराग - संयम** :- संयम का अर्थ है आत्मा को पापों से दूर कर लेना। हिंसादि सभी पापों से विरति रुप चारित्र ग्रहण कर लेने पर भी जब तक राग या कषाय का अंश शेष है तब तक वह संयम शुद्ध नहीं होने से उसे सराग - संयम कहते हैं। शुद्ध संयम से कर्मक्षय होता है किंतु रागयुक्त संयम होने के कारण देवायुकर्म का बंध होता है।

2. **संयमासंयम** :- इसका अर्थ है कुछ संयम और कुछ असंयम। इसे देशविरति चारित्र कहते हैं। श्रावक के व्रत में स्थूल रुप से हिंसा, झूठ, चोरी आदि का प्रत्याख्यान होता है किंतु सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों की आरम्भजा हिंसा का सर्वथा त्याग नहीं होता। ऐसे संयमासंयम का पालन करने वाला गृहस्थ भी देवायु का बंध करता है।

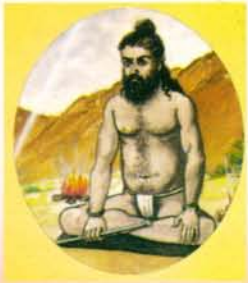

3. **बाल तप** :- इसका अर्थ है अज्ञान युक्त तप या सम्यक् ज्ञान से रहित तप जिस तप में आत्मशुद्धि का लक्ष्य न होकर अन्य कोई भौतिक या लौकिक लक्ष्य हो उसे बाल तप कहते हैं। जैसे धूनी रमाना, वृक्षों के साथ स्वयं को उलटा बांध देना, ठण्डे पानी में खडे रहना, महीनों तक तलघर या गुफा में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तप बाल तप हैं सम्यगज्ञान के अभाव में किया गया यह अज्ञान तप भी देवायु का बंध कराता है। आगमों में ऐसे अनेक बाल तपस्वियों का वर्णन है। तामली तापस, अग्निशर्मा आदि भी बाल तप के फलस्वरुप देवगति में गये।

4. **अकाम निर्जरा** :- अनिच्छा से या दबाव से, भय से या पराधीनता से, लोभवश या मजबूरी से भूख आदि के कष्ट को सहन करना अकाम निर्जरा है। यद्यपि पेड - पौधे, नारकी आदि जीव भयंकर कष्ट सहते है, उन्हें अनिच्छा से कष्ट सहना पडता है तथापि सम्यग्ज्ञान न होने से वे कष्ट के समय समभाव एवं आत्म - चिंतन नहीं कर पाते । मजबूरी में कष्ट सहने से उनकी अकाम निर्जरा होती है किंतु साथ ही दुर्ध्यान होने से वे देवायु का बंध नहीं कर पाते।

****

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* सूत्रार्थ *

* **मंदिरमार्गी परंपरा के अनुसार-** जग चिंतामणि (तपागच्छ)

- जयउ सामिअ (खरतरगच्छ)
- नमुत्थुणं (शक्रस्तव) सूत्र
- जावंत केवि साहू
- उवसग्गहरं सूत्र
- अरिहंत चेइयाणं सूत्र
- जं किंचि सूत्र
- जावंति चेइआइं
- परमेष्ठि नमस्कार
- जयवीयराय सूत्र

* **स्थानकवासी परंपरा के अनुसार-** • नमुत्थुणं

- इच्छामि णं भंते का पाठ
- आगमे तिविहे का पाठ
- चत्तारि मंगलं का पाठ
- इच्छामि ठामि का पाठ
- दर्शन सम्यक्त्व का पाठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* जगचिंतामणि - सुत्तं *

जगचिंतामणि :-
जगत् में चिंतामणि रत्न समान।

जगचिंतामणि ! जगहनाह !
जग गुरु ! जग रक्खण !
जग बंधव ! जग - सत्थवाह !
जग भाव विअक्खण !
अट्ठावय संठविय रुव !
कम्मट्ठ विणासण !
चउवीसं पि जिणवर !
जयंतु अप्पडिहय - सासण ! ।।1।।

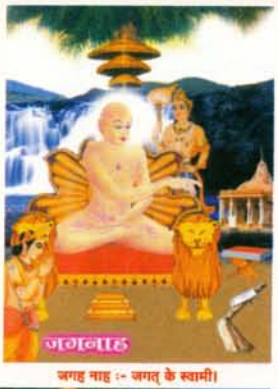

जगह नाह :- जगत् के स्वामी।

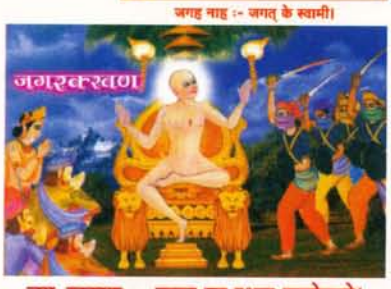

जग-रक्खण :- जगत् का रक्षण करनेवाले।

जग - गुरु :- समस्त जगत् के गुरु।

कम्मभूमिहिं कम्मभूमिहिं
पढमसंघयणि, उक्कोसय सत्तरिसय,
जिणवराण विहरंत लब्भइ,
नवकोडिहिं केवलीण, कोडिसहस्स नव साहु गम्मइ।
संपइ जिणवर वीस मुणि,
विहुं कोडिहिं वरनणी, समणह कोडि सहस्स, दुअ,
थुणिज्जइ निच्च विहाणि ।।2।।

जग बंधव :- जगत के बंधु

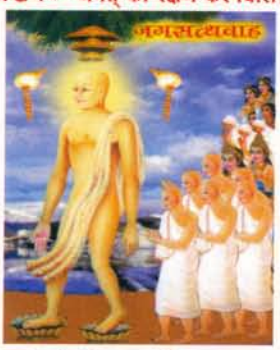

जग सत्थवाह :- जगत के इष्ट स्थल पर (मोक्ष में) पहुंचानेवाले जगत् के उत्तम सार्थवाह।

जयउ सामिय ! जयउ सामिय !
रिसह सत्तुंजि, उज्जिंति पहु - नेमिजिण !
जयउ वीर ! सच्चउरि मंडण !
भरुअच्छहिं मुणिसुव्वय !
महुरि पास ! दुह - दुरिअ - खंडण अवर
विदेहिं तित्थयरा, चिहुं दिसि विदिसि जिं के वि,
तिआणागय - संपइय, वंदुउं, जिण सव्वे वि ।।3।।
सत्ताणवइ सहस्सा, लक्खा छप्पन्न अट्ठकोडिओ।
बत्तीस सय बासीयाइं, तिअलोए चेइए वंदे ।।4।।
पन्नरस कोडि सयाइं, कोडी बायाल लक्ख अडवन्ना।
छत्तीस सहस असीइं, सासय बिंबाइं पणमामि।। ।।5।।

जग भाव विअक्खण :-
जगत् के सर्वभावों को जानने में तथा प्रकाशित करने में निपुण।

अट्ठावय संठविय रुव :-
अष्टापद पर्वत पर जिनकी प्रतिमाएँ स्थापित की हुई है ऐसे।

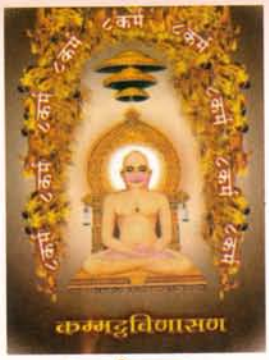

कम्मट्ठ विणासरण :-
आठो कर्मों का नाश करनेवाले
चउवीसं पि :- चौबीसों
जिणवर :-
हे जिनवर ! ऋषभादि तीर्थंकर
जयंतु :- आपकी जय हो।

अप्पडिहय सासण :-
अखण्डित शासनवाले, अबाधित उपदेश देनेवाले।

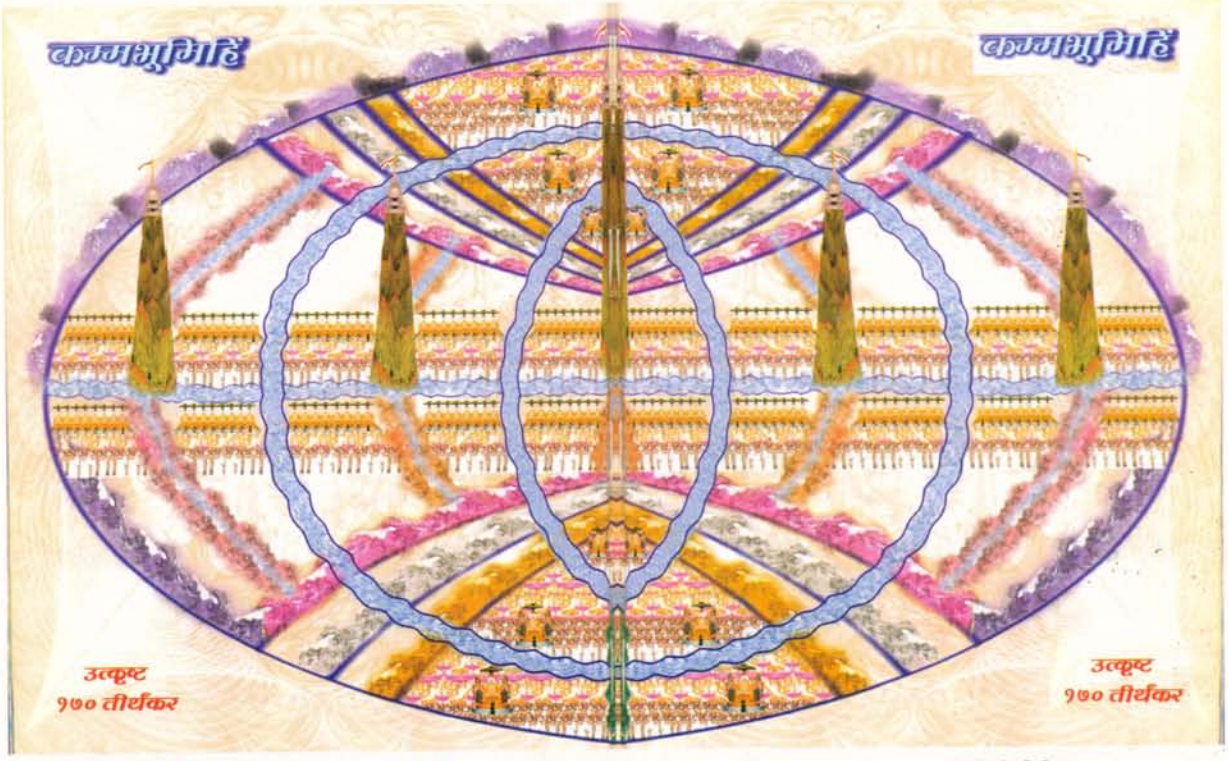

कम्मभूमिहिं :- कर्मभूमियों में। पढमसंघयणि :- प्रथम संहननवाले, वज्र ऋषभ नाराच संघयण वाले। संघयण हड्डियों की विशिष्ट रचना।
उक्कोसय :- अधिक से अधिक। सत्तरिसय :- एक सौ सत्तर (170)। जिणवराण :- जिनेश्वरों की संख्या।
विहरंत :- विचरण करते हुए विद्यमान। लब्भइ :- प्राप्त होती है। नवकोडिहिं :- नौ करोड। केवलीण :- केवलियों की, सामान्य केवलियों की।
कोडिसहस्स नव :- नव हजार करोड। साहु गम्मइ :- साधु होते है, ज्ञानी होते हैं। संपइ :- वर्तमानकाल में।
जिनवर :- तीर्थंकर। वीस :- बीस। मुणि :- मुनि। बिहुं कोडिहिं :- दो करोड। वरनाणि :- केवलज्ञानी। समणह :- श्रमणों की संख्या
कोडि - सहस्स दुअ :- दो हजार करोड । थुणिज्जइ :- स्तवन किया जाता है। निच्च - नित्य। विहाणि :- प्रातः काल में।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जयउ सामिय :- हे स्वामी ! जय हो। रिसह :- श्री ऋषभदेव। सत्तुंजि :- शत्रुंजय गिरि पर।

उज्जित :- श्री गिरनार पर्वत पर। पहु नेमि जिण :- हे प्रभो नेमिजिन।

जयउ :- आपकी जय हो।
वीर :- हे महावीर स्वामी।
सच्चउरि मंडण :-
साचोर नगर के मंडनरुप।

भरुअच्छहिं मुणिसुव्वय :- भरुच में विराजित मुनिसुव्रत प्रभो।

महुरि पास :-
मथुरा में विराजित है पार्श्वनाथ प्रभो।
दुह - दुरिअ - खंडण :-
दुःख और पाप का नाश करनेवाले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

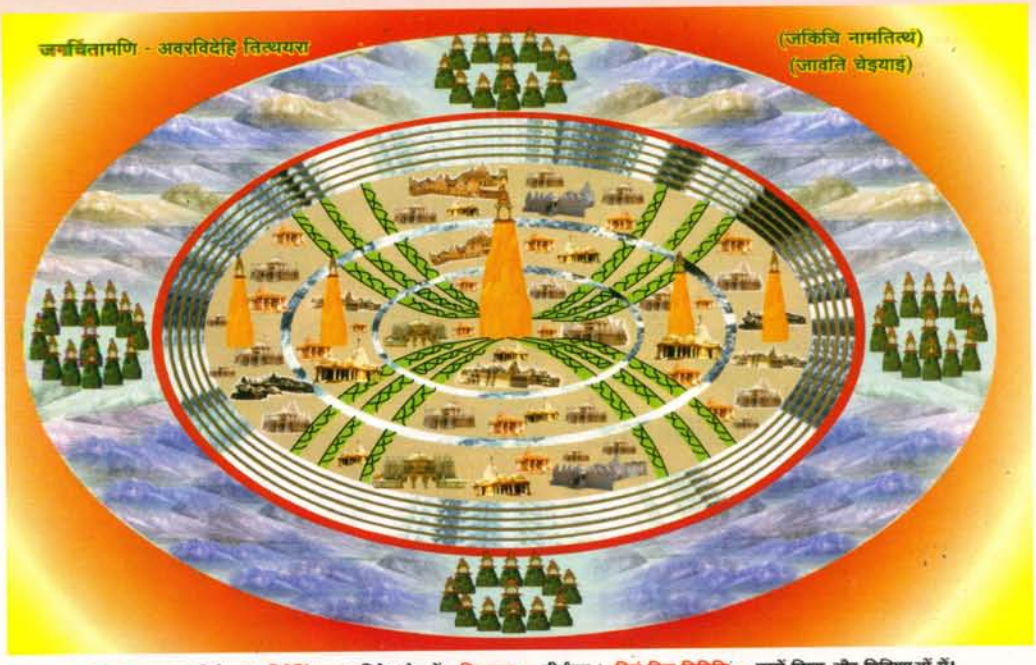

अवर :- अन्य (तीर्थंकर)। विदेहिं :- महाविदेह क्षेत्र में। तित्थयरा :- तीर्थंकर। चिहुं दिस विदिसि :- चारों दिशा और विदिशाओं में।
जिं के वि :- जो कोई भी। तीआणागय - संपइय :- अतीत - अनागत और भूत, भविष्यत तथा वर्तमानकाल में प्रादुर्भूत।
वंदु जिण सव्वेवि :- सब जिनों को वंदन करता हूँ। सत्ताणवइ - सहस्सा :- सत्ताणवे हजार (97,000)।
लक्खा छप्पन्न :- छप्पन लाख। (56,00,000)। अट्ठ कोडीओ :- आठ करोड। (8,00,000,00)।
बत्तीस सय :- बत्तीस सौ (3200) बासीयाइं :- बयासी (82) तिअ - लोए :- तीनों लोक में।
चेइए - चैत्य जिन प्रासादों को। वंदे :- मैं वंदन करता हूँ। पन्नरस कोडि सयाइं :- पंद्रहसौ करोड (15000000000)
कोडी बायाल :- बयालीस करोड (42,00,000,00)। लक्ख अडवन्ना :- अट्ठावन लाख (5800000)।
छत्तीस सहस :- छत्तीस हजार (36000)। असीइं :- अस्सी (80)। सासय बिंबाइं :- शाश्वत बिम्बों को। पणमामि :- मैं प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ :- जगत् में चिंतामणि - रत्न समान ! जगत् के स्वामी ! जगत् के गुरु ! जगत् का रक्षण करनेवाले ! जगत् के निष्कारण वन्धु ! जगत् के उत्तम सार्थवाह ! जगत् के सर्व भावों को जानने में तथा प्रकाशित करने में निपुण ! अष्टापद पर्वतपर (भरत चक्रवर्तीद्वारा) जिनकी प्रतिमाएं स्थापित की गयी हैं ऐसे ! आठों कर्मों का नाश करनेवाले तथा अबाधित (धारा प्रवाह से) उपदेश देने वाले ! हे ऋषभादि चौबीसों तीर्थंकरों। आपकी जय हो।

कर्मभूमियों में पांच भरत, पांच ऐरावत और पांच महाविदेह में विचरण करते हुए वज्र - ऋषभ - नाराच संघयण वाले जिनों की संख्या अधिक से अधिक एक सौ सत्तर की होती है, सामान्य केवलियों की संख्या अधिक से अधिक नौ करोड की होती है और साधुओं की संख्या अधिक से अधिक नौ हजार करोड अर्थात् नब्बे अरब की होती हैं वर्तमान काल में तीर्थंकर बीस है, केवलज्ञानी मुनि दो करोड है और श्रमणों की संख्या दो हजार करोड अर्थात् बीस अरब है जिनका कि नित्य प्रातः काल में स्तवन किया जाता है।

हे स्वामिन ! आपकी जय हो ! जय हो ! शत्रुंजय पर स्थित हे ऋषभदेव ! उज्जयंत (गिरनार) पर विराजमान हे प्रभो नेमिजिन ! सांचोर के श्रृङ्गाररुप हे वीर ! भरुच में बिराजित हे मुनिसुव्रत। मथुरा में विराजमान, दुःख और पाप का नाश करनेवाले हे पार्श्वनाथ ! आपकी जय हो, तथा महाविदेह और ऐरावत आदि क्षेत्रों में एवं चार दिशाओं और विदिशाओं में जो कोई तीर्थंकर भूतकाल में हो गये हो, वर्तमानकाल में विचरण करते हो और भविष्य में इसके पश्चात होनेवाले हो, उन सभी को मैं वंदन करता हूँ। तीन लोक में स्थित आठ करोड सत्तावन लाख, दो सौ बयासी (8,57,00,282) शाश्वत चैत्योंका मैं वंदन करता हूँ। तीन लोक में विराजमान पंद्रह अरब, बयालीस करोड, अट्ठावन लाख, छत्तीस हजार अस्सी (15,42,58,36080) शाश्वत जिन बिम्बों को मैं प्रणाम करता हूँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* जयउ सामिय चैत्यवंदन *

जयउ सामिय ! जयउ सामिय ! रिसह ! सत्तुंजि,
उज्जिति पहु - नेमिजिण ! जयउ वीर ! सच्चउरि मंडण !
भरुअच्छहिं मुणिसुव्वय ! महुरिपास ! दुह - दुरिअ - खंडण ||1||
अवर विदेहिं तित्थयरा, चिहुं दिसि विदिसि जिं के वि,
तिआणागय - संपइय, वंदुं, जिण सव्वे वि ||2||
कम्मभूमिहिं कम्मभूमिहिं पढम संघयणि,
उक्कोसय सत्तिरसय, जिणवराण विहरंत लब्भइः
नवकोडिहिंकेवलिण, कोडि सहस्स नव साहु गम्मइ।
संपइ जिणवरण बीस मुणि बिहुं कोडिहिं वरनाण,
समणह कोडि सहस्स दुअ, थुणिज्जइ निच्च विहाणि ||3||
सत्ताणवइ सहस्सा, लक्खा छप्पन्न अट्ठकोडिओ।
चउसय - छायासीया, तिअ लोए चेइए वंदे ||4||
वंदे नवकोडिसयं, पणवीसं कोडि लक्ख तेवन्ना।
अट्ठावीस सहस्सा, चउसय अट्ठासिया पडिमा ||5||

जयउ सामिय :- हे स्वामी ! जय हो। रिसह :- श्री ऋषभदेव। सत्तुंजि :- शत्रुंजय गिरि पर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उज्जिंत :- श्री गिरनार पर्वत पर। पहु नेमि जिण :- हे प्रभो नेमिजिन।

जयउ :- आपकी जय हो।
वीर :- हे महावीर स्वामी।
सच्चउरि मंडण :-
साचोर नगर के मंडनरुप।

भरुअच्छहिं मुणिसुव्वय :- भरुच में विराजित मुनिसुव्रत प्रभो।

महुरि पास :-
मथुरा में विराजित है पार्श्वनाथ प्रभो।
दुह - दुरिअ - खंडण :-
दुःख और पाप का नाश करनेवाले।

अवर :- अन्य (तीर्थंकर)। विदेहिं :- महाविदेह क्षेत्र में। तित्थयरा :- तीर्थंकर। चिहुं दिस विदिसि :- चारों दिशा और विदिशाओं में।
जि के वि :- जो कोई भी। तीआणागय - संपइय :- अतीत - अनागत और भूत, भविष्यत तथा वर्तमानकाल में प्रादुर्भूत।
वंदु जिण सव्वेवि :- सब जिनों को वंदन करता हूँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

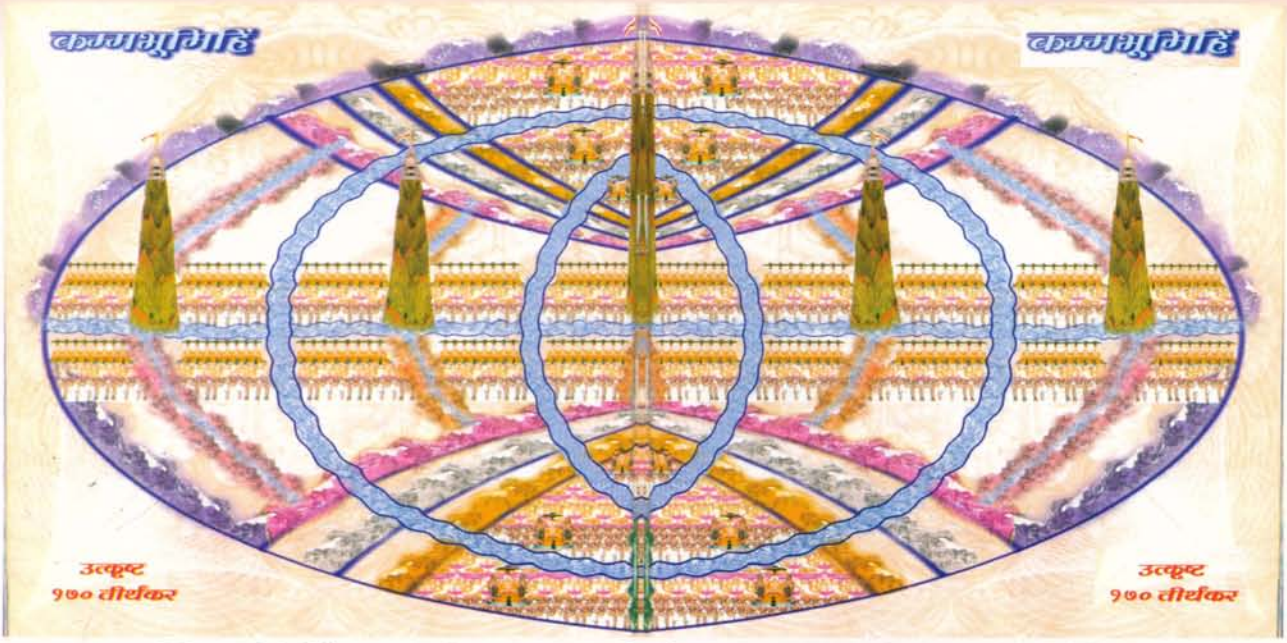

कम्मभूमिहिं :- कर्मभूमियों में। पढमसंघयणि :- प्रथम संहननवाले, वज्र ऋषभ नाराच संघयण वाले। संघयण हड्डियों की विशिष्ट रचना।
उक्कोसय :- अधिक से अधिक। सत्तरिसय :- एक सौ सत्तर (170)। जिणवराण :- जिनेश्वरों की संख्या।
विहरंत :- विचरण करते हुए विद्यमान। लब्भइ :- प्राप्त होती है। नवकोडिहिं :- नौ करोड। केवलीण :- केवलियों की, सामान्य केवलियों की।
कोडिसहस्स नव :- नव हजार करोड। साहु गम्मइ :- साधु होते है, ज्ञानी होते हैं। संपइ :- वर्तमानकाल में।
जिनवर :- तीर्थंकर। वीस :- बीस। मुणि :- मुनि। बिहुं कोडिहिं :- दो करोड। वरनाणि :- केवलज्ञानी। समणह :- श्रमणों की संख्या
कोडि - सहस्स दुअ :- दो हजार करोड । थुणिज्जइ :- स्तवन किया जाता है। निच्च - नित्य। विहाणि :- प्रातः काल में।
सत्तणवइ - सहस्सा :- सत्ताणवे हजार। लक्खा छप्पन्न :- छप्पन लाख। अट्ठ कोडिओ :- आठ करोड। चउ - सय :- चार सौ।
छायासीया :- छयासी। तिअ - लोए :- तीन लोक में। चेइए - चैत्य जिन मंदिर में। वंदे :- वंदन करता हूँ। नव कोडि :- नौ करोड।
सयं :- सौ। पणवीसंकोडी :- पच्चीस करोड। लक्खतेवन्ना :- त्रेपन लाख। अट्ठावीस सहस्सा :- अट्ठाइस हजार। अट्ठासीया पडिमा :- अट्ठासी प्रतिमाओं को।

भावार्थ :- शत्रुंजय पर्वत पर प्रतिष्ठित हे श्री ऋषभदेव प्रभो ! आपकी जय हो। श्री गिरनार पर्वत पर विराजमान हे नेमिनाथ भगवन ! आपकी जय हो। साचोर नगर के भूषणरुप हे श्री महावीर प्रभो ! आपकी जय हो। भरुच में रहे हुए हे मुनिसुव्रतस्वामी। आपकी जय हो। टिटोई गांव अथवा मथुरा में विराजित हे पार्श्वनाथ प्रभो ! आपकी जय हो। ये पांचों जिनेश्वर दुःखों तथा पापों का नाश करनेवाले हैं। पांचों महाविदेह में विद्यमान जो तीर्थंकर है एवं चार दिशाओं तथा चार विदिशाओं में अतीतकाल, अनागतकाल और वर्तमानकाल संबंधि जो कोई भी तीर्थंकर है उन सबको मैं वंदन करता हूँ। वे सब दुखों और पापों का नाश करनेवाले हैं।

सब कर्मभूमियों में (जिन भूमियों मं असि, मसी, कृषि रुप कर्म होते हैं ऐसे पांच भरत, पांच ऐरावत, और पांच महाविदेह क्षेत्र में जहां प्रत्येक में बत्तीस - बत्तीस विजय होने से कुल 160 विजय हैं, कुल मिलाकर 5 भरत, 5 ऐरावत तथा पांच महाविदेहों के 160 विजय = कुल 170 कर्म भूमियों में) प्रथम संघयण (वज्र - ऋषभ - नाराच - संहनन) वाले अधिक से अधिक 170 तीर्थंकर की संख्या पायी जाती है। सामान्य केवलियों की अधिक से अधिक संख्या नौ करोड (90000000) की होती है और सामान्य साधुओं की संख्या अधिक से अधिक नौ हजार करोड अर्थात् नब्बे अरब (90000000000) की होती है, वर्तमानकाल में सर्वसंख्या जघन्य है अर्थात् सीमंधरस्वामी आदि बीस तीर्थंकर (प्रत्येक महाविदेह के 8वें, 9वें, 24वें, 25वें विजय में एक - एक तीर्थंकर) पांचों महाविदेह क्षेत्रों में विचरते हैं। सामान्य कवेलज्ञानी मुनियों की संख्या दो करोड (20000000) तथा सामान्य साधुओं की संख्या दो हजार अर्थात् बीस अरब (20000000000) है। इन सबकी निरन्तर प्रातः काल में मैं स्तुति करता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊर्ध्वलोक, तिरछेलोक तथा अधोलोक इन तीनों लोकों में कुल आठ करोड छप्पन लाख सत्ताणवे हजार चार सौ छयासी (85697486) शाश्वत चैत्य है उनको मैं वंदन करता हूँ।

उपर्युक्त सब चैत्यों में विराजमान नौ सो करोड (नौ अरब) पच्चीस करोड, त्रेपन्न लाख, अट्ठाईस हजार, चार सौ, अट्ठासी (9255328488) शाश्वत जिन प्रतिमाओं को मैं वंदन करता हूँ।

* जंकिंचि सूत्र *

जंकिंचि नाम तित्थं, सग्गे पायालि माणुसे लोए।
जाइं जिण बिंबाइं, ताइं सव्वाइं वंदामि ।।1।।

* शब्दार्थ *

जं किंचि :- जो कोई।
नाम तित्थं :- नाम मात्र से भी प्रसिद्ध ऐसे तीर्थ है।
सग्गे :- स्वर्ग में।
पायालि :- पाताल में।
माणुसे लोए :- मनुष्य लोक में।
जाइं :- जो।
जिण बिंबाइं :- जिनबिम्ब है।
ताइं :- उन।
सव्वाइं :- सब को।
वंदामि :- मैं वंदन करता हूँ।

भावार्थ :- (सामान्य जिन तीर्थों तथा जिन बिम्बों को नमस्कार) स्वर्गलोक, पाताल लोक और मनुष्य लोक में (उर्ध्व, अधो तथा मध्यलोक में) जो कोई नाम मात्र से भी तीर्थ है तथा उनमें जो प्रतिमाएं विराजमान है, उन सबको मैं वंदन करता हूँ।

* णमुत्थुणं (शक्रस्तव) सूत्र *

णमुत्थुणं अरिहंताणं
सुरासुरेन्द्र पूजित व अष्ट प्रातिहार्य युक्त

णमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं ।।1।।
आइगराणं, तित्थयराणं,
सयं संबुद्धाणं ।।2।।
पुरिसुत्तमाणं,
पुरिस - सीहाणं, पुरिस - वर पुंडरीआणं,
पुरिस - वरगंधहत्थीणं ।।3।।

भगवंताणं
सर्वोत्तम ऐश्वर्य रूप यश श्री धर्म प्रवर्तक

आइगराणं
श्रुत धर्म द्वादशांगी के प्रारम्भकर्ता

लोगुत्तमाणं, लोग - नाहाणं,
लोग - हिआणं,
लोग - पईवाणं
लोग - पज्जोअगराणं ।।4।।

तित्थयराणं
चतुर्विध संघ को स्थापित करने वाले

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

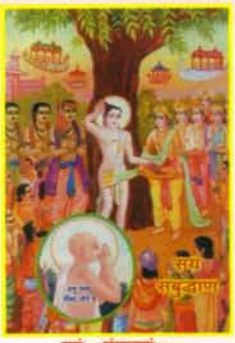

सयं - संबुद्धाणं :-
स्वयं बोध प्राप्त किये हुओं को।

अभय - दयाणं,
चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं,
सरण - दयाणं
बोहि - दयाणं ।।5।।
धम्म - दयाणं,
धम्म - देसयाणं,
धम्म - नायगाणं,
धम्म - सारहीणं,

पुरिस वर पुंडरीआणं :-
पुरुषों में उत्तम श्वेतकमल के समान को।

धम्म - वरचाउरंत चक्कवट्टीणं ।।6।।
अप्पडिहय वर नाण - दंसण - धराणं,
विअट्ट - छउमाणं ।।7।।
जिणाणं जावयाणं,
तिन्नाणं तारयाणं,
बुद्धाणं बोहयाणं,

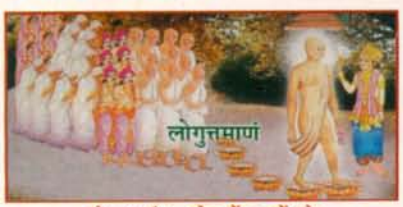

लोगुत्तमाणं :- लोक में उत्तमों को।

मुत्ताणं मोअगाणं ।।8।।
सव्वन्नूणं, सव्वदरिसीणं,
सिव - मयल - मरुअ -
मणंत मक्खय मव्वावाह
मपुणरावित्ति सिद्धिगइ नामधेयं
ठाणं संपत्ताणं
णमो जिणाणं जिअ भयाणं ।।9।।

लोग हिआणं :- लोक का हित करनेवालों को।

जे अ अईआ सिद्धा,
जे अ भविस्संति णागए काले।
संपइ अ वट्टमाणा,
सव्वे तिविहेण वंदामि ।।10।।

लोग पईवाणं :- लोक में दीपकों को।

पुरिसुत्तमाणं :-
पुरुषों में ज्ञानादि गुणों से उत्तमों को।

पुरिस सीहाणं :-
पुरुषों में सिंह समान निर्भयों को।

पुरिस वरगंधहत्थीणं :-
पुरुषों में सात प्रकार की ईतियाँ दूर करने सर्वश्रेष्ठ गंधहस्ति सदृशों को।

मोक्ष मार्ग के प्रापक - संरक्षक - योग-क्षेमकर्ता
बोधी बीज जिसे प्राप्त नहीं है उसे प्राप्त करना - योग
जिन्हें प्राप्त है उसका रक्षण करना - क्षेम

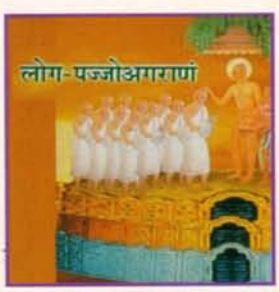

लोग - पज्जोअगराणं :-
लोक में अतिशय प्रकाश करनेवालों को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभय दयाणं :- अभय प्रदान करनेवालों को।

चक्खु दयाणं :- श्रुतरुपी चक्षु देने वालों को।

मग्ग दयाणं :-
धर्म का मार्ग दिखलाने वालों का

सरण दयाणं :- शरण देनेवालों को।

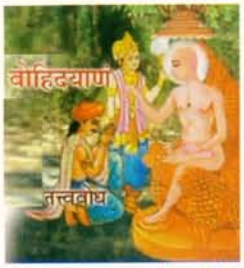

बोहि दयाणं :- सम्यक्त्व देनेवालों को।

धम्म दयाणं :-
धर्म का स्वरुप समझानेवालों को।

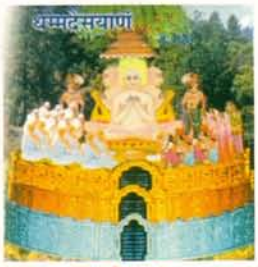

धम्म देसयाणं :-
धर्म का उपदेश देने वालों का।

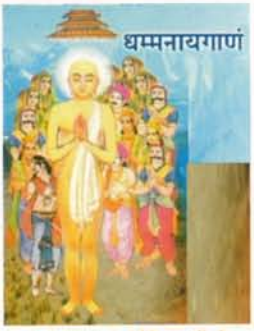

धम्म नायगाणं :- धर्म के नायकों को।

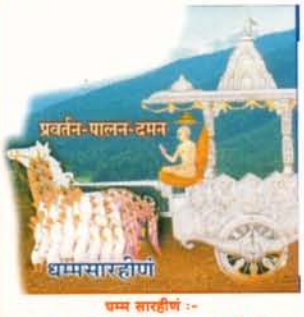

धम्म सारहीणं :-
धर्म रथ को चलाने में कुशल सारथियों को।

धम्म वर चाउरंत चक्कवट्टीणं :- धर्मरुपी श्रेष्ठ चतुरन्त चक्र धारण करने वालों को, चार गतियों का नाश करने वाले तथा धर्मचक्र के प्रवर्तक उत्तम चक्रवर्तियों को।

अप्पडिहय-वर-नाणदसण-धराणं
चार घाती कर्म क्षय कर परमात्मा अबाधित केवल ज्ञान-दर्शन से समस्त विश्व को देखते हैं।

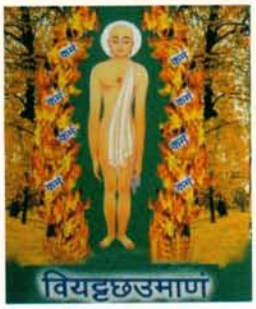

वियट्ट - छउमाणं :-
घाती कर्मों से रहित होने से जिनकी छद्मस्थावस्था चली गई है उनको।

जिणाणं जावयाणं :-
राग - द्वेष को जीतनेवाले और जितानेवाले

तिन्नाणं तारयाणं :- स्वयं संसार समुद्र से पार हो गये है तथा दूसरों को भी पार पहुंचानेवालों का।

बुद्धाणं बोहयाणं :-
स्वयं बुद्ध है तथा दूसरों को भी बोध देनेवालों का।

मुत्ताणं मोअगाणं :- स्वयं मुक्त है और दूसरों को मुक्त कराने वालों का
सव्वन्नूणं सव्व दरिसिणं :- सर्वज्ञों को, सर्व दर्शियों को

शिव - उपद्रव रहित,
अचल - स्थिर,
अरुज - रोग रहित,
अनंत - अंत रहित,
अक्षय - क्षय रहित,
अव्याबाध - कर्म जन्य पीड़ा रहित,
अपुनरावृत्ति - पुनरागमण रहित

सिद्धिगइ नाम धेयं :- सिद्धगति नाम वाले
ठाणं संपत्ताणं :- स्थान, मोक्ष को प्राप्त किये हुओं को
नमो जिणाणं :- नमस्कार हो जिनों को
जिअ भयाणं :- भय जीतने वालों को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जे :- जो
अ :- और
अईआ :- भूतकाल में, अतीतकाल में।
सिद्धा :- सिद्ध हुए है।
जे :- जो
अ :- और
भविस्संति :- होंगे।
अणागए :- भविष्य।
काले :- काल में।
संपइ :- वर्तमान काल में।
वट्टमणा :- विद्यमान है।
सव्वे :- उन सबको।
तिविहेण :- त्रिविध, मन - वचन - काया से।
वंदामि :- मैं वंदन करता हूँ।

भावार्थ :- नमस्कार हो अरिहंत भगवंतों को। श्रुतधर्म (द्वादशांगी) की आदि करने वालों को, चतुर्विध संघ की स्थापना करनेवालों को, अपने आप बोध प्राप्त किये हुओं को।

लोक में उत्तमों को, लोक के स्वामियों को, लोक के हितकारियों को, लोक के प्रदीपों को, और लोक में अतिशय प्रकाश करने वालों को,

अभय प्रदान करने वालों को, श्रुतरुपी नेत्रों को दान करनेवालों को, धर्ममार्ग दिखलाने वालों को, शरण देने वालों को और बोधिवीजसम्यक्त्व देने वालों को

धर्म का स्वरुप समझानेवालों को, धर्म का उपदेश देनेवालों को, धर्म के नेताओं को, नायकों को, धर्मरुपी रथ को चलाने में दक्ष सारथियों को, तथा चार गति का नाश करनेवाले और धर्म चक्र के प्रवर्तक उत्तम चक्रवर्तियों को, नष्ट न होने वाले केवलज्ञान केवलदर्शन धारण करनेवालों को, घातीकर्मों के नाश करने से छद्मस्थावस्था रहितों को, स्वयं राग द्वेष को जीतने तथा दूसरों को राग - द्वेष जिताने वालों को, स्वयं संसार समुद्र से तिरे हुओं तथा दूसरों को संसार समुद्र से तिराने वालों को, स्वयंबुद्धो तथा दूसरों को भी बोध देनेवालों को, स्वयं मुक्त होने वालों तथा दूसरों को भी मुक्ति दिलानेवालों को,

सर्वज्ञों को, सर्वदर्शियों को, उपद्रव रहित, निश्चल, व्याधि वेदना रहित, अन्तरहित, क्षयरहित, कर्मजन्य बाधा पीडाओं से रहित और अपुनरावृत्ति (जहां जाने के बाद संसार में वापिस आना नहीं रहता) ऐसी सिद्धि गति नामक स्थान को पाये हुओं को, ऐसे जिनों को, भय जीतने वालों को मेरा नमस्कार हो, (शक्रस्तव से भाव जिन को वंदन किया है)

जो भूतकाल में सिद्ध हो गये हैं, जो भविष्यकाल में सिद्ध होनेवाले हैं तथा जो वर्तमानकाल में सिद्ध विद्यमान है, उन सब को मैं शुद्ध मन, वचन और काया त्रिविध योग से वंदन करता हुं। (इस गाथा में द्रव्य जिन को वंदन किया गया है।)

जब तीर्थंकर भगवान देवलोक से च्यवकर माता के गर्भ में आते हैं तब शक्र (इन्द्र) इस सूत्र के द्वारा उनका स्तवन करते हैं। इसलिए शक्रस्तव कहलाता है।

* जावंति चेइआइं सूत्र *

जावंति चेइआइं, उडे अ अहे अ तिरिअ लोए अ।
स्ववाइं ताइं वंदे, इह संतो तत्थ संताइं ।।1।।

* शब्दार्थ *

जावंति :- जितने।
चेइआइं :- चैत्य, जिन बिम्ब।
उड्ढे :- ऊर्ध्व लोक में।
अ :- तथा ।
अहे :- अधो लोक में।
अ :- और
तिरिअलोए :- तिर्यग लोक में।
अ :- एवं।
सव्वाइं ताइं :- उन सबको।
वंदे :- मैं वंदन करता हूँ।
इह :- यहां
संतो :- रहता
तत्थ :- हुआ
संताइं :- रहे हुओं को।

भावार्थ :- ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिरछालोक में जितने भी चैत्य (तीर्थंकरों की मूर्तियां) है उन सबको मैं यहां रहता हुआ वंदन करता हूँ।

* जावंत के वि साहू *

जावंत के वि साहू, भरहेरवय - महाविहेदे अ।
सव्वेसिं तेसिं पणओ, तिविहेण तिदंड विरयाणं ।।1।।

जावंत :- जो। के :- कोई। वि :- भी। साहु :- साधु। भरहेवरवय - महाविदेहे :- भरत, ऐरावत और महाविदेह क्षेत्र में। अ :- और। सव्वेसिं तेसिं :- उन सबको। पणओ :- नमन करता हूँ। तिविहेण :- करना, कराना और अनुमोदन करना इन तीन प्रकारों से । तिदंड - विरयाणं :- जो तीन दंड से विराम पाये हुए हैं, उनको।

भावार्थ :- भरत - ऐरावत और महाविदेह क्षेत्र में स्थित जो कोई भी साधु मन, वचन और काया से पाप प्रवृत्ति करते नहीं, कराते नहीं, करते हुए अनुमोदन नहीं करते उनको मैं नमन करता हूँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* पंचपरमेष्ठि नमस्कार *

नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यः

भावार्थ :- अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओं को नमस्कार हो।

* उवसग्गहरं स्तोत्र *

उवसग्गहरं पासं, पासं वंदामि कम्म घण मुक्कं । विसहर विस निन्नासं, मंगल कल्लाण आवासं ।।1।।
विसहर फुलिंग मंतं, कंठेधारेइ जो सया मणुओ। तस्स गह रोग मारी दुट्ठजरा जंति उवसामं ।।2।।
चिट्ठउ दूरे मंतो, तुज्झ पणामो वि बहुफलो होइ। नर तिरिएसु वि जीवा, पावंति न दुक्ख दोगच्चं ।।3।।
तुह सम्मत्ते लद्धे चिंतामणि कप्पपायव ब्भहिए। पावंति अविग्घेणं, जीवा अयरामरं ठाणं ।।4।।
इअ संथुओ महायस ! भत्तिभर निब्भरेण हिअएण। ता देव ! दिज्ज बोहिं, भवे भवे पास जिणचंद ।।5।।

* शब्दार्थ *

उवसग्गहरं :- उपसर्गों को दूर करनेवाले।
पासं :- पार्श्व नामक यक्ष के स्वामी।
पासं :- तेईसवे तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान को।
वंदामि :- मैं वंदन करता हूँ।
कम्मघणमुक्कं :- कर्म समूह से मुक्त बने हुए
विसहर विस निन्नासं :- सांप के जहर का नाश करनेवाला।
मंगल कल्लाण आवासं :- मंगल और कल्याण के स्थान भूत।
विसहर फुलिंग मंतं :- विषधर स्फुलिंग नामक मंत्र को।
कंठे धारेइ :- कंठ में धारण करता है, स्मरण करता है।
जो :- जो
सया :- नित्य।
मणुओ :- मनुष्य।
तस्स :- उसके ।
गह रोग मारी दुट्ठजरा :- ग्रहचार, रोग, मारी (हैजा, प्लेग आदि) और कुपित ज्वर
1. ग्रह :- शनि आदि अनिष्ट ग्रहों का कुप्रभाव
2. रोग :- सोलह महारोग तथा अन्य रोग भी।
3. मारी :- जिन रोगों से बहुत जन संहार हो अथवा अभिचार या मरण प्रयोग से सहसा फूट निकलने वाले रोग।
4. दुष्ट ज्वर :- विषमज्वर, सन्निपात आदि।
जंति :- हो जाते हैं।
उवसामं :- शांत।
चिट्ठउ दूरे :- दूर रहे।
मंतो :- यह विषधर स्फुलिंग द्वारा मंत्र।
तुज्झ :- आपको किया हुआ।
पणामो :- प्रणाम।
वि :- भी
बहुफलो :- बहुत फल देने वाला।
होइ :- होता है।
नर तिरिएसु वि जीवा :- मनुष्य और तीर्यंच जीव भी
पावंति न :- नहीं पाते हैं।
दुक्ख दोगच्चं :- दुःख तथा दुर्दशा को
तुह :- आपका
सम्मभत्ते लद्धे :- सम्यग्दर्शन प्राप्ति होने पर।
चिंतामणी कप्पपायव ब्भहिए :- चिंतामणी रत्न और कल्पवृक्ष से भी अधिक।
पावंति - प्राप्त करते हैं।
अविग्घेण :- सरलता से विघ्नरहित होकर।
जीवा :- जीव।
अयरामरं ठाणं :- मोक्ष स्थान को, मुक्ति को।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इअ संथुओ - इस प्रकार स्तुति की है।

महायस :- हे महायशस्विन।

भतिब्भर निब्भरेण :- भक्ति से भरपूर

हिअएण :- हृदय से

ता :- इसलिए

देव :- हे देव

दिज्ज बोहिं :- सम्यक्त्व प्रदान करो।

भवे - भवे :- प्रत्येक भव में

पास जिणचंद :- हे पार्श्व जिणचंद्र

भावार्थ :- संपूर्ण उपद्रवों को दूर करनेवाला पार्श्व नाम का यक्ष जिनका सेवक है, जो कर्मों की राशि से मुक्त है, जिनके स्मरण मात्र से सर्प के विष का नाश हो जाता है, और जो मंगल तथा कल्याण के आधार है ऐसे भगवान श्री पार्श्वनाथ को मैं वंदन करता हूँ।

जो मनुष्य भगवान के नाम गर्भित विषधर स्फुलिंग मंत्र को हमेशा कंठ में धारण करता है अर्थात् पठन स्मरण करता है उसके प्रतिकूल ग्रह, कष्ट, साध्य रोग, भयंकर मारी अथवा मारण प्रयोग से सहा फूट निकलने वाले रोग और दुष्ट ज्वर ये सभी उपद्रव शांत हो जाते हैं।

उवसग्गहरं स्तोत्र चौदह पूर्वधर आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी ने बनाया है। इसके बारे में ऐसी कथा प्रचलित है:- कि भद्रबाहु स्वामि का बराहमिहर नामक भाई था, वह किसी कारण से ईर्ष्यावश होकर जैन साधुपन का त्याग करके दूसरे धर्म का अनुयायी हो गया था। तब से ज्योतिषशास्त्र द्वारा अपना महत्व बतलाकर जैन साधुओं की निंदा करने लगा। एक बार एक राजा की सभा में भद्रबाहु ने उसकी ज्योतिषशास्त्र विषयक भूल बतलाई इससे वह और भी अधिक जैन धर्म का द्वेषी हो गया। अंत में मरकर वह किसी हल्की योनि का देव हुआ और वहां पर पूर्वजन्म का स्मरण करने पर जैन धर्म पर उसका द्वेष फिर भडक उठा। इस द्वेष से अन्ध होकर उसने जैन संघ में मारी का उपद्रव किया। तब उसकी शांति के लिए श्री संघ की प्रार्थना पर श्री भद्रबाहु स्वामी ने सात गाथा का यह उवसर्गहर स्तोत्र बनाया। वह स्तोत्र पढने, स्मरण करने तथा सुनने से मारी शांत हो गई। ऐसा चमत्कार देखकर लोग निरंतर इस स्तोत्र का जाप पाठ करने लगे। इसके प्रभाव से धरणेन्द्र को प्रत्यक्ष होना पडता था। धरणेन्द्र की प्रार्थना से गुरु महाराज ने दो गाथाएँ निकाल दी। इस समय इस स्तोत्र में पांच गाथाएं है उनका स्मरण करने से सब प्रकार के उपद्रव - उपसर्ग शांत हो जाते हैं। श्री भद्रबाहु का समय ईसा पूर्व चौथी शताब्दी है।

हे भगवंत ! विषधर स्फुलिंग मंत्र की बात तो दूर रही सिर्फ आपको किया हुआ प्रणाम भी बहुत फलों को देता है। अर्थात् प्रणाम मात्र करने वाले जीव फिर वह चाहे मनुष्य गति में हो अथवा तिर्यंच गति में हो दुःख, दरिद्रता तथा दुर्दशा को नहीं पाते।

हे भगवन् ! चिंतामणी रत्न और कल्पवृक्ष से भी अधिक महिमा वाला आपका सम्यक्त्व पा लेने पर जीव किसी भी विघ्न के बिना सरलता से अजरामर स्थान अर्थात् मोक्ष पद को पाते हैं।

हे महायशस्वी प्रभो ! इस प्रकार भक्तिपूर्ण हृदय से आपकी स्तुति करके मैं चाहता हूँ कि भव - भव में मुझकों आपकी कृपा से सम्यक्त्व की प्राप्ति हो।

❊ पणिहाण सुत्तं ❊ (जय वीयराय सूत्र)

जय वीयराय ! जग गुरु !

होऊ ममं तुह पभावओ भयवं !

भव निव्वेओ मग्गाणुसारिआ

इट्ठफल सिद्धी ।।1।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जय वीयराय । जग गुरु । होऊ :- हो । मम :- मुझे । तुह :- आपके ।
पभावओ :- प्रभाव से, सामर्थ्य से

लोग विरुद्धच्चाओ,
गुरुजण पूआ परत्थकरणं च।
सुहगुरु जोगो तव्वयण
सेवणा आभवमखंडा ।।2।।
वारिज्जइ जइ वि नियाण बंधणं
वीयराय तुह समये।
तह वि मम हुज्ज सेवा,
भवे भवे तुम्ह चलणाणं ।।3।।
दुक्ख खओ कम्म खओ,
समाहि मरणं च बोहि लाभो अ।
संपज्जउ मह एअं तुह नाह !
पणाम करणेणं ।।4।।
सर्व मंगल मांगल्यं
सर्व कल्याण कारणम्
प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयंति शासनम् ।।5।।

मग्गाणुसारिआ :- मोक्षमार्ग में चलनेकी शक्ति

लोग विरुद्ध च्चाओ :- लोकनिंदा हो ऐसी प्रवृत्ति का त्याग,
लोक निंदा हो ऐसा कोई भी कार्य करने के लिए प्रवृत्त न होना।

परत्थकरण :- दूसरों का भला करने की तत्परता। च :- और

दुक्खखओ :- दुःख का नाश

भयवं :- हे भगवन् ।
भव - निव्वेओ :- संसार के प्रति वैराग्य

इट्ठफल सिद्धि :- इष्टफल की सिद्धि

गुरुजन पूआ :- धर्माचार्य तथा मातापितादि बडे
व्यक्तियों के प्रति परिपूर्ण आदर भाव।

सुहगुरु जोगो :- सद्गुरु का योग।

सव्वत्थ सेवणा :- उनकी आज्ञानुसार चलने की शक्ति।
आभवं :- जब तक संसार में परिभ्रमण करना पडे तब तक। अखंडा :- अखंड रीति से। वारिज्जइ :- निषेध किया है।
जइ वि :- यद्यपि। नियाण बंधणं :- निदान - बंधन, फलकी याचना वीयराय :- हे वीतराग। तुह :- आपके।
समये :- शास्त्र में, प्रवचन में। तह वि :- तथापि मम :- मुझे। हुज्ज :- प्राप्त हो।
सेवा :- उपासना। भवे भवे :- प्रत्येक भव में तुम्ह :- आपके। चलणाणं :- चरणों की

बोहिलाभो :- बोधि लाभ, सम्यक्त्वकी प्राप्ति। अ :- और
संपज्जउ :- उत्पन्न हो। मह :- मुझे। एअं :- ऐसी परिस्थिति

कम्मखओ :- कर्म का नाश

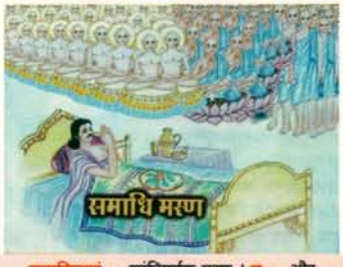

समाहिमरणं :- शांतिपूर्वक मरण। च :- और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ :- हे वीतराग प्रभो ! हे जगद्गुरु ! आपकी जय हो । हे भगवन् ! आपके सामर्थ्य से मुझे संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो, मोक्षमार्ग में चलने की शक्ति प्राप्त हो और इष्टफल की सिद्धि हो (जिससे मैं धर्म का आराधन सरलता से कर सकूँ।)

हे प्रभो ! (मुझे ऐसा सामर्थ्य प्राप्त हो कि जिससे) मेरा मन लोकनिंदा हो ऐसा कोई भी कार्य करने को प्रवृत्त न हो, धर्माचार्य तथा माता पितादि बडे व्यक्तियों के प्रति परिपूर्ण आदर भाव का अनुभव करू और दूसरों का भला करने को तत्पर बनु। और हे प्रभो ! मुझे सद्गुरु का योग मिले, तथा उनकी आज्ञानुसार चलने की शक्ति प्राप्त हो । यह सब जहां तक मुझे संसार में परिभ्रमण करना पडे, वहां तक अखण्ड रीति से प्राप्त हो।

हे वीतराग ! आपके प्रवचन में यद्यपि निदान बंधन अर्थात् फलकी याचना का निषेध है, तथापि मैं ऐसी इच्छा करता हूँ कि प्रत्येक भव में आपके चरणों की उपासना करने का योग मुझे प्राप्त हो। हे नाथ आपको प्रणाम करने से दुःख नाश हो, कर्म का नाश हो, सम्यक्त्व मिले और शांतिपूर्वक मरण हो ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो।

सर्व मंगलों का मंगलरुप, सर्व कल्याणों का कारणरुप और सर्व धर्मों में श्रेष्ठ ऐसा जैन शासन जय को प्राप्त हो रहा है। साधु / साध्वी और श्रावक / श्राविका दिन एवं रात्रि के भाग में जो चैत्यवंदन करते हैं, उसमें यह सूत्र बोला जाता है। मन का प्रणिधान करने में यह सूत्र उपयोग है इसलिए यह पणिहाण - सूत्त कहलाता हैं इसमें वीतराग के समक्ष निम्न वस्तुओं की प्रार्थना की जाती है।

1. **भवनिर्वेद** :- फिर - फिरकर जन्म लेने की अरुचि।
2. **मार्गानुसारिता** :- ज्ञानियों द्वारा प्रदर्शित मोक्षमार्ग में चलने की शक्ति।
3. **इष्टफल सिद्धि** :- इच्छित फल की प्राप्ति।
4. **लोक विरुद्ध त्याग** :- मनुष्य निंदा करें, ऐसे कार्यों का त्याग।
5. **गुरुजनों की पूजा** :- धर्मगुरु, विद्यागुरु, बडे व्यक्ति आदि की पूजा।
6. **परार्थकरण** :- परोपकार करने की वृत्ति।
7. **सद्गुरु का योग**
8. **सद्गुरु के वचनानुसार चलने की शक्ति**
9. **वीतराग के चरणों की सेवा**
10. **दुःख का नाश।**
11. **कर्म का नाश**
12. **समाधि मरण - शांतिपूर्वक मृत्यु**
13. **बोधि लाभ** - सम्यक्त्व की (जैन धर्म की) प्राप्ति।

* चेइयथय सूत्तं * (अरिहंत चेइयाणं सूत्र)

अरिहंत चेइयाणं करेमि काउस्सग्गं
वंदण - वत्तियाए पूअण - वत्तियाए सक्कार - वत्तियाए
सम्माण - वत्तियाए बोहिलाभ - वत्तियाए निरुवसग्ग - वत्तियाए
सद्धाए मेहाए धिईए धारणाए अणुप्पेहाए वड्ढमाणीए ठामि काउस्सग्गं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* शब्दार्थ *

अरिहंत चेइयाणं :- अर्हत् चैत्यों के, अर्हत प्रतिमाओं के। चैत्य बिम्ब, मूर्ति अथवा प्रतिमा

करेमि :- करता हूँ, करना चाहता हूँ।

काउस्सग्गं :- कायोत्सर्ग।

वंदण वत्तियाए :- वंदन के निमित्त से।

पूअण वत्तियाए :- पूजन के निमित्त से

सक्कार वत्तियाए :- सत्कार के निमित्त से

सम्माण वत्तियाए :- सम्मान के निमित्त से

बोहिलाभ वत्तियाए :- बोधिलाभ के निमित्त से

निरुवसग्ग वत्तियाए :- मोक्ष के निमित्त से

सद्धाए :- श्रद्धा से, इच्छा से

मेहाए :- मेधा से, प्रज्ञा से

धिईए :- धृति से, चित्त की स्वस्थता से

धारणाए :- ध्येय का स्मरण करने से, धारणा से

अणुप्पेहाए :- बार बार चिंतन करने से

वड्ढमाणीए :- वृद्धि पाती हुई, बढती हुई

ठामी काउसग्गं :- मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

भावार्थ :- अर्हत् प्रतिमाओं के आलम्बन से कायोत्सर्ग करने की इच्छा करता हूँ। वंदन का निमित्त लेकर पूजन का निमित्त लेकर, सत्कार का लेकर, सम्मान का निमित्त लेकर, बोधिलाभ का निमित्त लेकर, तथा मोक्ष का निमित्त लेकर बढती हुई, इच्छा से बढती हुई प्रज्ञा से, बढती हुई चित्तकी स्वस्थता से, बढती हुई धारणा से और बढती हुई अनुप्रेक्षा से मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

* णमुत्थुणं शक्रस्तव सूत्र *

णमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं ।।1।।

आइगराणं, तित्थयराणं, सयं संबुद्धाणं ।।2।।

पुरिसुत्तमाणं, पुरिस - सीहाणं, पुरिस वर पुंडरीआणं, पुरिस वरगंधहत्थीणं ।।3।।

लोगुत्तमाणं, लोग नाहाणं, लोग हिआणं, लोग पईवाणं लोग पज्जोअगराणं ।।4।।

अभय - दयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं ।।5।।

धम्म दयाणं, धम्म देसयाणं, धम्म नायगाणं, धम्म सारहीणं, धम्म वरचाउरंत चक्कवट्टीणं ।।6।।

दीवोत्ताणं सरणगइपइट्ठाणं अप्पडिहय वर नाण दंसण धराणं, विअट्ट छउमाणं ।।7।।

जिणाणं जावयाणं, तिन्नाणं तारयाणं, बुद्धाणं बोहयाणं, मुत्ताणं मोअगाणं ।।8।।

सव्वन्नूणं, सव्वदरिसीणं, सिव - मयल - मरुअ - मणंत मक्खय मव्वावाह मपुणरावित्ति

सिद्धिगइ नामधेयं ठाणं संपत्ताणं णमो जिणाणं जिअ भयाणं ।।9।।

* शब्दार्थ *

णमुत्थुणं :- नमस्कार हो

अरिहंताणं भगवंताणं :- अरिहंत भगवंतों को।

आइगराणं :- द्वादशांगी (श्रुतधर्म) की आदि करनेवाले को।

तित्थयराणं :- तीर्थंकरों को, चतुर्विध संघ की स्थापना करने वालों को।

सयं - संबुद्धाणं :- स्वयं बोध प्राप्त किये हुओं को।

पुरिसुत्तमाणं :- पुरुषों में ज्ञानादि गुणों से उत्तमों को।

पुरिस सीहाणं :- पुरुषों में सिंह समान निर्भयों को।

पुरिस वर पुंडरीयाणं :- पुरुषों में उत्त श्वेतकमल के समान रहितों को।

पुरिस वरगंधहत्थीणं :- पुरुषों में सात प्रकार की ईतियाँ दूर करने सर्वश्रेष्ठ गंधहस्ति सदृशों को।

लोगुत्तमाणं :- लोक में उत्तमों को।

लोग नहाणं :- लोक के नाथों को।

लोग हिआणं :- लोक का हित करनेवालों को।

लोग पईवाणं :- लोक में दीपकों को।

लोग पज्जोअगराणं :- लोक में अतिशय प्रकाश करनेवालों को।

अभय दयाणं :- अभय प्रदान करनेवालों को।

चक्खु दयाणं :- श्रुत्तरुपी चक्षु देने वालों को।

मग्ग दयाणं :- धर्ममार्ग दिखलाने वालों को।

सरण दयाणं :- शरण देनेवालों को।

बोहि दयाणं :- सम्यक्त्व देनेवालों को।

धम्म दयाणं :- धर्म का स्वरुप समझानेवालों को।

धम्म देसयाणं :- धर्म का उपदेश देने वालों का।

धम्म नायगाणं :- धर्म के नायकों को।

धम्म सारहीणं :- धर्म रथ को चलाने में कुशल सारथियों को।

धम्म वर चाउरंत चक्कवट्टीणं :- धर्मरुपी श्रेष्ठ चतुरन्त चक्र धारण करने वालों को, चार गतियों का नाश करने वाले तथा धर्मचक्र के प्रवर्तक उत्तम चक्रवर्तियों को।

दीवोत्ताणं :- संसार सागर में द्वीप के समान आधारभूत

सरणगइपइट्ठाणं :- दुःखी प्राणियों को आश्रय देनेवाले और सद्गति में सहायक

अप्पडिहय वरनाणं दंसण धराणं :- जो नष्ट न हो ऐसे श्रेष्ठ केवलज्ञान, केवलदर्शन को धारन करने वालों को।

वियट्ट - छउमाणं :- घाती कर्मों से रहित होने से जिनकी छद्मस्थावस्था चली गई है उनको।

तिन्नाणं तारयाणं :- स्वयं संसार समुद्र से पार हो गये है तथा दूसरों को भी पार पहुंचानेवालों का।

बुद्धाणं बोहयाणं :- स्वयं बुद्ध है तथा दूसरों को भी बोध देनेवालों का।

मुत्ताणं मोअगाणं :- स्वयं मुक्त है और दूसरों को मुक्त करनेवालों का।

सव्वन्नूणं ससव्वदरिसीणं :- सर्वज्ञों को, सर्व दर्शियों को।

सिवं :- शिव, उपद्रवों से रहित।

मयल :- अचल, स्थिर, निश्चल

मरुअ :- रोग रहित, व्याधि और वेदना रहित

मणंत :- अंत रहित।

मक्खय :- क्षय रहित।

मव्वाबाह :- कर्म जन्य बाधा पीडाओं से रहित।

मपुणरावित्ति :- जहां जाने के बाद वापिस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आना नहीं रहता ऐसा।

सिद्धिगई - नाम धेयं :- सिद्धिगति नाम वाले।

ठाणं :- स्थान को, मोक्ष को।

संपत्ताणं :- प्राप्त किये हुओं को।

णमो :- नमस्कार को।

जिणाणं :- जिनों का।

जिअ - भयाणं :- भय जीतने वालों का

जे :- जो। अ :- और

अईआ :- भूतकाल में, अतीतकाल में।

सिद्धा :- सिद्ध हुए है।

भविस्संति :- होंगे।

अणागए :- भविष्य।

काले :- काल में।

संपइ :- वर्तमान काल में।

वट्टमणा :- विद्यमान है।

सव्वे :- उन सबको।

तिविहेण :- त्रिविध, मन - वचन - काया से।

वंदामि :- मैं वंदन करता हूँ।

* प्रतिक्रमण सूत्र *

इच्छामि णं भंते का पाठ

इच्छामि णं भंते !	हे भगवान ! मैं चाहता हूँ, यानी मेरी इच्छा है।
तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे	इसलिए आपके द्वारा आज्ञा मिलने पर।
देवसियं पडिक्कमणं ।	दिवस संबंधी प्रतिक्रमण को।
ठाएएमि	करता हूँ व।
देवसिय नाण दंसण	दिवस संबंधी ज्ञान दर्शन
चारित्ताचरित्त	श्रावक व्रत
तव अइयार	तप अतिचारों को
चिंतणत्थं	चिंतन करने के लिए।
करेमि काउस्सग्गं	कायोत्सर्ग करता हूँ।

* इच्छामि ठामि का पाठ *

इच्छामि ठामि काउस्सग्गं	मैं कायोत्सर्ग करना चाहता हूँ।
जो में देवसिओ	जो मैंने दिवस संबंधी।
अइयारो कओ	अतिचार (दोष) सेवन किये हैं चाहे वे
काइओ, वाइओ, माणसिओ उस्सुत्तो	मन, वचन और काया संबंधी सूत्र सिद्धांत के विपरीत उत्सूत्र की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	प्ररुपणा की हो।
उम्मग्गो, अकप्पो, अकरणिज्जो	जिनेन्द्र प्ररुपित मार्ग से विपरीत उन्मार्ग का कथन किया व आचरण किया हो। अकल्पनीय नहीं करने योग्य कार्य किए हों, ये कायिक वाचिक अतिचार है, इसी प्रकार।
दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ अणायारो अणिच्छियव्वो	मन से कर्म बंध हेतु रुप दुष्ट ध्यान व किसी प्रकार का खराब चिंतन किया हो। अनाचार सेवन किया व नहीं चाहने योग्य की वांछा की हो।
असावग पाउग्गो	श्रावक धर्म के विरुद्ध आचरण किया हो।
नाणे तह दंसणे	ज्ञान तथा दर्शन एवं
चरित्ताचरित्ते, सुए सामाइए तिण्हं गुत्तीणं	श्रावक धर्म, सूत्र सिद्धांत, सामायिक में तीन गुप्ति के गोपनत्व का।
चउण्हं कसायाणं पंचण्ह मणुव्वयाणं	चार कषाय के सेवन नहीं करने की प्रतिज्ञा का पांच अणुव्रत।
तिण्हं गुणव्वयाणं चउण्हं सिक्खावयाणं	तीन अणुव्रत, चार शिक्षा व्रत रुप।
बारस्स विहस्स सावग धम्मस्स	बारह प्रकार के श्रावक धर्म का
जम खंडियं जं विराहियं	जो मेरे देश रुप से खण्डन हुआ हो, सर्व रुप से विराधना हुई हो तो
जो मे देवसिओ अइयारो कओ	जो मैंने दिवस संबंधी कोई अतिचार दोष किये हो तो।
तस्स मिच्छामि दुक्कडं	वे मेरे दुष्कृत कर्म रुप पाप मिथ्या, निष्फल हो।

* आगमे तिविहे का पाठ *

आगमे तिविहे पण्णत्ते तं जहा	आगम तीन प्रकार का कहा गया है वह इस प्रकार है जैसे :-
सुत्तागमे, अत्थागमे, तदुभयागमे	सूत्र, रुप, अर्थ रुप आगम, दोनों (मूल अर्थ युक्त) रुप आगम इस तरह तीन प्रकार के आगम रुप ज्ञान के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं
जं वाइद्धं वच्चामेलियं	जो इस प्रकार है। इन आगमों में जो कुछ क्रम छोड कर अर्थात् पद अक्षर को आगे पीछे करके पढा हो। एक सूत्र का पाठ अन्य सूत्र में मिलाकर पढा गया हो।
हीणक्खरं, अच्चक्खरं पयहीणं, विणयहीणं	अक्षर घटा करके व बढा करके बोला गया हो, पद को कम करके, विनयरहित पढा हो।
जोगहीणं घोसहीणं सुट्टदिण्णं	मन वचन व काया के योग रहित पढा हो, उदात्त आदि के उचित घोष बिना पढा हो, शिष्य की उचित शक्ति से न्यूनाधिक ज्ञान दिया हो।
दुट्ठुपडिच्छियं अकाले कओ सज्झाओ	दुष्ट भाव से ग्रहण किया हो, अकाल में स्वाध्याय किया हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काले न कओ सज्झाओ असज्झाइए सज्झायं	काल में स्वाध्याय न किया हो, अस्वाध्याय की स्थिति में स्वाध्याय किया हो।
सज्झाइए न सज्झायं	स्वाध्याय की स्थिति में स्वाध्याय न किया हो।

भणतां गुणतां विचारतां ज्ञान और ज्ञानवंत पुरुषों की अविनय अशातना की हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं

*** दर्शन सम्यक्त्व का पाठ ***

अरिहंतो महदेवो जावज्जीवं	जीवन पर्यन्त अरिहंत मेरे देव।
सुसाहुणो गुरुणो	सुसाधु निर्ग्रन्थ गुरु है।
जिण पण्णत्तं तत्तं इअ सम्मत्तं मए गहियं	जिनेश्वर कथित तत्त्व सार रुप है, इस प्रकार का सम्यक्त्व मैंने ग्रहण किया है।
परमत्थ संथवो वा सुदिट्ठ परमत्थ सेवणावावि	परमार्थ का परिचय अर्थात् जीवादि तत्वों की यथार्थ जानकारी करना, परमार्थ के जानकार की सेवा करना।
वावण्ण कुदंसण वज्जणा	समकित से गिरे हुए तथा मिथ्या दृष्टियों की संगति छोडने रुप।
य सम्मत्त सद्दहणा	ये इस सम्यक्त्व के (मेरी श्रद्धा बनी रहे) श्रद्धान है।
इस सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला	इस सम्यक्त्व के पांच अतिचार रुप प्रधान दोष है जो
जाणियव्वा न समायरियव्वा	जानने योग्य है किंतु आचरण करने योग्य नहीं है।
तं जहा ते आलोउं संका कंखा वितिगिच्छा	वे इस प्रकार है उनकी मैं आलोचना करता हूँ।
पर पासंड पसंसा पर पासंड संथवो	श्री जिन वचन में शंका की हो, परदर्शन की आकांक्षा की हो। धर्म के फल में संदेह किया हो। पर पाखण्डी की प्रशंसा की हो, पर पाखण्डी का परिचय किया हो।

* मेरे समयक्त्व रुप रत्न पर मिथ्या रुपी रज मैल लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं *

*** चत्तारि मंगलं का पाठ ***

चत्तारि मंगलं अरिहंता मंगलं सिद्धा मंगलं	चार मंगल है, अरिहंत मंगल है, सिद्ध मंगल है,
साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं	साधु मंगल है, केवली प्ररुपित दया धर्म मंगल है।
चत्तारि लोगुत्तमा अरिहंता लोगुत्तमा	चार लोक में उत्तम है, अरिहंत लोक में उत्तम है।
सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,	सिद्ध लोक में उत्तम है, साधु लोक में उत्तम है।
केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो	केवली प्ररुपित धर्म लोक में उत्तम है।
चत्तारि शरणं पवज्जामि, अरिहंते शरणं पवज्जामि	चार शरणों को ग्रहण करता हूँ, अरिहंत भगवान की शरण ग्रहण करता हूँ।
सिद्धे शरणं पवज्जामि, साहू शरणं पवज्जामि	सिद्ध भगवान की शरण ग्रहण करता हूँ, साधुओं की शरण ग्रहण करता हूँ।
केवली पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि	केवली प्ररुपित दशा धर्म की शरण ग्रहण करता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

* महापुरुष की जीवन कथाएं *

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य

साध्वी श्री लक्ष्मणा

श्री भरत और बाहुबली

सती श्री सुभद्रा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य *

भगवान महावीर के पश्चात् जैन परंपरा में अनेक प्रभावशाली विद्यासिद्ध लोकोपकारी महान आचार्य हुए जिनमें आचार्यश्री हेमचंद्रसूरि का नाम स्वर्ण अक्षरों में मंडित है।

आचार्यश्री हेमचंद्रसूरि असाधारण विभूतियों से संपन्न महामानव थे। ये उत्कृष्ट श्रुत पुरुष थे। व्याकरण - कोष- न्याय - काव्य छन्दशास्त्र - योग-तर्क - इतिहास आदि विविध विषयों पर अधिकारिक साहित्य का निर्माण कर सरस्वती के भंडार को अक्षय श्रुत निधि से भरा था। वे ज्ञान के महासागर थे। साथ ही उन्होंने गुजरात के राजा सिद्धराज और कुमारपाल को जैनधर्मानुरागी बनाकर जिनशासन के गौरव में चार चांद लगाये। धार्मिक ., सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में नवचेतना जगाई। उनकी बहुमुखी विलक्षण प्रतिभा के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए गुर्जर नरेश श्री कुमारपाल ने उन्हें कलिकाल सर्वज्ञ के विरुद से अलंकृत किया।

धंधूका नगर में चाचिंग नामक सेठ रहते थे। उनकी पाहिनी नामक पत्नी थी। वह गुणवान व शीलवती थी। जैन धर्म के प्रति उन्हें पूर्ण श्रद्धा थी। एक रात्रि को पाहिनी को स्वप्न आया। उसे दो दिव्य हाथ दिखे। दिव्य हाथों में दिव्य रत्न थे। यह चिंतामणि रत्न है, तू ग्रहण कर कोई बोला, पाहिनी ने रत्न ग्रहण किया। वह रत्न लेकर आचार्य देव श्री देवचंद्रसूरि के पास जाती है। गुरुदेव यह रत्न आप ग्रहण करें और रत्न गुरुदेव को अपर्ण कर देती हैं। उसकी आंखों में हर्ष के आंसू उभर आते हैं।

स्वप्न पूरा हो जाता है। वह जागती है। जागकर नवकार मंत्र का स्मरण करती है। वह सोचती हैं गुरुदेव श्री देवचंद्रसूरि नगर में ही है। उनको मिलकर स्वप्न की बात करुं।

सुबह उठकर स्नानादि से निवृत्त होकर वह गुरुदेव के पास गई और स्वप्न की बात उनको कही। गुरुदेव ने कहा ' पाहिनी, तुझे खूब अच्छा स्वप्न आया है। तुझे श्रेष्ठ रत्न जैसा पुत्र होगा और वह पुत्र तू मुझे देगी। यह तेरा पुत्र जिनशासन का महान आचार्य बनेगा और शासन को शोभायमान करेगा।

वि.सं. 1145 की कार्तिक पूर्णिमा को पाहिनी ने पुत्र को जन्म दिया। पुत्र का नाम रखा गया चांगदेव। उस समय आकाशवाणी हुई ' पाहिणी और चाचिंग का यह पुत्र तत्त्व का ज्ञाता बनेगा और जिन धर्म का प्रसारक बनेगा।

पांच वर्ष का चांगदेव पाहिनी के साथ एक बार जिनमंदिर में गया। आचार्य श्री देवचंद्रसूरिजी वहां दर्शनार्थ वहां पधारे थे। उनके शिष्य ने आचार्यदेव को बैठने के लिए आसन बिछाया था जिसपर चांगदेव बैठ गया। यह देखते ही आचार्य हंस पडे। चांगदेव भी हसने लगा। आचार्यश्री ने पाहिनी को कहा ' श्राविका तुझे याद तो है न तेरा स्वप्न, रत्न तुझे मुझको सौंपना होगा।''

''तेरा पुत्र मेरी गद्दी संभालेगा और जिनशासन का महान प्रभावक आचार्य बनेगा। उसका जन्म घर में रहने के लिए नहीं हुआ। वह तो जिनशासन के गगन में चमकने के लिए जन्मा हैं । इसलिए उस पर का मोह छोडकर मुझको सौंप दे। श्री देवचंद्रसूरि संघ के अग्रगणियों को लेकर पाहिणी के घर पधारे। पाहिने ने अपना महाभाग्य समझकर आनंदपूर्वक चांगदेव को गुरुचरणों में समर्पित कर दिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुरुदेव श्री देवचन्द्रसूरिजी चांगदेव को पढाने लगे। उसका विनय और बुद्धि देखकर गुरुदेव को भरोसा हो गया कि यह लडका जल्दी विद्वान बन जायेगा। सब शास्त्रों का अभ्यास कर लेगा। एक दिन गुरुदेव ने गुजरात के महामंत्री उदयन को अपने पास बुलाकर चांगदेव के बारें में बात की। उनको जैन धर्म पर बडी श्रद्धा थी। उन्होंने चांगदेव की दीक्षा महोत्सव पूर्वक माघसुदि चौदस के दिन बडे उत्सवपूर्वक करवाई और उसका नाम सोमचंद्र मुनि रखा गया। आचार्यदेव श्री देवचन्द्रसूरीश्वरजी स्वयं सोमचंद्रमुनि को अभ्यास करवाते थे। साधुजीवन के आचार - विचार सिखाते थे।

एक बार अध्ययन करते समय सोमचन्द्र मुनि ने सरस्वती माता की उपासना करने की इच्छा अपने गुरु को बताई। गुरु ने उन्हें कश्मीर में स्थित सरस्वती देवी की शक्तिपीठ में जाकर आराधना करके अपने मनोरथ को सफल करने को कहा। गुरुदेव का आशीर्वाद पाकर अन्य एक मुनि के साथ सोमचन्द्र मुनि ने कश्मीर की ओर प्रयाण किया।

विहार करते हुए वे खंभात नगर के बाहर आये। वहां नेमिनाथ भगवान का सुंदर जिनालय था। भगवान की नयनरम्य मूर्ति देखकर सोमचन्द्र मुनि ध्यान में बैठ गये और वातावरण शांत होने से रात्रि को उसी मंदिर में सरस्वती देवी की आराधना प्रारंभ करने लगे। पद्मासन लगाकर बैठ गये और देवी सरस्वती के ध्यान में लीन हो गये। इस प्रकार रात्री के छः घण्टे बीत गये। मुनिराज स्थिर मन से जाप - ध्यान कर रहे थे और देवी सरस्वती साक्षात प्रकट हुई। देवी ने मुनि पर स्नेह बरसाया। कृपा का प्रपात बहाया। देवी ने कहा ' वत्स् ! अब मुझे प्रसन्न करने के लिए तुझे काश्मीर जाने की जरुरत नहीं है । तेरी भक्ति और ध्यान से मैं देवी सरस्वती तुझ पर प्रसन्न हुई हुँ। मेरे प्रसाद से तू सिद्ध सारस्वत् बनेगा। तब से सोमचन्द्रमुनि धर्मग्रंथों का सजन करने लगे और दिन व रात एक ही कार्य में जुट गए।

एक बार देवचन्द्रसूरिजी शिष्य परिवार के साथ नागपुर पहुंचे वहां पर धनद नामक एक धनवान सेठ रहता था। कर्मसंयोग से उसके व्यापार में बहुत हानि हो गई। जमीन में स्वर्ण से भरे चरु विपत्ति के समय काम में लेने की इच्छा से गाढे थे। उनको जब निकला तो सोने की जगह कोयले ही हाथ लगे। जब सोमचन्द्रसूरि उनके घर गोचरी लेने गए तो हवेली में सोने से भरे चरु को देखा और फिर विचार करने लगे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कि यह सेठ इस प्रकार दरिद्र अवस्था में क्यो रह रहे हैं। उन्होंने अपने साथ आये अन्य मुनि से यह कहा। सुवर्ण के विषय में बात सुनकर धनद सेठ ने सोमचन्द्र मुनि से कहा कि वे अपने कर कमलों से उस कोयले के ढेर को सुवर्ण बना दें। नमस्कार मंत्र का स्मरण कर मुनि ने जब ऐसा किया तो कोयले से भरे चरु सुवर्ण युक्त हो गए। धनद सेठ ने देवेन्द्रसूरीश्वरजी की सलाह अनुसार उस धन से प्रभु महावीरस्वामी का एक सुंदर मंदिर बनवाया।

सोमचन्द्र मुनि बडे विनयी, विनम्र, विवेकी, बुद्धिमान, गुणवान, भाग्यवान और रुपवान थे। उनके गुरु ने उन्हें आचार्यपद देने का सोचा। संघ को इकट्ठा करके सोमचन्द्रमुनि को आचार्य पद देने की बात कही। संघ ने हर्षपूर्वक बात को स्वीकारा। वैशाख सुदि तीज - अक्षयतृतीया के दिन शुभमुहूर्त में सोमचन्द्रमुनि को देवचन्द्रसूरिजी ने आचार्य पदवी दी और उनका नाम हेमचन्द्रसूरिजी जाहिर किया। संघ ने उनका जयजयकार किया।

आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि पाटण के राजमार्ग पर चले जा रहे हैं। उनके पीछे दो शिष्य हैं सामने से गुजरात के राजा सिद्धराज की सवारी आ रही थी। राजा की नजर हेमचन्द्रसूरि पर गिरी। प्रतापी व प्रभावशाली आचार्य को देखकर राजा स्तब्ध हो गया और उसे लगा कि यह साधु कौन होंगे ? मैंने आज तक ऐसे साधु देखें नहीं है।

हाथी उपर से राजा की और श्री हेमचन्द्रचार्य की आंख से आंख मिली। राजा ने दो हाथ जोड़कर प्रणाम किये। आचार्य ने दाहिना हाथ ऊँचा करके धर्मलाभ का आशीर्वाद दिया। यह थी सिद्धराज के साथ हेमचन्द्राचार्य की पहली मुलाकात। इसके बाद कभी - कभार आचार्यश्री राजसभा में जाने लगे। उनकी मधुर और प्रभावशाली वाणी का राजा पर अच्छा असर पडने लगा और राजा जैन धर्म तरफ आकर्षित हुआ।

एक बार राजसभा में ही राजा ने राजाभोज द्वारा रचित **''सरस्वती कण्ठाभरण''** का ग्रंथ हाथ में लेकर राजसभा में बैठे हुए विद्वानों को कहा, राजा भोज द्वारा रचे गये ऐसे व्याकरण शास्त्र जैसा शास्त्र क्या गुजरात का कोई विद्वान नहीं रच सकेगा ? क्या ऐसा कोई विद्वान विशाल गुजरात में नहीं जन्मा है ? राजा की और आचार्य हेमचन्द्रसूरि की आंखे मिली। मैं राजा भोज के व्याकरण से भी सवाये व्याकरण की रचना करुंगा। आचार्य हेमचन्द्रसूरिजी ने आह्वान स्वीकार कर लिया।

आचार्य देव ने व्याकरण के आठ ग्रंथ काश्मीर से मंगवाये। इन सब ग्रंथों की खूबियां, कमजोरी खूब बारीकाई से पहचान ली। सिद्धराज से मांगने पर सब सुविधा मिलने लगी जिससे एक ही वर्ष में सवा लाख श्लोक से प्रमाणित व्याकरण का महाग्रंथ बनाया और उसका नाम दिया **'सिद्ध हेम व्याकरण'** सिद्ध याने सिद्धराज और हेम याने हेमचन्द्रसूरि।

सिद्धराज यह ग्रंथ देखकर बडा प्रसन्न हुआ। उसने गाजे - बाजे के साथ हाथी के सिर पर रखकर बडी धूमधाम के सब राजमार्गों पर घूमाकर राजसभा में ले गया। इस ग्रंथ का पूजन करके ग्रंथ को ग्रंथालय में रखा गया। 300 कातिबों को बिठाकर इस ग्रंथ की प्रतिलिपियां की गई। राजा द्वारा ये प्रतिलिपियां भारत के सभी राज्यों में भेजी गयी। अनेक विद्धानों ने इस ग्रंथ की प्रशंसा की। आज भी संस्कृत भाषा का अभ्यास करनेवाले ' सिद्धहेम' व्याकरण पढते हैं।

राजा सिद्धराज सब बात से सुखी था। परंतु उसे एक ही दुःख था कि उसे कोई संतान न थी। राजा ने इस विषय में गुरुदेव हेमचन्द्राचार्य से चर्चा की।

गुरुदेव ने कहा ' आपके भाग्य में पुत्र योग नहीं है। और आपके बाद गुजरात का राजा कुमारपाल बनेगा। ' कौन कुमारपाल'? राजा ने आश्चर्य से पूछा। 'त्रिभुवनपाल का पुत्र कुमारपाल' गुरुदेव ने कहा। सिद्धराज अत्यंत खिन्न हो गया।

अब पुत्रप्राप्ति की इच्छा पूर्ण नहीं होगी। ऐसा समझने से सिद्धराज ने अपना ध्यान कुमारपाल का कांटा निकालने में लगाया और अपने तरीके से कार्य प्रारंभ किया। आचार्य श्री हेमचन्द्राचार्य ने अथाग मेहनत से अपनी बीस वर्ष की आयु से साहित्यसर्जन का कार्य प्रारंभ किया था जिसे उन्होंने अपनी चौरासी वर्ष पर हुई मृत्यु तक याने चौसठ वर्ष तक चालू रखा। उनके साहित्य सर्जन में ' सिद्धहेम शब्दानुशासन व्याकरण' के अलावा ' अभिधान चिंतामणी द्वारा उन्होंने एक अर्थ के अनेक शब्द दिये - अनेकार्थ संग्रह द्वारा एक शब्द के अनेक अर्थ दिये। 'अलंकार चूडामणि' और 'छंदानुशासन' द्वारा काव्य छंद की चर्चा की और द्वायाश्रय द्वारा गुजरात, गुजरात की सरस्वती और गुजरात की अस्मिता का वर्णन किया। द्वायाश्रय में चौदह सर्ग तक सिद्धराज के समय की बातें की और बाद में सर्गों में कुमारपाल के राज्यकाल की बातें आती है। कुल मिलाकर **साडे तीन करोड श्लोक** प्रमाण जितना उनका साहित्य माना जाता है। जब उनको लगा कि मेरा अंत समय नजदीक है तब उन्होंने संघ को, शिष्यों को, राजा को, सबको आमंत्रित करके अंतिम हित शिक्षाएं दी और सबसे क्षमापना करके योगिन्द्र की भांति अनशन व्रत धारण करके, श्री वीतराग की स्तुति करते हुए देह छोडा। श्री हेमचन्द्राचार्य का जन्म संवत् 1145, दीक्षा 1156, आचार्यपद 1166 और स्वर्गवास संवत् 1229 में हुआ।

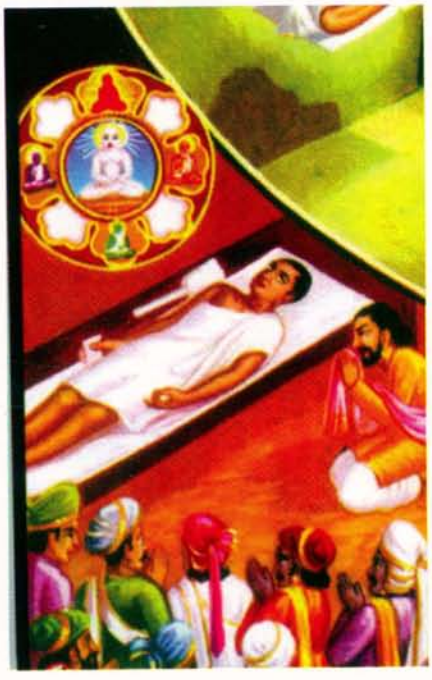

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* भरत और बाहुबलि *

भगवान आदिनाथ की दो पत्नियां : सुमंगला और सुनंदा। सुमंगला और ऋषभ युगलिक रुप में साथ साथ जन्मे थे। सुनंदा के साथी युगल की ताड वृक्ष के नीचे सिर पर फल गिरने से मृत्यु हो गई थी। युगल में दो में से एक की मृत्यु हो ऐसा यह प्रथम किस्सा था।

सौधमेन्द्र इन्द्र ने ऋषभदेव के पास जाकर कहा ' आप सुमंगला तथा सुनंदा से ब्याह करने योग्य हो, हालांकि आप गर्भावस्था से ही वीतराग हो लेकिन मोक्षमार्ग की तरह व्यवहारमार्ग भी आपसे ही प्रकट होगा। यह सुनकर अवधिज्ञान से ऋषभदेव ने जाना कि उन्हें 83 लाख पूर्व तक भोगकर्म भोगना है। सिर हिलाकर इन्द्र को अनुमति दी और सुनंदा तथा सुमंगला से ऋषभदेव का विवाह हुआ।

समयानुसार ऋषभदेव को सुमंगला से भरत और ब्राह्मी नामक पुत्र - पुत्री जन्मे एवं सुनंदा से बाहुबलि और सुंदरी का जन्म हुआ। उपरांत, सुमंगला से अन्य 49 जुडवे जन्मे। आदिकाल के प्रथम राजा ऋषभदेव ने संसार - त्याग से पूर्व ही सारी हिस्सेदारी कर दी थी। भरत को अयोध्या - विनीता नगरी का राजा बनाया। तक्षशिला का अधिपति बाहुबली को बनाया। शेष अट्ठाणुं पुत्रों को भी छोटे - छोटे राज्य दिये गये।

भरत महाराजा ने अपने पिता ऋषभदेव प्रभु का केवलज्ञान महोत्सव ठाठ - बाठ से मनाया। समवसरण में प्रभु की देशना सुनकर भरत के 500 पुत्र और 700 पौत्र बोध को प्राप्त हुए और दीक्षा ग्रहण की। इनमें से पुण्डरीक कुमार प्रथम गणधर हुआ। अब राजमहल आकर भरत महाराजा ने अपने आयुद्धशाला में उत्पन्न हुए चक्ररत्न की पूजा के लिए अट्ठाई महोत्सव करके चक्ररत्न का आराधन किया। चक्रवर्ती का पद प्राप्त करने, छः खण्डों को साधने में भरत महाराजा को 60 हजार वर्ष लगे।

राजन् आप षटखण्ड के अधिपति बन चुके हैं। सभी राजाओं ने आपकी अधीनता स्वीकार कर ली है। समस्त राजमुकुट आपश्री के चरणों में नतमस्तक हैं पर आपके अट्ठाणुं छोटे भाई एवं अनुज भ्राता बाहुबली अभी भी अपना स्वतंत्र राज्य लिये बैठे हैं। वे जब तक आपके आज्ञानुसारी नहीं बनते हैं तब तक यह विजय यात्रा अधूरी है। आप उनको संदेश प्रेषित कीजिए कि संपूर्ण विश्व को एक निश्रा एवं एक संरक्षण मिले। सभी का ही संरक्षक हो, इस अपेक्षा से आप सभी मेरे अनुगामी बने। मेरी अधीनता स्वीकार करें।

सभी संतुष्ट और तृप्ति के भाव से अपना जीवन जी रहे थे। राज्य विस्तार की लिप्सा किसी के मन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं थी। जिसको जितना मिला था, उसमें आनंद और संतोष का अनुभव था।

ज्येष्ठ भ्राता भरत का संदेश सुनकर अट्ठाणुं भाईयों ने विचार विमर्श किया। एक भाई ने कहा '' क्या हम उनकी सत्ता स्वीकार कर अपने राज्य को उसमें विलीन कर दें और अपनी स्वतंत्रता को मिटा दें ? यह भी तो हमारे क्षत्रियत्व का गौरव नहीं है। समझौता करें या संघर्ष दोनों बातें हमारे लिये सहज नहीं है।

उन्होंने सोचा - पिता ऋषभदेव भगवान ही हमें सही राह दिखायेंगे। वे सब चल पडे समवसरण की ओर। परमात्मा को वंदन कर निवेदन किया - परमात्मन् हम सभी सुख - शांति से जीवन जी रहे हैं। हम संतुष्ट है अपने आपसे । भाई भरत हमारे राज्य को हडपना चाहता हैं, हम क्या करें भगवन् ! संघर्ष या सेवा ?

प्रभु आदिनाथ ने कहा - वत्स ! संसार में व्यक्ति जिसे सुख का कारण मानता है, वही दुःख का कारण बनता हैं जहां संसार है, वहां तनाव और टकराव है।

युद्ध से समस्या का न निराकरण हो सकता है, न निवारण। संघर्ष से संघर्ष बढता है। शत्रुता बढती है। समस्या का निराकरण अपने आपको, अपनी आत्मा को, आत्मा के नित्यानंद को प्राप्त करने में है। तुम अपनी आत्मा की अधीनता स्वीकार करों और बन जाओ अपने अनंत आत्म साम्राज्य के सम्राट् संतोष, प्रेम और सहजानंद में है।

परमात्मा की यथार्थ वाणी सुनकर अट्ठाणुं राजाओं को वैराग्य हो गया और प्रवजित होकर चल पडे वीतराग के पथ पर वीतरागी बनने के लिए। जब अट्ठाणुं भाईयों के दीक्षित होने की खबर भरत चक्रवर्ती के कानों में पहुंची तो उनका हृदय ग्लानि से भर उठा। ''धिक्कार है मुझको, मैं अनुज भाईयों का राज्य लेने चला हूँ। उन्होंने तो राज वैभव का ही त्याग कर दिया। अभी मैं जाता हूँ उनसे क्षमायाचना करने के लिए। क्षमा मांगकर ग्लानि और अवसाद् से मुक्त होने के लिए।

इतनें में चक्रवर्ती की सभा में दूत का आगमन हुआ। राजन् आर्य बाहुबली ने आपके निवेदन को ठुकरा दिया है। भरत और बाहुबली दोनों युद्ध पर ऊपर आये। युद्ध 12 वर्ष लम्बा चला। और दोनों की सेना के अनेक मनुष्यों का संहार हुआ, मगर दोनों में से किसीकी भी हार जीत न हुई। महा जीवहिंसा न हो इसलिए इन्द्रमहाराज आये और दोनों भाइयों को क्लेश निवारण के लिए न्याय युद्ध का उपदेश दिया। और पांच प्रकार के युद्ध कायम किये।

1. दृष्टि युद्ध 2. वचन युद्ध 3. बाहु युद्ध 4. दण्ड युद्ध 5. मुष्टि युद्ध

यह पांच युद्ध कायम होने से दोनों तरफ की सेना समता से बैठ गई। इन्द्रादि देव इसमें साक्षी भूत रहे। प्रथम 4 युद्धों में बाहुबली की जीत हुई, भरत महाराजा हार गए। जब मुष्टि युद्ध की बारी आई, प्रथम भरतेश्वर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ने बाहुबलि के सिर पर जोर से मुष्टि प्रहार किया। बाहुबलि घुटनों तक जमीन में धंस गये। फिर बलपूर्वक निकलकर भरत को मारने के लिए मुष्टि उठाकर बाहुबली दौडे। भरत, भयभीत होकर चक्र छोडा, परंतु बाहुबली समान गोत्रीय होने से वह चक्र भी कुछ न कर सका। बाहुबली को छू कर वापिस भरत के हाथ में आ गया, तब भरत मन में अति खेदातुर हुआ और रोषित बाहुबली

को आता हुआ देखकर विचार में पड गया कि क्या कोई ये नवीन चक्रवर्ती है ? क्या मेरी समग्र ऋद्धि छीन लेगा। ऐसा विचार कर रहा था कि इन्द्र और देवों ने यह घोषणा कर दी कि तमाम युद्धों में बाहुबली जीते और

भरत हारे।

बंधी हुई मुट्टी से मारने को आते हुए बाहुबली ने चित्त

में विचार किया कि अहो ! मेरे पिता तुल्य मेरे बडे भाई को मारना मेरे लिए अनुचित है, ''लेकिन यह उठाई हुई मुट्टी भी व्यर्थ कैसे हो सकती है ?। ऐसा सोचकर बाहुबलि ने उस मुट्टी से उसी समय अपने सिर के बालों का लोचन कर डाला और वहीं पर चारित्र भी ग्रहण कर लिया। उसी समय भरत महाराजा उन्हें वंदन करके अपने अपराध को खमाकर अपने स्थान में लौटे।

अब बाहुबली मुनि विचार करने लगे कि '' पूर्व दीक्षित मेरे छोटे भाई दीक्षा पर्याय में मेरे से बडे हैं ! यदि मैं अभी प्रभु के पास जाऊँगा तो उन छोटे भाईओं को भी वंदन करना पडेगा। मैं बडा होकर के छोटे भाईओं को वंदन कैसे करुं ? इसलिए जब केवलज्ञान होगा तभी ही प्रभु के पास जाऊँगा।

ऐसा अभिमान करके एक वर्ष तक काउसग्ग में खडे रहे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

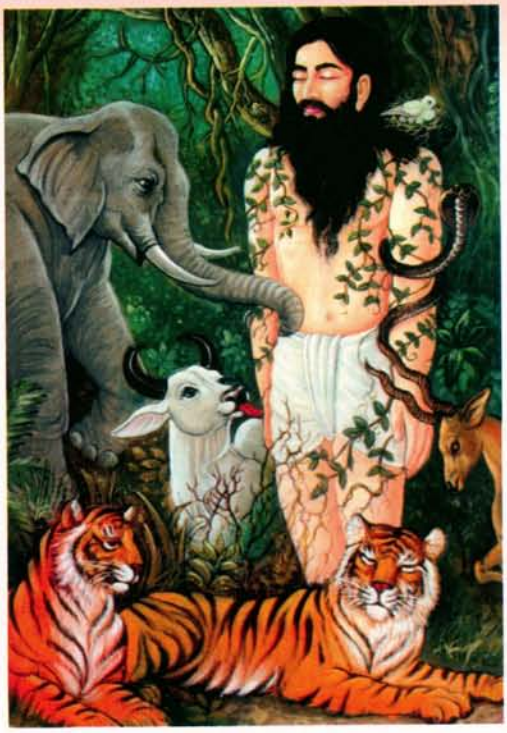

बाहुबलीजी एक वर्ष तक काउसग्ग में ही खडे रहे । शरीर पर सैंकडों शाखाओंवाली लताएं लिपट गई थी। पक्षीयोंने घोंसले बना लिये थे। भयंकर प्राणी भी रोष छोडकर निर्दोष बन गये। पर महाबली बाहुबली के मन में छिपा अहंकार का काटा नहीं निकल पाया। साधना उच्चता के शिखर पर आरुढ होने के लिए तैयार थी पर चित्त का सामान्य अहं - भाव उसे रोक रहा था। परमात्मा ऋषभदेव के केवलज्ञान के दर्पण में सब कुछ प्रत्यक्ष झलक रहा था। उन्होंने ब्राह्मी - सुंदरी से कहा - बाहुबली का अविचल ध्यान केवलज्ञान की भूमिका के निकट पहुंच चुका है परंतु अभिमान का पतला सा परदा उसमें बाधक बन रहा है। जाओ ! उसे जगाओ !

ब्राह्मी और सुंदरी बाहुबली के निकट पहुंची और पुकारने लगी '' वीरा म्हारा गज थकी उतरो, गज चढ्या केवल न होय रे - भैया ! हाथी पर बैठे - बैठे केवलज्ञान की बाती नहीं जल सकती। केवलज्ञान पाने के लिए गज पर चढना नहीं, गज से नीचे उतरना होता है। रुकना नहीं, झुकना होता है।

बाहुबली के कानों में शब्द पडे तो पहचान गये कि भैया कहकर बहनें मुझे ही पुकार रही है। वे गज से उतरने की बात कह रही है पर मैं कहां गज पर सवार हूं ? पर वीरा का संबोधन तो मेरे लिये ही है। बाहुबली के दिल में खलबली मच गयी। क्या कह रही है मेरी बहनें ? मैंने तो साम्राज्य संपदा का त्याग कर दिया है। कुछ भी तो नहीं है मेरे पास। न हाथी है न घोडे। तो गजारुढ होने की बात किसलिए ? नीचे उतरने की प्रार्थना क्यों ? जरुर इसमें कोई गहरा राज छिपा है। ''हाथी'' का ईशारा किस तरफ है ? चिंतन करते करते राजर्षि बाहुबली उतर गये भीतर में। अंतर को टटोलते ही, भीतर की आंखें खोलते ही सारा नजारा सामने आ गया। अहंकार की काली परछाई आ गयी नजर के सामने। धीरे धीरे भावों की निर्मलता सिद्धत्व के शिखर की ओर बढने लगी।

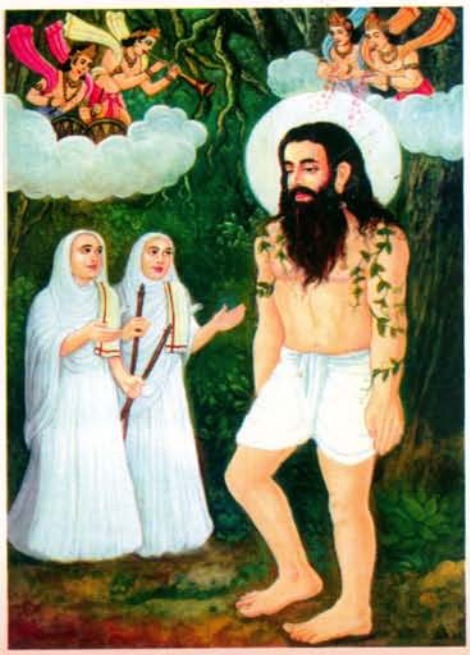

अभिमान का बर्फ प्रतिबोध की आग पाकर पिघलने लगा। मान की गांठ खुलते - खुलते पूरी खुल गयी। अहंकार मिटा । विनय प्रकट हुआ और भावावेग में ज्योंहि बाहुबली ने अपने भाईयों को नमस्कार करने के लक्ष्य से कदम उठाया कि वे जैसे अंधेरे से उजाले में आ गये। अल्पज्ञ से सर्वज्ञ बन गये। बंधन टूट गये और मुनि निर्बन्ध स्थिति को उपलब्ध हो गये। आत्मा केवलज्ञान के आलोक में जगमगा उठी। साधक ने उसे साध लिया जिसे साधना था, जिसके लिए साधना की। आत्म - दर्पण पर छाई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दर्प की धूल धुल गयी और शाश्वत प्रकाश खिल उठा। चेतना के स्वरुप में। केवली बन गये बाहुबली। चक्रवर्ती विजेता बन गये आत्म विजेता।

दूसरी ओर भरत महाराजा एक दिन स्नान करके, शरीर पर चंदन का लेप लगाकर सर्व अंगों पर दिव्य रत्न आभूषण धारण करके अंतःपुर के आदर्शगृह में गये। वहां दर्पण में अपना स्वरुप निहार रहे थे तब एक अंगूलि में मंद्रिका गिर गई। उस अंगूलि पर नजर पडते वह कांतिविहीन लगी। उन्होंने सोचा कि यह अंगूलि शोभारहित क्यों है? यदि अन्य आभूषण न हो तो और अंग भी शोभारहित लगेंगे ? ऐसा सोचते सोचते एक एक आभूषण उतारने लगे। सब आभूषण उतर जाने के बाद शरीर पत्ते बगैर के पेड समान लगा। शरीर मल और मूत्रादिक से मलिन है। उसके ऊपर कपूर एवं कस्तूरी वगैरह विलेपन भी उसे दूषित करते हैं। ऐसा सम्यक् प्रकार से सोचते सोचते क्षपक श्रेणी में आरुढ होकर शुक्लध्यान प्राप्त होते ही सर्व घातिकर्म का क्षय होने से केवलज्ञान प्राप्त किया।

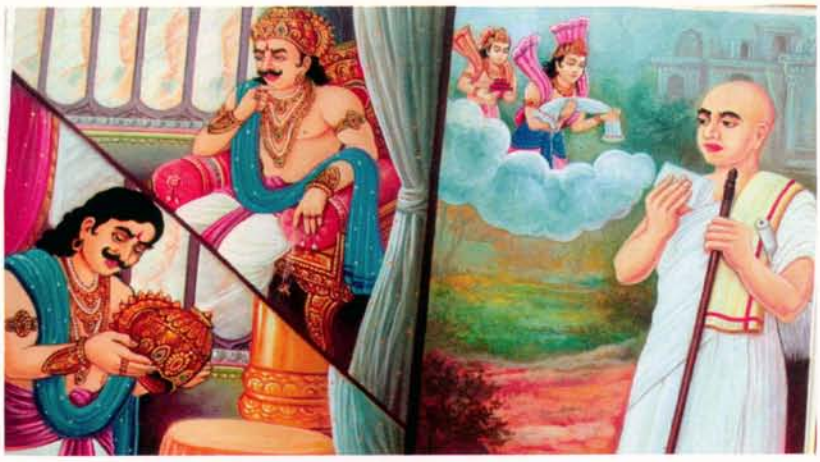

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* लक्ष्मणा साध्वी *

आज से 80वीँ चौवीसी के अंतिम तीर्थंकर के शासन में लक्ष्मणा नाम की एक राजकुमारी थी। विवाह के समय शादी के मंडप में ही वह विधवा हो गई। श्रावक धर्म का पालन करती हुई शुभ दिन को उसने दीक्षा अंगीकार की। बाद में अनेक को प्रतिबोध देकर अनेक शिष्याओं की गुरुणी बनी।

एक दिन चिडा - चिडी की संभोग क्रिया देखकर लक्ष्मणा साध्वी विचार करने लगी कि अरिहंत भगवान ने संभोग की अनुमति क्यों नहीं दी ? अथवा भगवान अवेदी थे, अतः वेद वाले जीवों की वेदना उन्हें क्या मालूम ? ऐसा विचार क्षणमात्र के लिए उसे आया। फिर उसे पश्चाताप हुआ मैंने यह गलत विचार किया है, क्योंकि अरिहंत भगवान तो सर्वज्ञ होते हैं। अतः सर्वजीवों की वेदना जान सकते हैं। इस भयंकर विचार की मुझे आलोचना लेनी चाहिए। ऐसा विचार करके उसने आलोचना लेने के लिए प्रयाण किया, परंतु प्रयाण करते ही पैर में कांटा चुभ गया। उस वक्त साध्वीजी के मन में यह विचार अंकुरित हुआ कि यह अपशकून हैं अतः आलोचना लेने पर मैं अधम गिनी जाउंगी। गुरुदेव मुझे कैसी सत्त्वहीन गिनेंगे ? और शल्ययुक्त उचित नहीं है - इत्यादि विचार करके उसने आलोचना दूसरे के नाम से लेने का निर्णय किया। उसने गुरुदेव के पास जाकर पूछा - हे गुरुदेव ! किसी को इस प्रकार का विचार आया हो, तो क्या प्रायश्चित आता है ? (मैंने ऐसा विचार किया यह बात छिपा दी।) उसके पश्चात् 10 वर्ष तक छट्ठ, अट्ठम, चार उपवास पांच उपवास और पारणों में निवी की। 2 वर्ष तक उपवास के पारणे उपवास किये। 2 वर्ष तक भुने हुए धान्य का आहार किया। 16 वर्ष तक मासक्षण किये। 20 वर्ष तक आयंबिल किये। इस प्रकार 50 वर्ष तक घोर तप किया, फिर भी पाप की शुद्धि नहीं हुई। अनागत चौविशी के प्रथम तीर्थंकर के शासन में वह मोक्ष जाएगी। इस प्रकार माया कपट कर शुद्ध आलोचना नहीं ली।

अतः उसका भव भ्रमण बढ गया। अगर उसने मानसिक आलोचना ले ली होती, तो उसे इतना तप नहीं करना पडता और न दुर्गति भी होती। पाप को छिपाने से उसका तप भी सफल नहीं हुआ। अतः मानसिक आलोचना लेकर शुद्ध बनना चाहिए।

आज कुछ जीव वाचिक और कायिक आलोचना ले लेते हैं। जैसे कि अपशब्द बोलें, जीव मारे इत्यादि परंतु मन से जैसे तैसे विचार किये, ऐसी मानसिक आलोचना बहुत कम जीव लेते हैं। मानसिक आलोचना के सिवाय संपूर्ण शुद्धि नहीं होती हैं अतः मानसिक, वाचिक और कायिक तीनों प्रकार से आलोचना लेनी चाहिए। कदाचित् मानसिक आलोचना भूल से रह गई हो, या जानकर रख ली हो तो वापस आलोचना लेनी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* सती सुभद्रा *

बसंतपुर नगर । जितशत्रु राजा। जिनदास मंत्री । जिनदास की पत्नी तत्त्वमालिनी। जिनदास की पुत्री सुभद्रा। सुभद्रा बचपन से ही धार्मिक प्रवृत्ति की बालिका थी। लोगों में उसके गुणों की चर्चा की। सुभद्रा ने यौवन की दहलीज पर पांव रखा। योग्य वर की खोज होने लगी। जिनदास का मानसिक संकल्प था की वह अपनी पुत्री का विवाह धार्मिक जैन युवक के साथ ही करेगा।

चंपानगर में बुद्धदास नाम का एक युवक था। वह बौद्धधर्म का अनुयायी था। उसने एक बार सुभद्रा को देखा। वह उसके रुप, लावण्य और गुणों पर अनुरक्त हो गया। उसके लिए सुभद्रा की मांग की गई । जिनदास ने उसकी धार्मिक आस्था को देखते हुए उस संबंध को अस्वीकार कर दिया। बुद्धदास ने अस्वीकृति का कारण पता लगाया। उसने समझ लिया कि सुभद्रा को पाने के लिए जैन श्रावक होना जरुरी है। वह छद्म श्रावक बना। उसके जीवन में धर्म रम गया। उसने साधुओं के सामने सही स्थिति स्पष्ट कर अणुव्रत स्वीकार कर लिये। लोगों की दृष्टि में वह पक्का श्रावक बन गया। जिनदास ने बुद्धदास को धर्मनिष्ठ और जैनश्रावक समझकर उसके साथ सुभद्रा का विवाह कर दिया। सुभद्रा ससुराल गई। वहां वह बुद्धदास के साथ अलग घर में रहने लगी। वह बौद्ध भिक्षुओं की भक्ति नहीं करती थी, इस बात को लेकर उसकी सास और ननंद दोनों उससे नाराज थी। एक दिन उन्होंने बुद्धदास से कहा '' सुभद्रा का आचरण ठीक नहीं हैं जैन मुनि के साथ उसके गलत संबंध है।'' बुद्धदास ने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया।

एक दिन सुभद्रा के घर एक जिनकल्पी मुनि भिक्षा लेने आए। सुभद्रा ने उनको भक्तिपूर्वक गोचरी दी। उसने मुनि की ओर देखा तो उनकी आंख में फांस अटक रही थी और उससे पानी बह रहा था। सुभद्रा जानती थी कि जिनकल्पी मुनि किसी भी स्थिति में अपने शरीर की सार-संभाल नहीं करते। इसलिए उसने अपनी जीभ से मुनि की आंख में अटकी फांस निकाल दी। ऐसा करते समय सुभद्रा के ललाट पर लगी सिंदर की बिंदी मुनि के भाल पर लग गई।

सुभद्रा की ननंद खडी - खडी सब कुछ देख रही थी। वह ऐसे ही अवसर की टोह में थी। उसने अपनी मां को सूचित किया। मां बेटी ने बुद्धदास को बुलाकर कहा - '' तुम अपनी आंखों से देख लो '' बुद्धदास ने उन पर विश्वास कर लिया। सुभद्रा के प्रति उसका व्यवहार बदल गया। सुभद्रा पर दुश्चरित्रा होने का कलंक आया। जिनकल्पी मुनि पर कलंक आया और जैनधर्म की छवि धूमिल हो गई। सुभद्रा के लिए वह स्थिति असह्य हो गई। उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक वह कलंकामुक्त नहीं होगी, तब तक अन्न - जल ग्रहण नहीं करेगी। इस प्रतिज्ञा के बाद वह कायोत्सर्ग करके बैठ गई। रात्रि में देव प्रकट होकर बोला - देवि मैं आपके लिए क्या करुं ? सुभद्रा बोली '' जिनशासन की अवज्ञा से मैं दुःखी हुँ''। देव बोला मैं चंपा के चारों दरवाजें बंद कर दूंगा। उसके बाद यह घोषणा करुंगा कि जो पतिव्रता नारी होगी, वहीं इसे खोल सकेगी।

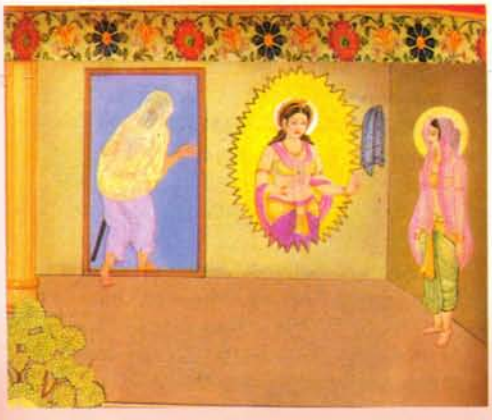

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उन दरवाजों को तुम्हीं खोलोगी। इससे जिनशासन का अपयश धुल जाएगा।

सुभद्रा के तीन दिन की तपस्या हो गई। चौथे दिन लोग सोकर उठे तो चंपा के चारों दरवाजे बंद थे। द्वारपालों ने बहुत प्रयास किया, पर द्वार नहीं खुले। संवाद राजा तक पहुंचा। राजा के आदेश से मदोन्मत्त हाथियों को छोडा गया। दरवाजे नहीं टूटे। नगर से बाहर आने - जाने के सब रास्ते बंद होने से लोग परेशान हो गये। सहसा आकाशवाणी हुई - ''कोई सती कच्चे धागे से चलनी बांधकर कुंऐ से पानी निकाले और उससे दरवाजों पर छींटे लगाए तो वे खुल सकते हैं।'' राजा ने नगर में घोषणा करवा दी कि जो महासती यह महान कार्य करेगी, उसे राजकीय सम्मान दिया जाएगा। पूर्व दिशा के द्वार पर महिलाओं का मेला लग गया। निकटवर्ती कुंए में चलनियों का ढेर हो गया, पर पानी नहीं निकला। चारों ओर व्याप्त निराशा के बीच सुभद्रा ने अपनी सतीत्त्व प्रमाणित करने के लिए सास से आज्ञा मांगी। सास ने दो चार खरी - खोटी सुनाई। सुभद्रा ने अपने घर में ही चलने से पानी निकालकर सास को विश्वास दिलाया। उसके बाद सास की आज्ञा प्राप्त कर वह कुएं पर गई। उसने कच्चे धागे से चलनी को बांधा। चलनी कुएं में डालकर पानी निकाला। उस पानी से पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा के दिशाओं पर पानी के छींटे दिए। दरवाजे अपने आप खुल गए। चौथा दरवाजा उसने यह कहकर बंद ही छोड दिया कि कोई अन्य सती इसे खोलना चाहे तो खोल दे।

दरवाजे खुलते ही नगर में उल्लास छा गया। सुभद्रा सती के जयघोषों से आकाश गूंज उठा। राजा ने राजकीय सम्मान के साथ उसे घर पहुंचाया। सुभद्रा घर पहुंची, उससे पहले ही उसके सतीत्व का संवाद वहां पहुंच गया था। बुद्धदास, उसके माता - पिता और बहन की स्थिति बहुत दयनीय हो गई। अपराधबोध के कारण वे आंख भी ऊपर नहीं उठा पाए। उन्होंने अपनी जघन्य भूल के लिए क्षमायाचना की। उस समय भी सुभद्रा ने मन में उनके प्रति किसी प्रकार का रोष नहीं था। उसकी सहिष्णुता, विनम्रता और शालीनता ने परिजनों को इतना प्रभावित किया कि वे सब आस्था और कर्म से जैन बन गए। जैनशासन की अकल्पित प्रभावना हुई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

1. मिठाई :- मावा पेडा
2. पनीर की मिठाई
3. आईस हलवा
4. रसगुल्ला
5. जलेबी
6. सूप:- क्रीम - आल्मन्ड वेजीटेबल सूप
7. पाइनेप्पल कॉर्न सूप
8. स्टार्टर :- फलाफल कटलेट
9. क्रिस्पी ट्राईएन्गल
10. पनीर फ्रेन्की
11. चौमिन नूडल्स
12. गोभी मन्चुरियन
13. (Nachos) नाचोस विथ पनीर सॉस
14. फहीता
15. सालसा टमाटर सॉस
16. नान
17. खोया मटर
18. माइक्रोवेव : हरा भरा पनीर टिक्का
19. पनीर बटर मसाला
20. स्टफ टमाटर
21. वेजीटेबल जालफ्रेजी
22. वेजीटेबल पुलाव
23. चॉकलेट अखरोट बादाम फज
24. बेकिंग :- नानखटाई
25. मावा केक
26. जैन ब्रेड
27. चॉकलेट बॉल (Chocolate Ball)
28. टेन्टर कोकोनट आईस्क्रिम इन काजू कप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन रेसिपी को प्रस्तुत करने का हमारा आशय :-

* प्रमुख रुप से जैन धर्म, जैन कुल, परमात्मा के शासन को प्राप्त करके इस घोर कलियुग में होटल और अभक्ष्य खान - पान के द्वारा बहुत से लोग अपना जीवन दूषित कर रहे हैं, बहुतों कें शरीर रोगों से पीडित हो गए है एवं उनके तन - मन -धन शिथिल होते जा रहे हैं।

* अपना अभक्ष्य खान - पान बंध हो और जिनाज्ञा अनुसार जीवन जीकर अपने शरीर का पोषण और आत्मसाधना सही रुप से हो एवं प्रभु की आज्ञा मुजब वस्तुकी काल मर्यादा प्रमाण (भक्ष्य) उपयोग कर योग्य आहार का सेवन कर सकें।

* जिसके द्वारा शरीर की शुद्धि हो, उत्तरोत्तर परिणाम शुद्धि और आत्मशुद्धि हो ऐसी अंतर की भावना है।

* मावा पेडा *

सामग्री :-

सेका हुआ मावा :- 1 किलो शक्कर :- 400 ग्राम इलाइची पाउडर :- 1 टेबलस्पून

*** विधि :-**

1. एक पित्तल की मोटी कढाई में धीमी आंच पर मावे और शक्कर को मिलाकर हिलाते रहे। जब तक मावा हलका गुलाबी रंग का और शक्कर पिघल न जाए तब तक हिलाते रहे।

2. जब मावा और शक्कर का मिश्रण कढाई के साईड छोड दे तब कढाई आंच से उतार दे और मिश्रण को ठण्डा हो तब तक हिलाते रहे।

3. अब इस मिश्रण के 50 - 60 भाग करके पेडे के आकार बनालें।

4. दो - तीन घण्टो तक ठंडा होने दे।

*** मावा बनाने की सामग्री :-**

दूध :- 1 कटोरी मैदा :- 2 चमच घी :- 1 चमच एक चपटी फिटकरी

*** विधि :-**

1. घी गरम करके मैदा सेके। एकदम लाल न होने दे।

2. इसमें धीरे से दूध डाल दे और डालते डालते हिलाते रहे, ताकि गांठे न पडे। इस मिश्रण को मोटा होने तक हिलाते रहे।

3. मिश्रण मोटा पड जाए तब उसमें फिटकरी डाल दे। इससे यह मिश्रण फट जाएगा। मिश्रण को हिलाते रहे।

4. मावा जैसा कठण हो जाए तब आंच से उतार दे। ज्यादा लाल न होने दे।

नोट :- यह मावा जिस दिन बनाया हो उसी दिन उसका उपयोग करें। यही ज्यादा गाढा कर लें तो दूसरी दिन चल सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* पनीर की मिठाई *

*** सामग्री :-**

उपर के पेड़े के लिए :-

दूध :- 2 लिटर
रवा :- 2 चमच
(बेसन) चणे का आटा :- 2 चमच
दही :- 2 कप (पनीर फाडने के लिए)

फिलींग के लिए :-

मावा :- 100 ग्राम
नारियल का चूरा :- 25 ग्राम
पिसी हुई शक्कर :- 25 ग्राम
चारोली, लाल द्राक्ष, इलायची, दूध।

चासणी के लिए :-

शक्कर :- 500 ग्राम
दूध :- 1 टेबलस्पून
केसर

*** विधि :-**

1. दूध फाडकर पनीर बना लें।
2. पनीर में बेसन और रवा मिलाकर अच्छी तरह से मसल लें।
3. फिलिंग के लिए मावें में पिसी हुई शक्कर, नारियल का चूरा, द्राक्ष, ऐलची का पाउडर और दूध मिलाकर छोटी गोलीयां बना लें।
4. पनीर के मिश्रण की लोई बनाकर हथेली में दबाकर बिच में फिलिंग की गोली रखकर पनीर को उपर से बंध कर लें।
5. इन पनीर की गोलीयों को घी में हलका भून लें।
6. शक्कर एक बर्तन में लेकर, शक्कर भीगे उतना पानी डालकर उकलने दे। दूध डालकर चासणी के उपर से मेल हटालें। केसर दूध में घोट कर चासणी में मिला दें। एक तार की चासणी तैयार होने पर पनीर की गोलियाँ उसमें डाल दें। ठण्डा होने पर पनीर की मिठाई तैयार हो जाएगी।

* आईस हलवा *

*** सामग्री :-**

मैदा :- 1 कप
दूध :- 1 कप
घी :- 1 कप
शक्कर :- आधा कप
इलाइची पाउडर :- 1 चमच
उपर से डालने के लिए बादाम की कतरी

*** विधि :-**

1. एक बर्तन में मिलाकर, धीमी आंच पर अच्छी तरह हिलाते हुए पकाए।
2. जब यह मिश्रण बर्तन की साईड से निकलने लगे और अच्छी तरह गाढा हो जाए तब आंच से उतार लें।
3. थाली को उलटा रखकर उस पर एक प्लास्टिक सीट (घी लगाकर) में यह मिश्रण डाल दे और

www.jainelibrary.org

उपर एक और प्लास्टिक सीट से ढककर बेलन से बेल लें। थोडा मोटा रखें।

4. इस बेले हुए हलवें को चारों तरफ से चौकार आकार में सफाई से सुधार लें।

5. अब उपर इलाची पाउडर और बादाम छांटकर उस पर इसी प्रकार बने हलवे का एक पीस रख दें।

6. डिब्बे में रखते समय नीचे बटर पेपर के टुकडों से एक एक हलवें की परत पर दूसरा पीस रखें ताकि वह चिपक न जाए।

* रसगुल्ला *

*** सामग्री :-**

गाय का दूध :- 1 लिटर नींबू का रस :- 1 अथवा दही - आधा कप (दूध फाडने के लिए)

शक्कर :- 300 ग्राम पानी :- 8 कप

*** विधि :-**

1. उकलते हुए दूध को दही या नींबू रस से फाड दें।
2. फाडकर छलनी से छान लें।
3. छानते ही जल्दी से अंदर ठण्डा पानी डालकर धोकर निथार दें।
4. इस तरह बने पनीर को पांच से दस मिनिट तक अच्छे से मसल दें।
5. पनीर को गोल सेप देकर गोलियां बना लें।
6. एक बर्तन में पानी और शक्कर मिक्स करके उकलने दें।
7. जब पानी उकलने लगे तब पनीर की गोलियां डालकर पांच मिनिट उकलने दें।
8. पनीर की गोलियां थोडी फूल जाए तब ठण्डा कर लें।
9. रसगुल्ला तैयार।

* जलेबी *

*** सामग्री :-**

मैदा :- 1 कप चणे का आटा :- 2 चमच (बेसन)

ताजा दही :- आधा कप पानी :- अंदाज से आधा कप

ईनो सोडा :- 1 चपटी पीला रंग। तलने के लिए घी।

*** विधि :-**

1. मैदा, बेसन, रंग, सोडा, दही और पानी सब मिक्स करके एक ही दिशा में हिलाए।
2. 10 मिनीट रहने दे।
3. फिर से थोडा जोर से फेंट ले और छोटी प्लास्टिक कवर में डालकर, उसमें छोटा छेद कर लें।
4. नॉनस्टीक कढाई में घी एकदम गरम कर लें। गरम घी करके प्लास्टिक थेली से जलेबी के शेप में घुमाकर घी में तल दें।
5. कडक हो तब घी से निकालकर छासणी में डूबकर तुरंत निकाल दें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

*** चाशनी :-**

शक्कर :- 2 कप

पानी :- 1 कप

*** विधि :-** इन दोनो को मिलाकर 5 मिनिट के लिए बाजु में रख दें। धीमी आंच में इसे पकाये और जब तक शक्कर पिघल न जाए तब तक हिलाते रहें। और उबलने के बाद गैस बंद कर दें।

* पंजाबी डिश *

* नान *

*** साम्रगी :-**

शक्कर :- 4 चमच — मैदा :- 3 कप

घी (पिघला हुआ) :- 4 चमच (मोण के लिए) — सोडा :- 2 चमच

दही :- आधा कप (गरम किया हुआ) — दूध :- आधा कप (आटा बनाने के लिए)

नमक स्वादनुसार

*** विधि :-**

1. मैदे में नमक, शक्कर, मोण डालकर मिला लें। बीच में खड्डा करके सोडा डालकर उपर दही डालकर कवर कर लें। 10 मिनिट ऐसे ही रखकर, फिर ठीक से मैदे के साथ मिलाकर दूध से आटा गूंथ लें।
2. भीगे हुए कपडे से ढककर 2 घण्टे तक रखें।
3. थोडा मसलकर घी लगाकर लुआ बना लें। त्रिकोण आकार में बट लें।
4. तवे के एक साईड पर पानी लगाकर पानीवाली साईड पर नान लगाकर गरम तवे पर धीमी आंच पर से आधा मिनिट तक सेक लें।
5. उतारकर अब सीधे आंच पर सेक लें।
6. फेंटा हुआ घी लगाकर सर्व करें।

* खोया मटर *

*** सामग्री :-**

टमाटर पल्प :- 500 ग्राम — मटर :- 500 ग्राम (उबले हुए)

खोया :- 200 ग्राम — केप्सीकम (शिमला मिर्च) :- 1

घी :- 2 चमच — प्रमाणनुसार नमक, लाल मिर्च - 2 टेबल स्पून,

हल्दी 1/4 टेबल स्पून, धणिया पाउडर 1 टेबल स्पून, गरम मसाला 1/4 टेबल स्पून।

*** विधि :-**

1. घी गरम करके उसमें खोया डालकर 3 - 7 मिनिट हिलाए।
2. टमाटर पल्प, केप्सीकम डालकर अच्छी तरह मिला लें। अब सूखे हुऐ पाउडर और मटर डालकर मिला लें।
3. कोथमीर से सजाकर सर्व करें।

* मेक्सिकन डिस *

नाचोस विथ पनीर सोस (Nachos With Paneer Sauce)

*** सामग्री :- कॉर्न चिप्स के लिए**

मकाई का आटा :- तीन चौथाई कप मैदा :- आधा कप

तेल :- 2 टेबल स्पून मोण के लिए, तलने के लिए नमक :- आधा चमच

अन्य सामग्री :-

औरगेनो :- आधा चमच (सुके हुए पत्ते भी उपयोग में ले सकते हैं)

चीली फ्लेक्स :- 1 चम्मच विनेगर वाली मिर्ची :- 1 चम्मच

पनीर सॉस :- 1 कप

*** पनीर सॉस बनाने की विधि :-**

पनीर :- खिसा हुआ (ग्रेटेड) दूध :- 1/4 कप

नमक स्वादनुसार, पानी :- 2 टेबलस्पून

*** विधि :-** सब सामग्री मिलाकर नॉनस्टीक पेन में मिला लें। जब तक पनीर अच्छी तरह मिक्स हो (पिघल जाए) तब तक हिलाते रहें। पनीर अच्छी मिक्स न हो तो मिक्सी में भी हिला सकते हैं।

*** कॉर्न चिप्स की विधि :-**

1. मकाई का आटा, मैदा, तेल और नमक डालकर गुनगुने पानी से हलका कटण आटा गूंथ लें।

2. इस आटे से पतली रोटियाँ बनाकर, उसके चौकोर टुकडे करके (फोर्क से दबाकर) गरम तेल में लाल कडक हो तब तक तल लें।

3. एक डीश में चीप्स रखकर उपर गरम पनीर सॉस डालकर ओरगेनो, चिली फ्लेक्स और मिर्ची से सजाकर तुरंत सर्व करें।

* फहिता *

*** सामग्री :-**

फिलिंग के लिए

तेल :- 1 टेबलस्पून शिमला मिर्च :- 1/2 कप (पतली लम्बी कटी हुई)

टमाटर :- 1/2 कप (बीज निकले हुए लम्बे सुधारे हुए)

पनीर :- 1 कप (लम्बे सुधारे हुए) हल्दी पाउडर :- 1/2 चमच

लाल मिर्च पाउडर :- 1-1/2 चमच जीरा पाउडर :- 1 चमच

ओरगेनो :- 1/2 चमच विनेगरवाली मिर्च :- 1 चमच

नमक स्वादनुसार

*** फहिता के लिए सामग्री :-**

मैदा :- 2 कप गेहुं का आटा :- 1 कप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेल :- 2 टेबलस्पून
नमक स्वादनुसार
सालसा टमाटर सॉस :- 1/2 कप
पनीर :- 1/2 कप (खिसा हुआ)

*** विधि :-**

1. मैदा, गेहुं का आटा, तेल और नमक मिलाकर गुनगूने पानी से नरम आटा गूंथ लें। 10 मिनिट के बाद पतली रोटियां बनाकर सेंक ले। फहिता के लिए मैदा के टोरटिला तैयार हो जाएंगे।

2. अब फिलिंग के लिए तेल गरम करके उसमें शिमला मिर्च भूनकर बाकी सारी सामग्री मिला लें और तैयार कर लें।

3. टोरटीला रोटी को तेल डालकर तवे पर रखें और उस पर सालसा टमाटर सॉस लगा लें। रोटी को आधा सुधार कर दो भाग बनालें। बीच में फिलिंग का मिश्रण रखकर कोन के आकार बना लें। उपर से पनीर डालकर गरम गरम सर्व करें।

4. इच्छा हो तो तैयार फहिता को बेकिंग प्लेट में रखकर 200 डिग्री तापमान तक 3-7 मिनिट तक बेक करें और फिर परोसें।

* सालसा टमाटर सॉस *

*** सामग्री :-**

टमाटर :- 6-7
तेल :- 2 टेबलस्पून
शिमलामिर्च :- 1/2 कप (बारिक कटी हुई)
हरी मिर्च :- 1 चमच (बारिक कटी हुई)
लाल मिर्च पाउडर :- 1 चमच
जीरा पाउडर :- 1 चमच
ओरगेनो :- 1/2 चमच
शक्कर नमक :- स्वादनुसार
टमाटर सॉस :- 1/2 कप
कोथमीर :- 1 टेबल स्पून

*** विधि :-**

1. टमाटर को गरम पानी में डालकर उबाल लें। 5 मिनिट बाद निकालकर उसका ऊपरी भाग निकाल दें। टमाटर को छोटे छोटे टुकडों में सुधार लें।

2. तेल गरम करके उसमें शिमला मिर्च और हरी मिर्च डालकर थोडा भून लें।

3. उसके बाद टमाटर और सूखे मसाले मिला दें।

4. अंत में टमाटर सॉस और कोथमीर डालकर मिक्स कर लें।

* चाईनिस डिश *

1. चाउमिन (नूडल्स)

*** नूडल्स बनाने की सामग्री :-**

मैदा :- 2 कप
तेल :- 2 टेबलस्पून
नमक स्वदानुसार, पानी, आटा गूंथ के लिए।

*** विधि :-**

1. मैदे में तेल और नमक डालकर नरम आटा गूंथ लें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

2. पतली रोटियां बनाकर 10 - 15 मिनिट सुखा लें।

3. पतली और लम्बी डोरी जैसे रोटी को सुधार कर उपयोग में ले।

4. यदि दूसरे दिन उपयोग में लेती हो तो धूप में सुखाकर डब्बे में स्टोर कर दें।

5. सेव के सांचे में बनाकर भी धूप में सुखाई जा सकती है।

6. नूडल्स का काल पापड - बडी जैसा समझना।

*** चउमिन सामग्री :-**

नूडल्स :- 100 ग्राम
सूखी लाल मिर्च :- 2 - 3
तेल :- 3 टेबलस्पून
सूंठ पाउडर :- 1 चमच
गोभी :- 1 कप (लम्बी) कटी हुई
शिमला मिर्च :- 1/2 कप (लम्बी कटी हुई)
सोयासॉस :- 1 टेबलस्पून
जैन चिली सॉस :- 1 टेबलस्पून
विनेगर :- 2 चमच
चावल का आटा :- 2 टेबल स्पून
नमक, शक्कर, कालीमिर्च पाउडर स्वादनुसार।

*** विधि :-**

1. नुडल्स उबाल कर तैयार कर लें।

2. नॉनस्टीक पेन में तेल गरम कर, उसमें सूखी लाल मिर्च पाउडर, सूंठ पाउडर, कटी हुई हरी सब्जीयां और मसाले डालकर भून लें।

3. इच्छा हो तो थोडा पानी डालकर पका लें।

4. इसमें सोयासॉस, चिली सॉस, विनेगर और चावल का आटा पानी में घोलकर मिला लें और अंत में उबले नूडल्स मिलाकर गरम गरम परोसें।

* चाइनीस मन्चुरीयन *

*** सामग्री :-**

पत्ता गोभी :- 2 कप (खीसी हुई) (ग्रेटेड)
चावल का आटा :- 3 कप
सोयासॉस :- 2 चमच
हरि मिर्च :- 2 चमच (बारिक कटी हुई)
नमक स्वादनुसार, तेल और कोथमीर

*** मन्चुरियन के पकौडे ***

1. खीसी हुई गोभी में एक कप चावल का आटा मिलाकर हरी मिर्च डालकर कडक आटा बना लें।

2. तेल में डीप फ्राय करके पकोडे बना लें।

3. इन पकोडों को ग्रेवी में मिलाकर उपर से कोथमीर से सजाकर सर्व करें।

4. गोभी की जगह पनीर के टुकडे मिलाकर पकोडें बना ले तो पनीर मन्चुरीयन तैयार हो जाएगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* ड्राय मन्चुरीयन *

मन्चुरीयन के पकौडे उपर बताई विधि से बना लें।

*** सामग्री :-**

केप्सीकम :- 1 कप (लम्बी कटी हुई)
हरी मिर्च :- 3 -4
चावल का आटा :- 1/2 कप
तेल, सोयासॉस, कोथमीर

*** विधि :-**

1. तेल में बारीक कटी हुई हरिमिर्च मिलाकर उसमें एक कप पानी डाल दें और पानी जब उकल जाए तो चावल का आटा मिलाकर गाढी ग्रेवी बनालें।

2. फिर से कढाई में तेल, केप्सीकम और नमक मिलाकर उसमें पकोडे डालकर ऊपर से जरुरत हो उतनी ग्रेवी मिक्स करके मिलाएं। कोथमीर डालकर सर्व करें।

* बिस्कुट * (नानकटाई)

*** सामग्री :-**

बारिक रवा :- 100 ग्राम
मैदा :- 400 ग्राम
घी :- 250 ग्राम
शक्कर :- 250 ग्राम (पिसी हुई)
सोडा :- 1/2 चमच
इलाइची :- 8
बदाम :- थोडी
दूध :- 1/2 लीटर

*** विधि :-**

1. रवा और मैदा दोनो मिला लें।

2. एक थाली में घी लेकर उसमें शक्कर और सोडा डालकर अच्छी तरह फेंटे। इसमें थोडा थोडा मैदा और रवा का मिश्रण डालते जाए।

3. इस तरह पूरा आटा गूंथ जाए तो एक बर्तन में लेकर 4-5 घंटे के लिए रख दें।

4. इलाइची का पाउडर मिलाकर आटें की छोटी छोटी नानखटाई बनालें। थोडा थोडा दूध हाथ में लगाकर मन चाहा आकार दें।

5. एक बेकिंग डिश में रखकर बेक कर लें।

6. हलका बादामी रंग हो तो निकाल दें और ठण्डा होने पर डब्बे भर दें।

* चॉकलेट बॉल *

*** सामग्री :-**

आयसिंग शुगर :- 1 कप
मिल्क पाउडर :- 1/2 कप
कोको पाउडर :- 1/4 कप
पिघला हुआ घी :- 2 टेबल स्पून
नींबू का रस :- 1 टीस्पून
वेनिला एसेन्स :- 1 टीस्पून

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

*** विधि :-**

1. आयसिंग शुगर, मिल्क पाउडर और कोको पाउडर मिलाकर मैदे की छलनी से छान लें। फिर उसमें बाकी सभी सामग्री मिलाएं।

2. इस मिश्रण में 1 - 1 छोटा चम्मच गुनगुना पानी डालते हुए अच्छा मसल - मसलकर मिलाते हुए इस मिश्रण का सख्त गोला बनाएं। (ध्यान रहे कि पानी की मात्रा थोडी भी ज्यादा हो गई तो चॉकलेट का मिश्रण पतला होकर उसके बॉल अच्छे से सेट नहीं हो पाते।)

3. इस मिश्रण को अच्छे से मसलकर उसके छोटे - छोटे बॉल बनाएं।

* चॉकलेट बॉल में डालने के अलग - अलग सेन्टर *

* मर्जिपान सेन्टर *

*** सामग्री :-**

आयसिंग शुगर :- 1/2 कप
काजू या बादाम का पाउडर :- 1/4 कप
बादाम एसेन्स :- 3-4 बूंद

*** विधि :-**

सभी सामग्री मिलाकर इस मिश्रण में थोडा - थोडा पानी डालकर उसका सख्त गोला बनाएं । फिर उसके छोटे - छोटे बॉल बनाएं और उन्हें बीच में स्टफ करके चॉकलेट बॉल बनाएं।

* कोकोनट सेन्टर *

*** सामग्री :-**

आयसिंग शुगर :- 1/2 कप
काजू का पाउडर :- 1/4 कप
डेसिकेटेड कोकोनट :- 1/4 कप
पीला रंग :- 1/4 टी स्पून

*** विधि :-**

सभी सामग्री मिलाकर पानी की सहायता से उसका सख्त गोला बनाएं । फिर उसके छोटे - छोटे बॉल बनाकर उन्हें बीच में स्टफ करके चॉकलेट बॉल बनाएं।

* स्ट्रोबेरी सेन्टर *

*** सामग्री :-**

स्ट्रोबेरी क्रश :- 1/4 कप
मिल्क पाउडर :- आवश्यकतानुसार

*** विधि :-**

स्ट्रोबेरी क्रश में आवश्यकतानुसार मिल्क पाउडर मिलाकर उसका सख्त गोला बनाएं । फिर उसके छोटे बॉल बनाकर उन्हें बीच में स्टफ करके चॉकलेट बॉल बनाएं।

(स्ट्रॉबेरी क्रश के बदले कोई भी फ्रूट क्रश या डेजर्ट सॉस ले सकते हैं। जैसे बटर स्कॉच, ब्लैक करंट, मैंगो, लिची, किवी, पायनेपल आदि।)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* मिन्ट सेन्टर *

*** सामग्री :-**

आयसिंग शुगर :- 1/2 कप　　मिल्क पाउडर :- 1/4 कप

मिंट एसेन्स :- 3 - 4 बूंदे　　हरा या नीला रंग :- 1/4 स्पून

*** विधि :-**

सभी सामग्री मिलाकर आवश्यकतानुसार पानी से उसका सख्त गोला बनाएं । फिर उसके छोटे - छोटे बॉल बनाकर उन्हें बीच में स्टफ करके चॉकलेट बॉल बनाएं।

(मिंट के बदले अपनी पसंद का कोई भी उसके अनुरुप रंग ले सकते हैं। जैसे - लेमन, पायनापल, औरेंन्ज, मिक्स फ्रूट आदि।)

* टेन्डर कोकोनट आईस्क्रीम इन काजु कप * (Tender Coconut Icecream In Kaju Cup)

*** सामग्री :-**

दूध :- 1/2 लिटर　　कॉर्न फ्लोर :- 4 टेबल स्पून

मिल्क पाउडर :- 1/2 कपचीनी :- 1 कप

रोज एसेन्स :- 1/4 टीस्पून　　ताजा ठंडी मलाई :- 1 कप

देसी लाल गुलाब की पंखुडियां :- 1/2 कप (बारीक कटी)

हरे नारियल की मलाई आधा कप (बारीक कटी)

*** काजू कप के लिए सामग्री :-**

चीनी पाव कप　　काजू का मोटा पाउडर आधा कप

*** सजाने के लिए सामग्री :-**

मध्यम आकार में कटे मिक्स फ्रूट रोज सिरप

*** विधि :-**

1. दूध, कॉर्न फ्लोर, मिल्क पाउडर और चीनी अच्छे से मिलाकर चम्मच से चलाते हुए उसे गाढा होने तक पकाएं।

2. यह मिश्रण ठंडा होने के बाद उसमें एसेन्स मिलाकर मिक्सी में चलाएं। फिर उसे एल्युमिनीयम के डिब्बे में भरकर फ्रीजर में सेट होने के लिए रखें। ध्यान रहे, डिब्बे में आईस्क्रीम के मिश्री की लेवल डेढ - दो इंच से ज्यादा न हो। आइस्क्रीम का डिब्बा सीधे चिलींग प्लेट पर रखा हो। फ्रीज की सेटिंग मैक्सिमम् पर रखें।

3. मलाई को बीटर से गाढा होने तक फेंटे। फिर उसे फ्रीज में रखें। (फ्रीजर में न रखें।)

4. आइस्क्रीम जब अच्छी तरह से सेट हो जाए तब उसे बाहर निकालकर उसके छोटे - छोटे टुकडे सुधारें। फिर उन्हें मिक्सी में चलाएं ताकि उसमें की बर्फ का चूरा बने और मिश्रण फूलकर हल्का हो जाए। ध्यान रहे आइस्क्रीम फ्रीजर से निकालकर मिक्सी में चलाने के दरमियान वह पिघले नहीं।

5. आइस्क्रीम के मिश्रण में फेंटा हुआ गाढा मलाई, गुलाब की पंखुडियां और नारियल की मलाई

अच्छे से मिलाकर उसे वापस डिब्बे में भरकर फ्रिजर में सेट होने के लिए रखें। कम से कम 1 - 2 घंटे बाद उपयोग में लाए।

6. काजू कप के लिए सूखी कडाही में चीनी डालकर उसे चमच से चलाते हुए पिघलने तक गरम करें। गैस बंद करके उसमें काजू का चूरा मिलाएं। यह मिश्रण तुरंत सूखे मार्बल पर डालकर उसकी पतली रोटी बेलकर उसे गरम रहते हुए ही उल्टी कटोरी के ऊपर दबाएं ताकि उसे कटोरी का आकार आ जाए। रोटी ठंडी होते ही उसे कटोरी से अलग निकालें तो उसकी कटोरी बन जाएगी।

7. इस काजू की कटोरी में आइस्क्रीम, फलों के टुकडे तथा रोज सिरप डालकर तुरंत सर्व करें।

* रोज एसेन्स, नारियल की मलाई और गुलाब की पंखुडियों के बदले अपनी पसंद का एसेन्स तथा इसके अनुरुप रंग मिलाकर भी आप विविध प्रकार के आइस्क्रीम बना सकते हैं।

* उसी तरह फलों के गाढे पल्प जैसे आम, सीताफल, स्ट्रॉबेरी, लिची आदि मिलाकर आप फ्रूट आइस्क्रीम बना सकते हैं।

* उसी तरह कोको पाउडर मिलाकर चॉकलेट आइस्क्रीम बना सकते हैं।

* फलाफल (कटलेट) *

*** सामग्री :-**

काबुली चने :- 2 कप
हरी मिर्च :- 3-4
बारीक कटी पार्सली या हरी धनिया :- 1 कप
बेकिंग पाउडर :- 1/4 टीस्पून
जीरा पाउडर :- 1 टीस्पून
गरम मसाला पाउडर :- 1 टीस्पून
नमक नींबू का रस स्वादानुसार
कॉर्नफ्लोअर 2 टेबल स्पून
पोहा :- 1/4 कप
तेल तलने के लिए

*** विधि :-**

1. चनों को 5 - 6 घंटे पानी में भिगोएं। फिर उनका पानी निथारें।

2. चनों में हरी मिर्च मिलाकर थोडा दरदरा पीसें।

3. उसमें बाकी सभी सामग्री मिलाएं । अगर यह मिश्रण ज्यादा नरम लगे तो उसमें थोडा और पोहा का चूरा मिला सकते हैं।

4. इस मिश्रण के चपटे गोल कटलेट बनाकर उन्हें गरम तेल में हल्का लाल होने तक धीमी आंच पर तल लें।

5. हामूस और योगर्ट ताहिनी डिप के साथ पेश करें।

* क्रीम ऑफ आल्मंड - वेजीटेबल सूप *

*** सामग्री :-**

बादाम :- 20 - 25
घी :- 2 टेबल स्पून
बारीक कटी शिमला मिर्च :- 2 टेबल स्पून
बारीक कटी फ्रेन्च बीन्स :- 1/4 कप
दूधी :- 1/4 कप
नमक - काली मिर्च पाउडर स्वादनुसार
मैदा 2 टेबल स्पून
मलाई आधा कप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हरा धनिया सजाने के लिए

पानी :- 3 कप

दूध :- 1 कप

*** विधि :-**

1. बादाम को आधे घंटे तक गरम पानी में भिगोकर रखें। फिर उनका छिलका उतार लें।

2. उसमें से 5 - 6 बादाम के पतले लंबे स्लाइसेस कांटे और उन्हें हल्का लाल होने तक सेंके। बचे हुए बादाम में थोडा पानी डालकर उन्हें मिक्सी में महीन पीसें।

3. 1 टेबल स्पून घी, गरम करके उसमें शिमला मिर्च, फ्रेन्च बीन्स, दूधी डालकर थोडा भूनें। फिर उसमें पानी डालकर सब्जियां नरम होने तक पकाएं। यह मिश्रण ठंडा होने पर उसे मिक्सी में चलाकर छानें।

4. बचा हुआ 1 टेबल स्पून घी गरम करके उसमें मैदा डालकर थोडा भूनें। फिर उसमें दूध डालकर चमच से चलाते हुए उबाल आने तक पकाएं। इसमें सब्जी का मिश्रण, बादाम का पेस्ट, नमक और काली मिर्च डालकर सूप को और थोडा पकाएं । आखिर में सूप में मलाई मिलाएं।

5. सूप पर बादाम की फांके और हरा धनिया डालकर परोसें।

* पायनापल कॉर्न सूप *

*** सामग्री :- स्टॉक के लिए**

छोटे टुकडों में कटा पायनाघल :- 4 कप

स्वीट कॉर्न के दाने :- 1 कप

हरी धनिया या (सॅलरी) :- 1 डंडी (बारीक कटी) (अगर हो तो)

पानी :- 4 कप

*** सामग्री :- सूप के लिए**

घी 2 टेबल स्पून

मैदा 1 टेबल स्पून

नमक, चीनी, काली मिर्च स्वादनुसार

ओरगेनो आधा टी स्पून

मलाई पाव कप

*** सामग्री :- परोसने के लिए**

कॉर्न फ्लेक्स, पुदीने के पत्ते

*** विधि :-**

1. स्टॉक की सभी सामग्री मिलाकर कुक्कर में एक सिटी होने तक पकाएं। फिर उसे मिक्सी में चलाकर छान लें।

2. सूप के लिए घी गरम करके उसमें मैदा डालकर थोडा भूनें। फिर उसमें स्टॉक, नमक, चीनी, काली मिर्च और ओरगेनो डालकर एक उबाल आने तक पकाएं। आखिर में उसमें मलाई मिलाएं। बाऊल में गरम सूप डालें। उसके ऊपर कॉर्नफ्लेक्स डालें। पुदीन का पत्ता रखकर गरम पेश करें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* क्रिस्पी ट्राईएन्गल *

*** सामग्री :- कवर के लिए :-**

मैदा 2,1/4 कप
तेल मोयन के लिए 3 टेबल स्पून
नमक 1 टीस्पून
सोडा पाव टीस्पून
तेल तलने के लिए

*** सामग्री :- भरावन के लिए :-**

कच्चे केले 4
पोहे का चूरा आधा कप
बारीक कटे फ्रेन्च बींस पाव कप
पीसी हरी मिर्च 1 टेबल स्पून
हल्दी पाव टीस्पून
धनिया - जीरा पाउडर 2 टीस्पून
गरम मसाला 2 टीस्पून
आमचूर पाउडर 1 टीस्पून
नमक - चीनी स्वादनुसार

*** सजाने के लिए**

टमाटर का सॉस, सेव, हरा धनिया

*** विधि :-**

1. कवर की सामग्री में से पाव कप मैदे में पानी मिलाकर उसका गाढा पेस्ट बनाएं। बचे हुए मैदे में बाकी सामग्री मिलाकर पानी से थोडा कडा आटा गूंथे।

2. भरावन के लिए केले उबालकर छिलें। फिर उन्हें मसलकर उसमें भरावन की बाकी सभी सामग्री मिलाऐं।

3. कवर के आटे की पाव इंच मोटी चार रोटियां बेलें। उन पर मैदे का पेस्ट लगाएं । एक रोटी आधे भरावन की परत फैलाएं। उस पर दूसरी रोटी मैदे का पेस्ट लगी बाजू नीचे करके ढंककर अच्छे से दबाएं। उसी तरह बची दोनों रोटियों में भी भरावन भरें।

4. इन रोटियों को छुरी से 4 तिकोने हिस्सों में सुधारें। (उनके बाजू के किनारों पर मैदा का पेस्ट लगाकर तलें।)

5. क्रिस्पी ट्राईएन्गल के बाजु में किनारों पर सॉस लगाकर सेव और हरा धनिया चिपकाएं।

* मावा केक *

*** सामग्री :-**

मैदा 2 कप
सोडा 1 टीस्पून
बेकिंग पाउडर आधा टीस्पून
पीसी हुई चिनी 1 कप
ताजा मावा 150 ग्राम या
दूध की ताजी मलाई 1 कप
केसर की डंडियां 15 - 20
(थोडे गरम दूध में घोंटकर लें)
इलायची पाउडर आधा टीस्पून
जायफल पाउडर चुटकी भर
दूध 100 से 150 मि.ली.
काजू के छोटे टुकडे पाव कप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

*** विधि :-**

1. मैदा, बेकिंग पाउडर और सोडा मिलाकर छान लें।

2. मावा या मलाई, चीनी, केसर, इलायची पाउडर और जायफल पाउडर मिलाकर मिश्रण हल्का होने तक फेंटे।

3. इस मिश्रण में मैदे का मिश्रण अच्छे से मिलाए।

4. आवश्यकतानुसार दूध मिलाकर चमच से गिरने लायक मिश्रण तैयार करें। फिर उसमें काजू के टुकडे मिलाएं।

5. यह मिश्रण केक की छोटी कटोरियों जैसे टिन में भरकर 180 डि. तापमान पर पहले दस मिनिट गरम किए ओवन में 30 से 35 निनिट तक बेक करें या बडे केक टिन में भी बेक कर सकते हैं।

* पनीर फैन्की *

*** सामग्री :- भरावन के लिए :-**

तेल 2 टेबल स्पून
हल्दी पाव स्पून
जीरा पाउडर 1 टी स्पून
चाट मसाला 1 टी स्पून
नमक - चीनी :- स्वादानुसार
मलाई 2 टेबल स्पून
हरा धनिया 1 टेबल स्पून
बारी कटी शिमला मिर्च पाव कप
लाल मिर्च का पाउडर 1 टी स्पून
गरम मसाला आधा टी स्पून
नमक - चीनी :- स्वादानुसार
पनीर (मसलकर) 1 कप
बारीक कटे टमाटर पाव कप

*** सामग्री :- रोटी के लिए :-**

मैदा पोना कप
नमक आधा टी स्पून
गेहूँ का आटा आधा कप
घी रोटी सेंकने के लिए

*** सामग्री :- टॉपिंग के लिए :-**

हरी चटनी, टोमेटो सॉस

*** विधि :-**

1. भरावन के लिए तेल गरम करके उसमें शिमला मिर्च थोडी लाल होने तक भूने। फिर उसमें हल्दी, लाल मिर्च, जीरे का पाउडर, गरम मसाला, चाट मसाला, चीनी और नमक मिलाकर थोडा और भूनें। उसमें मसला हुआ पनीर, मलाई, टमाटर और हरा धनिया डालकर वापस थोडा भूनें।

2. रोटी के लिए मैदा, गेहूँ का आटा और नमक मिलाकर पानी से थोडा मुलायम आटा गूंथे। फिर उसकी 8-10 पतली रोटियां बेलें। इन रोटियों को तवे पर हल्का सा सेंककर रखें।

3. परोसते समय रोटी को घी लगाकर वापस सेकें। फिर उस पर थोडी हरी चटनी और थोडा टमाटर का सॉस डालकर अच्छे से फैलाएं। रोटी के बीच में लंबाकार में पनीर का भरावन रखें। रोटी का रोल बनाकर तुरंत पेश करें। चाहो तो उसके 2-2 इंच के टुकडे सुधारकर उन्हें टूथ - पिक से पैक करके भी दे सकते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माईक्रोवेव रेसिपी

* चॉकलेट बादाम अखरोट फड्ज *

*** सामग्री :-**

मावा :- 1 कप
चीनी :- 1/2 कप
कोको पाउडर :- 1 - 6 स्पून
बारीक टुकडों में कटा बादाम :- 1/4 कप
बारिक टुकडों में कटा अखरोट :- 1/4 कप
(बादाम अखरोट हाई पॉवर पर प्लेट में 5 मिनट सेंके, बीच में एक बार चलाए)

*** विधि :-**

1. मावा छलनी में रगडकर छान लें।

2. मावा माइक्रोवेव सेफ बाउल में डालकर 6 मिनट हाई पॉवर पर पकाए। बीच में 2 बार चमच से चलाए। फिर उसमें चीनी मिलाकर वापस 4 मिनट हाईपावर पर पकाए। बीच में एक बार चलाए। कोकोपाउडर मिलाकर वापस 1 मिनट हाई पावर पर पकाए।

3. बादाम अखरोट मिलाकर घी चुपडे, ट्रेमें फैलाकर दबाए। ठंडा होने दे। फिर चौकोर टुकडों में फज सुधारे।

* हरा - भरा पनीर टिक्का *

*** सामग्री :-**

पानी निथरा गाढा दही :- 1/4 कप
ताजी मलाई :- 1 टेबलस्पून
चावल का आटा या बेसन :- 1 टेबलस्पून

*** पीसने की सामग्री :-**

हरा धनिया :- 1/4 कप
पुदीने के पत्ते :- 15 - 20 पत्ते
हरी मिर्च :- 1 टेबलस्पून
नमक :- 1 टेबलस्पून

*** टिक्का की सामग्री :-**

शिमला मिर्च के चौकोर टुकडे :- 10 - 12
पनीर के चौकोर टुकडे :- 10 - 12
टमाटर के चौकोर :- 10-12

*** सजाने के लिए :-**

चाट मसाला
नींबू का रस

*** विधि :-**

1. बेसन ले तो दही जरुर पहलें गरम करें ! पीसने का मसाला पीसकर उसमें दही, मलाई और चावल का आटा या बेसन डालकर अच्छे से मिलाए। फिर उसमें बडे चौकोर टुकडों में कटे पनीर, शिमला, मिर्च, टमाटर मिलाकर 15 - 20 मिनट रखें।

2. लकडी की सलाखा में टमाटर, शिमलामिर्च, पनीर का एक एक टुकडा पिरोंए। इसी तरह 3 - 4 सलाखों में पूरी तरह सब्जियां पिरों दे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

3. तैयार सलाखें माइक्रोवेव सेफ प्लेट में रखकर 3 मिनट हाई पावर पर पकाएं। बीच में 2 बार सलाखों को घुमाए। (इसे सेंकने का स्वाद देने के लिए गैसे की लौं पर पकडकर थोडा पकाएं)

4. ऊपर से नींबू का रस, चाट मसाला लगाकर गरमागरम सर्व करें।

* पनीर बटर मसाला *

*** सामग्री :-**

घी :- 2 टेबल स्पून
इलाचयी :- 2
लालमिर्च पाउडर :- 2 टेबलस्पून
धनीया जीरा पउडर :- 1 टेबलस्पून
गरम मसाला :- 1/2 टेबलस्पून
कसूरी मेथी :- 1 टेबलस्पून
नमक चीनी :- स्वादनुसार
दूध की मलाई :- 1/4 कप
पनीर :- 200 ग्राम (चौकोर टुकडों में)
पीसने का मसाला :- 2 टमाटर, 10 - 12 बादाम

*** विधि :-**

1. पीसने की सभी सामग्री मिलाकर महीन पीस ले।

2. घी और इलाइची को माइक्रोवेव सेफ बाउल में डालकर 2 मिनट हाई पॉवर पर पकाए। फिर उसमें बाकी सब मसाले मिलाकर हाई पॉवर पर 2 मिनट और पकाएं। आखिर में मलाई और पनीर मिलाकर वापस 2 मिनट हाई पॉवर पर पकाए।

* वेजीटेबल पुलाव *

*** सामग्री :-**

बासमती चावल :- 1 कप
घी या तेल :- 1 टेबलस्पून
शाहजीरा :- 1/2 टेबलस्पून
दालचीनी, लौंग, हरी इलाइची प्रत्येकी 2
तेजपत्ता :- 1
पीसी हरी मिर्च :- 2 टेबलस्पून
मिक्स कटी सब्जियां :- 1 कप
(फ्रेन्च बीन्स, गोबी, शिमलामिर्च)
ताजा मटर :- 1/4 कप
हल्दी :- 1/4 टेबलस्पून
गरम मसाला :- 1/4 टेबलस्पून
नमक स्वादानुसार

*** सजाने के लिए :-**

बारिक टमाटर, हरा धनिया

*** विधि :-**

1. चावल धोकर पानी निथारकर 10 मिनिट रखें।

2. बडे गहरे माइक्रोवेव सेफ बाउल में घी या तेल में शाहजीरा, दालचीनी, लौंग, इलाइची और तेजपत्ता डालकर 2 मिनट हाई पावर पर पकाएं। पीसी मिर्च, सब्जियां और मटर के दाने मिलाकर वापस 2 मिनट हाई पावर पर पकाए। आखिर में चावल, हल्दी, गरममसाला, नमक और 2 कप पानी मिलाकर हाईपावर पर 10 मिनट पकाए। बीच में 1 बार चमच से चलाए। पुलाव 3 मिनट स्टैन्डिंग टाइम पर रखें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** स्टैन्डिंग टाईम :-** टाइम खत्म होने के बाद थोडी देर चीज अंदर ही रहने दें। उसे स्टैन्डिंग टाइम कहते हैं, उपर से टमाटर और हरा धनिया सजाकर परोसें।

* स्टफ टमाटर * (Stuff Tomato)

*** सामग्री :-**

बडे टमाटर :- 4
ताजी मलाई :- 1 टेबलस्पून
किसमिस :- 10 - 12
जीरा पउडर :- 1/2 टेबलस्पून
कसा हुआ पनीर :- 1 कप
काजु के टुकडे :- 1 टेबलस्पून
नमक काली मिर्च, चीनी स्वादनुसार
चाट मसाला :- 1 टेबलस्पून

*** विधि :-**

1. टमाटर को बीच में सुधारकर 2 हिस्से बनाए। फिर उनके अंदर की बीज और गूद्धा चमच से खुरचकर निकाले।

2. बाकी सभी सामग्री मिलाकर टमाटर में भरे। माइक्रोवेव सेफ प्लेट में टमाटर रखकर उनके हाई पावर पर 3 मिनट पकाये। 1 मिनट स्टैन्डिंग टाईम पर रखें। हरे धनिए से सजाकर गरमागरम पेश करें।

* वेजीटेबल जालफ्रेजी *

*** सामग्री :-**

तेल :- 1 टेबलस्पून
हल्दी :- 1/2 टेबलस्पून
गरममसाला :- 1/2 टेबलस्पून
कसूरी मेथी :- 1 टेबलस्पून
लंबे कटे पनीर :- 1/2 कप
बारीक कटा शिमला मिर्च :- 1/4 कप
लालमिर्च पाउडर :- 2 टेबलस्पून
जीरा पाउडर :- 1 टेबलस्पून
लंबे कटे टमाटर :- 1/2 कप

*** विधि :-**

1. एक चौडे माइक्रोवेव सेफ बाऊल में तेल शिमलामिर्च डालकर 2 मिनट हाईपावर पर पकाए।

2. उसमें हल्दी, लालमिर्च, गरममसाला, जीरा पाउडर, कसूरी मेथी, नमक मिलाकर 1 मिनट हाई पावर पर पकाए।

3. आखिर में टमाटर और पनीर मिलाकर 1 मिनट हाई पावर पर पकाए, ऊपर से हरा धनिया डालें, गरमागरम सर्व करें।

* जैन ब्रेड *

*** सामग्री :-**

मैदा :- 125 ग्राम या गेहूं का आटा
दही :- 1 कप, नमक स्वादनुसार
इनो सोडा :- 1, 1/4 पैकेट
शक्कर :- 1/4 टेबलस्पून

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

*** विधि :-**

1. मैदा और दही को मिक्स करें। खमण के जैसे घोल बनाना। चाहे तो पानी में डाल लों। नमक स्वादनुसार और थोडी शक्कर डालें। पैन में तेल लगाकर घोल डालें। गैस पर एक साईड 7 मिनिट पका लें (कम गैस पर)। फिर दूसरी साईड पर घुमाकर 7 मिनट पकाना। कपडे पर निकालकर घुमाना। ठंडा होने के बाद सुधारें। शाम को खाना हो तो सुबह बनाना।

- **TSP - Tea Spoon**
- **TBS- Table Spoon**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत पुस्तक तैयार करने में निम्नलिखित ग्रंथों का एवं पुस्तकों का आधार लिया है। अतः उन उन पुस्तकों के लेखक, संपादक एवं प्रकाशकों के हम सदा ऋणी रहेंगे

1.	उत्तराध्ययन सूत्र	
2.	कल्पसूत्र	
3.	आवश्यक सूत्र	
4.	नव तत्व प्रकरण	
5.	तीर्थंकर चारित्र	- मुनि श्री जयानंदविजयजी म.सा.
6.	योगशास्त्र	- पंन्यास श्री पद्मविजयजी म.सा.
7.	प्रवचन सारोद्धार	- साध्वी श्री हेमप्रभाश्रीजी म.सा.
8.	नव तत्व प्रकरण	- डॉ. निलांजनाश्रीजी म.सा.
9.	प्रथम कर्मग्रन्थ	-
10.	कर्म सहिता	- साध्वीजी श्री युगलनिधिश्रीजी म.सा.
11.	रीसर्च ऑफ डाईनिंग टेबल	- आचार्य श्री विजय हेमरत्नसूरिजी म.सा.
12.	कषाय	- साध्वी श्री हेमप्रज्ञाश्रीजी म.सा.
13.	प्रतिक्रमण सूत्र (सूत्र - चित्र आलंबन)	- आचार्य श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा.
14.	प्रतिक्रमण सूत्र	- श्री पीयूषसागरजी म.सा.
15.	जैन धर्म के चमकते सितारे	- वरजीवनदास वाडीलाल शाह
16.	सुशील सद्‌बोध शतक	- आचार्य श्री जिनोत्तमसूरीश्वरजी म.सा.
17.	प्रतिक्रमण सूत्र (सूत्र - चित्र - आलंबन)	- आ. श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा. - आ. श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा.
18.	जैन तत्वज्ञान	- प्रवर्तक रत्नमुनि म.सा.
19.	तन - मन - जीवन की शुद्धि करनेवाला मननीय ग्रन्थ "आहारशुद्धि"	- प.पू. आ. श्री राजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

* परीक्षा के नियम *

परीक्षा में भाग लेनेवाले विद्यार्थियों को फॉर्म भरना आवश्यक हैं।
कम से कम 20 परीक्षार्थी होने पर परीक्षा केन्द्र खोला जा सकेगा।

* पाठ्यक्रम	:	भाग 1 से 6 तक
* योग्यता	:	ज्ञानार्जन का अभिलाषी
* परीक्षा का समय	:	फरवरी, जुलाई
* श्रेणी निर्धारण		
विशेष योग्यता	:	75% से 100%
प्रथम श्रेणी	:	60% से 74%
द्वितीय श्रेणी	:	46% से 59%
तृतीय श्रेणी	:	35% से 45%
* परीक्षा फल (Results)	:	परीक्षा केन्द्र पर उपलब्ध रहेगा/ www. adinathjaintrust.com
* प्रमाण पत्र	:	संबंधित परीक्षा केन्द्रों पर प्रमाण पत्र भिजवाए जाएंगे।

1. Certificate Degree
2. Diploma Degree

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

NOTES

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे प्रभु !
आप मेरी हृदय – कुक्षी में पधारो मेरा सब कुछ ठिक हो जायेगा...
आप तो भक्तवत्सल हो...
हे नाथ !
जन्म के साथ ही आपने तीनों जगत के सभी जीवों को
सुख शाता का अनुभव करवाया ।
हे विभू !
उत्कृष्ट ऐश्वर्य के होते हुए भी आप रहे विरक्त...
ओ वितरागी मेरी आसक्तियों का अंत कब लाओगे...
हे सर्वज्ञ !
आपने इसी जन्म में ही केवलज्ञान द्वारा कैसा अनुपम सुख
प्राप्त किया है अनंतज्ञानी मुझे मुक्ति कब दिलवाओगे...
हे परमात्मा...
आप तो चले गये सिद्धशिलापर हे कृपालु मैं अष्ट कर्मों से
मुक्त होकर शाश्वत वास सिद्धशिला स्वस्थान पर कब पहुचुँगा... ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org